श्रीरामानन्ददर्शनशोधसंस्थानग्रन्थमालाया अष्टाविंशतितमं पुष्पम्

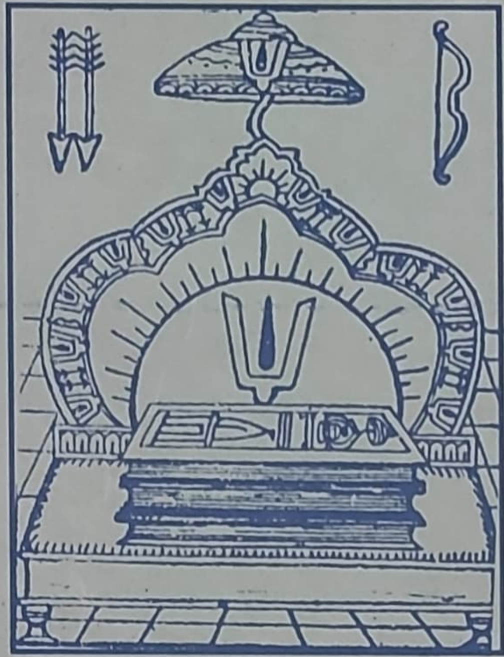
卐 सर्वेश्वरश्रीसीतारामाभ्यां नमः 卐

श्रीहनुमते नमः

प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकाराय नमो नमः

आनन्दभाष्यकारजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यस्य

सप्तशताब्दीस्मारक



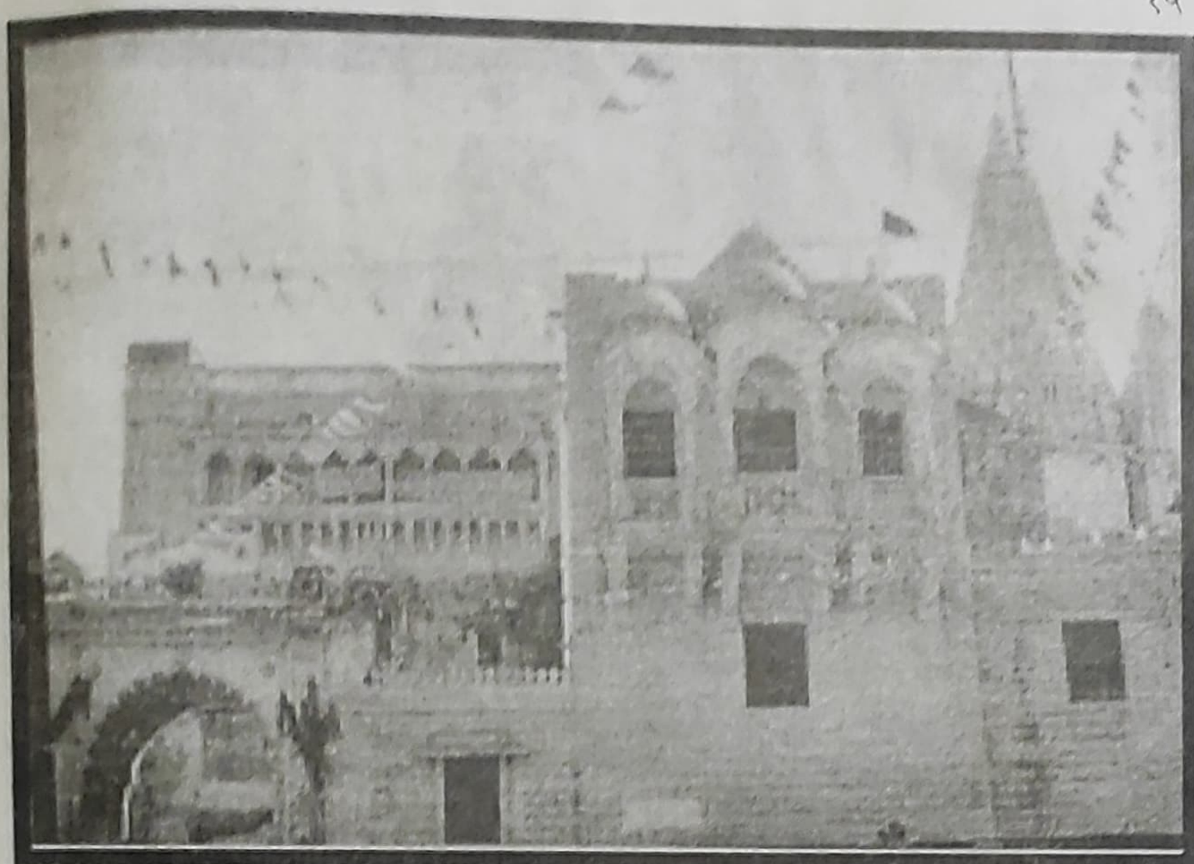
स्मृतिग्रन्थः



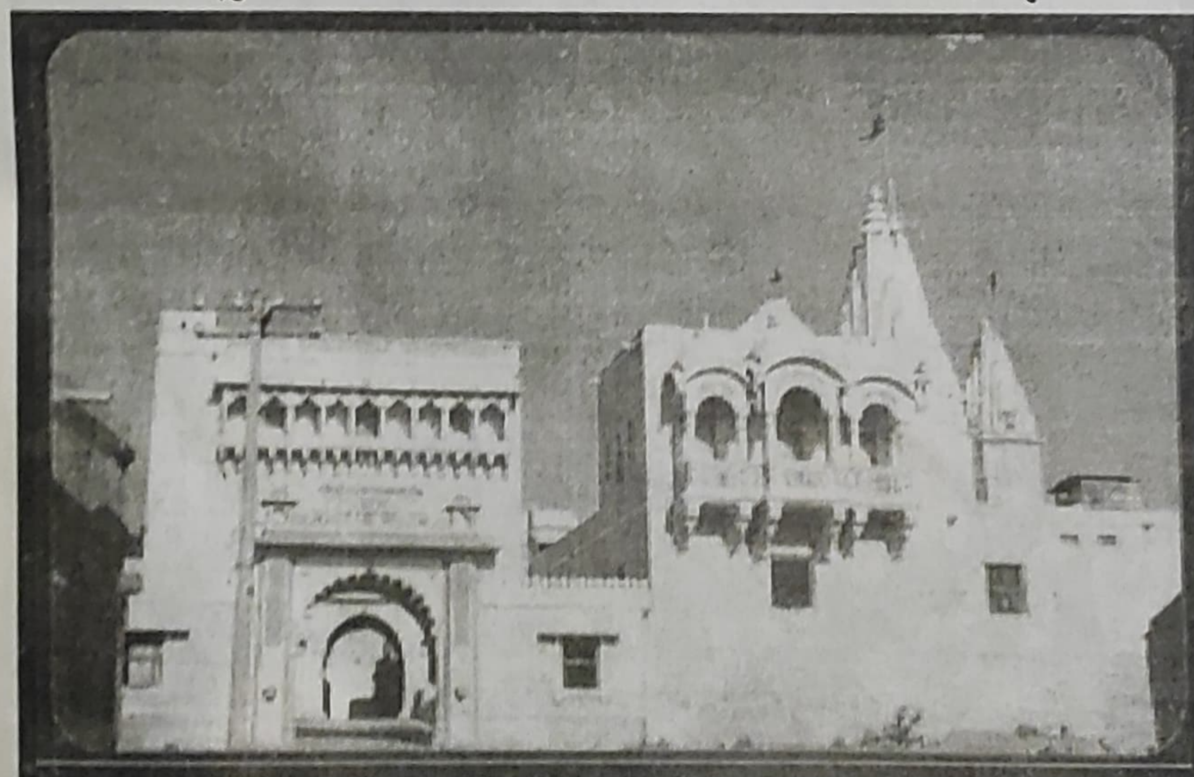




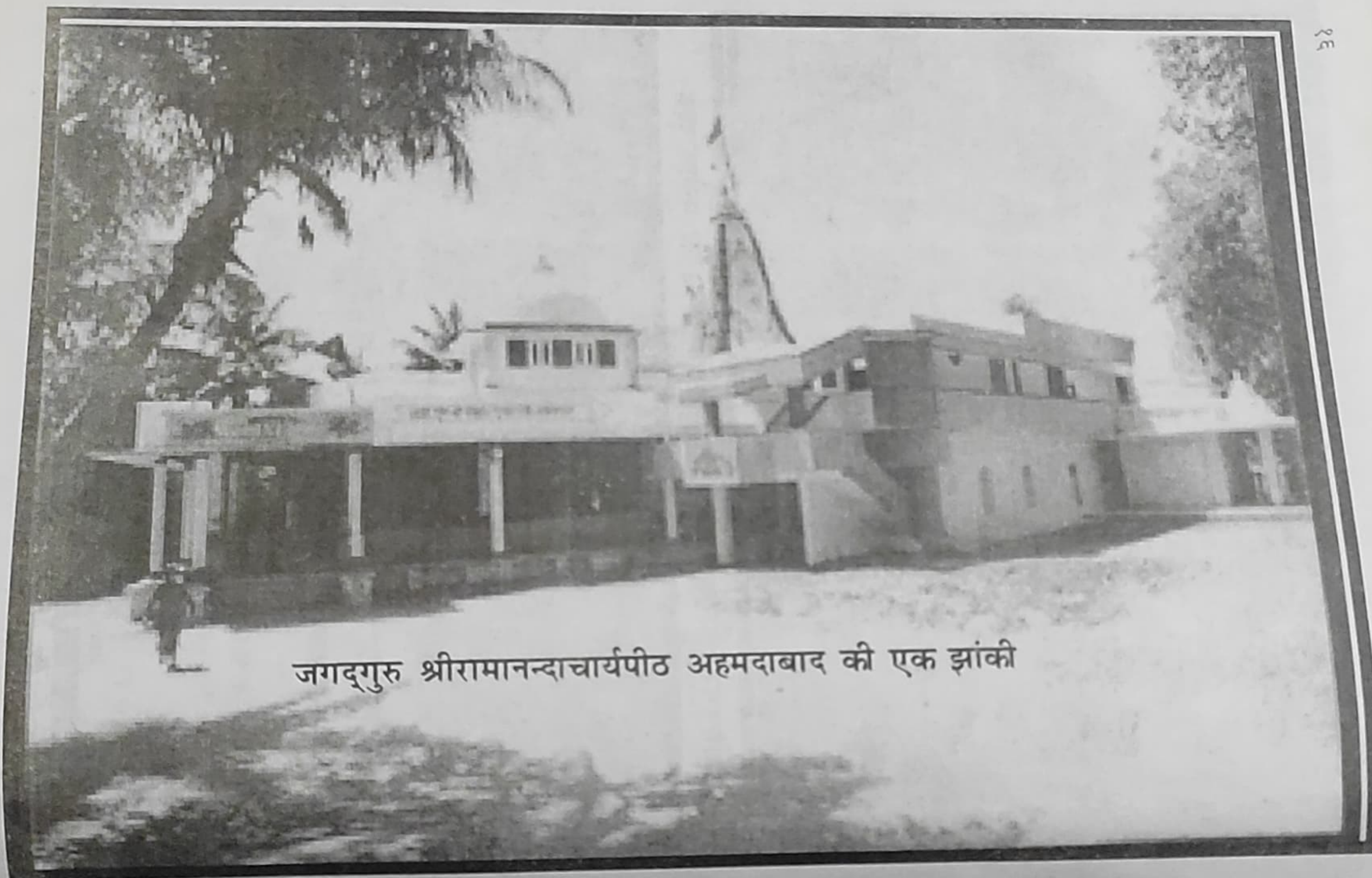
श्रीरामतापनीयोपनिषद्



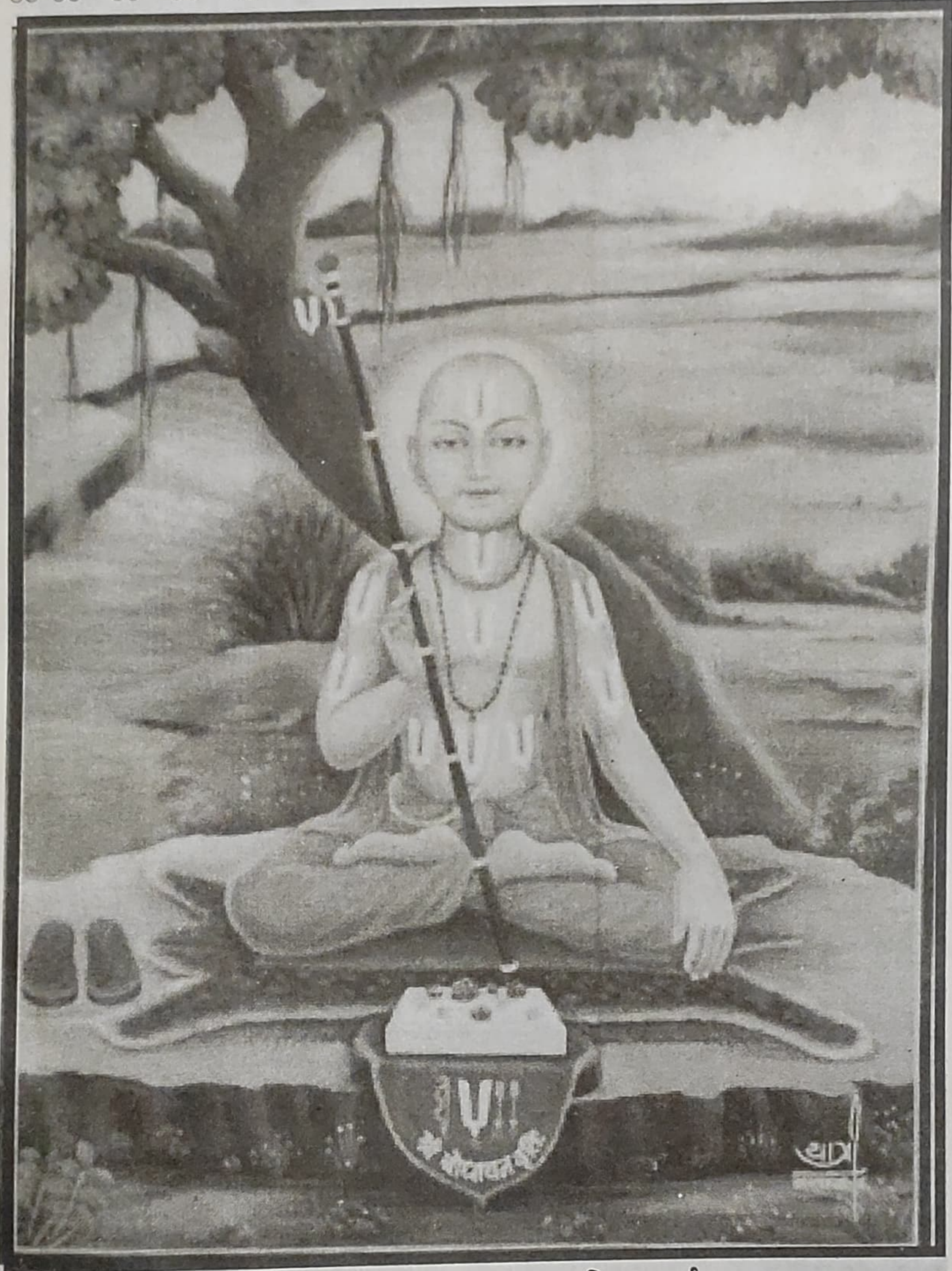
जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठ विश्रामद्वारका का मनोहर दृश्य



जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठ विश्रामद्वारका का प्रवेशद्वार



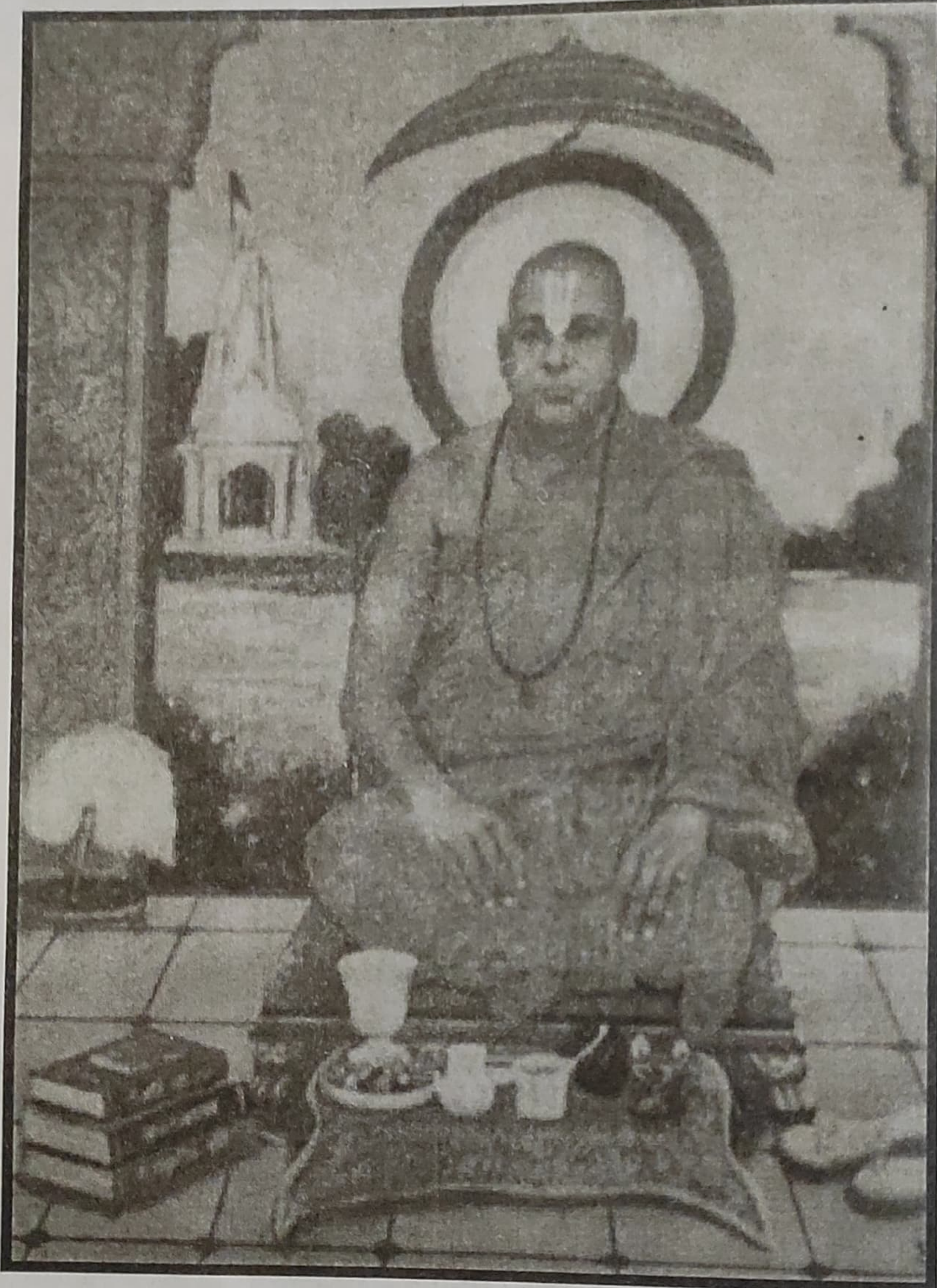
जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठ अहमदाबाद की एक झांकी



विक्रमपूर्व ५६९ 卐 ३२० विक्रमपूर्व

विश्रामद्वारकातीर्थ में श्रौतविशिष्टाद्वैतपीठ संस्थापक

महर्षि श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी बोधायन



१९४३ 卐 २००७

जगद्विजयी शतावधानी महामहोपाध्याय

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरघुवराचार्यजी



१९४४ 卐 २०४६

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामप्रपन्नाचार्यजी

॥ स्मृतिः ॥

पीछले व्यतीत हुये प्रसंग को स्मरण कर उसे स्थायीरूप प्रदान हेतु जिस कार्य को सम्पादन किया जाता है उसे **स्मृति** या स्मारक कहते हैं, यह भारतीय संस्कृति की पुरानी परम्परा रही है। जिन पूर्वजों ने क्रान्तिकारी समाज का हितकारक विशेष कार्य का सम्पादन किया है उनके प्रति विशेष श्रद्धाभाव प्रस्तुत करते हुये स्मृतिग्रन्थ का प्रकाशन महत्वपूर्ण विषय होता आया है। श्रीसम्प्रदाय-श्रीरामानन्दसम्प्रदाय के विशिष्ट महान् विभूति उपनिषद् ब्रह्मसूत्र एवं गीता इन प्रस्थानों पर आनन्दभाष्य लिखकर पारमार्थिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में साधकवर्गों को उद्वेलित करनेवाले विक्रमसम्वत १३५६ माघकृष्णसप्तमी को **'रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले'** इस आगम वाक्य के अनुसार मर्यादापुरुषोत्तम सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी ही श्रीरामानन्दाचार्य जी के रूपमें अवतरित हुये सर्वेश्वर श्रीरामजी ने जैसे श्रीरामगीता आदि आध्यात्मिक तत्वों का उपदेश कर भारतीय जन जीवन को पारमार्थिक पथ का अनुगामी बनाया वैसे ही आचार्यश्री ने भी दार्शनिक क्षेत्र में समन्वयात्मक क्रान्ति कर दी, जैसे मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी ने समाज से उपेक्षीतवर्ग निशादराज शबरी प्रभृति को समाज के साथ समानरूपता प्रदानकर आदर्श स्थापित किया, उसीप्रकार आनन्दभाष्यकारजी ने भी **'सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणः सदा शक्ता अशक्ता पदयोर्जगत्प्रभोः। अपेक्ष्यते तत्र कुलं बलं च नो न चापि कालो न च शुद्धतापि वै ॥'** श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर ४।५० की दिव्य घोषणा कर घोषणा के अनुरूप समाज के द्वारा घोर उपेक्षा प्राप्त एवं अन्य तथाकथित आचार्याभिमानी लोगों के द्वारा भी उत्पिडन सहन कर रहे समाज के निम्न कहे जाने वाले मानवों को उच्चवर्ग के कहलाने वाले मानवों के साथ समानरूपता प्रदान की, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र के रूपमें विभक्तजनों को समान रूपसे अपने प्रधान बारह शिष्यों का महत्व प्रदानकर एक विशिष्ट आदर्श स्थापित किया। आपके ही प्रस्थापित आदर्श को मूल भित्ती में रखकर आजकल के कतिपय सुधारवादी कहलाने वाले व्यक्ति अपने को विशिष्ट अनुभव कर रहे हैं जबकि इस संगठीत प्रक्रिया के आद्य जन्म दाता आज से सातसौ वर्ष पहले अवतार लेकर समाज का सुदृढ पथ प्रदर्शन करने वाले आनन्दभाष्यकारजी हैं आप श्री के आदर्श पर आज का समाज चले तो भारतवर्ष का काया पलट हो जाय, आचार्यश्री के इन दीर्घतम योजना के स्मृतिरूप यह **आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी** के भाष्य के साथ सर्वेश्वर श्रीरामतत्व निर्वचन परक **श्रीरामतापनीयोपनिषद् भाष्य** हिन्दी टीका के साथ समाज के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है आशा है साधकवर्ग श्रीरामतत्व का आस्वादन कर परम पथ का अनुगामी बन मानव जीवन सफल बनायेगा।

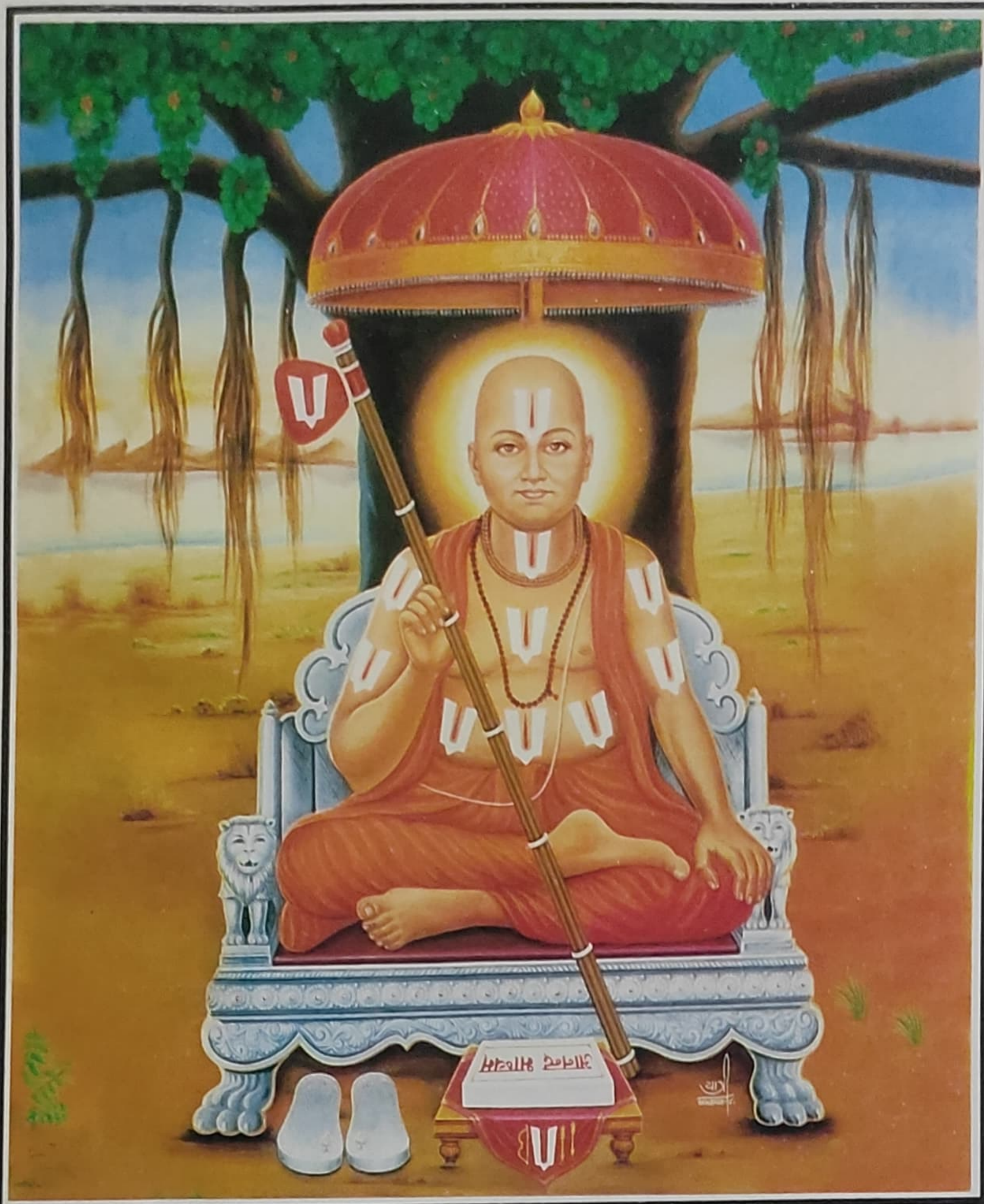
प्रकाशक

ॐ जय श्री राम ॐ

निदर्शिका-श्रीरामतापनीयस्य

आनन्दभाष्यकार जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यजी

१३५६-१५३२ के ७०० वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में



जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यपीठ

अहमदाबाद-३८०००७ फोन-६६०१००१

श्रीमहन्त श्रीविष्णुदासजी के कृपापात्र महन्त श्रीआशुतोषदासजी
तथा धर्मप्रचार विभाग श्रीबालाजी चारसम्प्रदाय मन्दिर सूरत के सौजन्य से

प्रकाशक-श्रीरामानन्ददर्शनशोधसंस्थान आचार्यपीठ अहमदाबाद-७

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यपीठ

श्रीविश्रामद्वारका
श्रीशेषमठ शींगड़ा
पोरबन्दर-सौराष्ट्र



श्रीकोसलेन्द्रमठ
पो. पालडी सरखेज रोड
अहमदाबाद-७ फो. ६६०१००१

ॐ सर्वेश्वर श्रीसीतारामाभ्यां नमः ॐ

श्रीहनुमते नमः

卐 प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकाराय नमोनमः 卐

सर्वेश्वरश्रीरामतत्त्वप्रकाशिका

ॐ श्रीरामतापनियोपनिषत् ॐ

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यकृत

ॐ श्रीरामानन्दभाष्येण भाष्योद्योतेन चोपेता ॐ

सर्वलोकप्रियं रामं राजीवायतलोचनम् ।
सर्वेश्वरं सुराधीशं बन्दे दशरथात्मजम् ॥१॥

विश्रामद्वारकास्थस्य पीठबोधायनस्य च ।
श्रीवैष्णवानामाचार्य स्वामी रामेश्वरो यतिः ॥१॥

श्रीमद् रामप्रपन्नार्यो गुरुर्मे प्रीयतामिति ।
धियोद्योतं तनोम्यत्र भाषायां भाष्यबोधकम् ॥२॥

सीतारामसमारम्भां शुकबोधायनान्विताम् ।
रामानन्दार्यमध्यस्थां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

महर्षि बोधायन श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी (५६९-३२० विक्रमपूर्व) के द्वारा विश्रामद्वारका में संस्थापित श्रौतविशिष्टाद्वैत आचार्यपीठ का सार्वभौम आचार्य स्वामी श्रीरामेश्वरानन्दाचार्य श्रीवैष्णव विरक्त संन्यासी श्रीमान् गुरुवर जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी जो वर्तमान में साकेतलोक में भगवान् श्रीराघवेन्द्र के नित्य पार्षद स्वरूप में विराजमान हैं उनकी प्रसन्नता के लिये अर्थात् वे मुझ पर प्रसन्न हों इसलिये श्रीरामतापनीय उपनिषद् के मेरे श्रीरामानन्द भाष्य की हिन्दी भाषा में उद्योत नामक टीका का विस्तार किया जाता है ॥१ २॥

समस्त चराचर जगत के एक मात्र प्रियतम कमल के सदृश विशाल एवं सुन्दर जिनकी आखें हैं। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक देवाधिदेव अयोध्याधिपति श्रीमान् महाराज दशरथ के आत्मज **"सर्वेषामवताराणामवतारीरघूत्तमः"** इस आगम से बोधित सर्वावतारी सर्वेश्वर श्रीरामजी को मैं दण्डवत प्रणाम करता हूँ ॥१॥

जगद् वन्द्यां हरेर्मायां वैदेहीं जनकात्मजाम् ।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां रामाभिन्नां नमाम्यहम् ॥२॥
नीलोत्पलश्यामलकोमलाङ्गं प्रपन्नभक्तार्तिविनाशदक्षम् ।
भवाब्धिपोतं भवतापखिन्नो रामेश्वरेशं शरणं प्रपद्ये ॥३॥
स्वभायया यो जगदादिहेतुः सृजत्यवत्यत्तिचिदात्मरूपः ।
तं कोशलेन्द्रं भवरोगवैद्यं नमामि भक्त्याखिललोकनाथम् ॥४॥
सकलशास्त्रविचारपरायणं विजितषड्गुणदेहधरं सुरम् ।
विविधवादिगजारिगुरोर्गुरुं रघुवरं प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥५॥

समस्त संसार के लिये बन्दन करने योग्य परब्रह्म परमेश्वर सर्वेश्वर श्रीरामजी की माया स्वरूपा मिथिला भूमि में उत्पन्न महाराज जनक की सुपुत्री लोकमाता होने के कारण सभी का परम कल्याण करने वाली भगवान् श्रीरामजी से अभिन्न श्रीसीताजी को मैं दण्डवत प्रणाम करता हूँ ॥२॥

नील कमल के समान कोमल एवं श्यामल अवयव सम्पन्न अपने शरणागत भक्त समुदाय के आन्तरिक एवं बाह्य पीडाओं का निवारण करने में परम निपुण, एवं संसाररूपी महासागर के जहाज सभी भक्तगण का एक मात्र आश्रय तथा मुझ रामेश्वरानन्दाचार्य के अभीष्ट देव सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी का मैं रामेश्वरानन्दाचार्य सांसारिक दैहिक दैविक भौतिक एवं आध्यात्मिक वेदनाओं से सन्तप्त आश्रय लाभ बुद्ध्या शरणागत होता हूँ ॥३॥

जो परम चैतन्य अर्थात् सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मरूप को धारण किये हैं, एवं इस जगत के उत्पत्ति पालन एवं संहार का आदि कारण हैं, इस कार्य को स्वयं न करके अपनी अचिन्त्य शक्ति माया से सम्पादन कराते हैं। उन संसार रूपी महान् रोग का सर्वोत्तम चिकित्सक अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड का स्वामी भगवान् कोशलाधीश श्रीजानकीवल्लभ श्रीरामचन्द्रजी को श्रद्धा भक्ति पूर्वक प्रणाम करता हूँ ॥४॥

समस्त शास्त्र आस्तिक नास्तिक दर्शन एवं अन्य वाङ्मय का विवेचन करने में समर्पित जिन्होंने राग द्वेष मोह आदि आन्तर वाह्य छ गुणों के वर्ग को स्वाधीन कर लेने से मानो भौतिक देह धारण किये हुए देवता हों, अनेकानेक शास्त्र विरुद्ध पक्ष का स्थापन करनेवाली वादी स्वरूप हाथियों के लिये सिंहस्वरूप मेरे

श्रीयोगिराजाय गुरूत्तमाय विज्ञानसम्प्राप्तरघूद्वहाय ।
रामप्रपन्नाय बुधप्रियाय रामेश्वरो नौमि विशुद्ध भक्त्या ॥६॥

सर्वधीः साक्षिणेऽचिन्त्यशक्तयेऽचिन्त्यरूपिणे ।
सर्वभूतैकनाथाय नित्याय प्रभवे नमः ॥७॥

श्रीरामतापनीयस्य श्रुतिशीर्ष्णो रघूद्वहे ।
प्रीतये क्रियते भाष्यं रामतत्त्वार्थबोधकम् ॥८॥

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः
पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम् ।

रामेश्वरानन्दाचार्य के परमगुरु श्रीमान् जगद्विजयी महामहोपाध्याय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्यजी महाराज वेदान्तकेशरी को भूयोभूयः प्रणाम करता हूँ ॥५॥

मेरे उत्तमोत्तम गुरु योगिराज षट् दर्शनकेसरी नाम से प्रसिद्ध जिन्होंने अपने विशिष्ट ज्ञान के बल से जीवनावस्था में ही सम्यक् रूपसे अपने उपास्य देव भगवान् रघुकुलनायक श्रीरामचन्द्रजी को उपलब्ध कर लिये थे तथा तत्कालीन सभी विद्वानों के अतिशय प्रिय थे ऐसे श्रीमान् जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी महाराज को परम विशुद्ध भक्ति के साथ मैं रामेश्वरानन्द साष्टाङ्ग दण्डवत प्रणाम करता हूँ ॥६॥

समस्त जडचेतनात्मक चराचर जगत् के बुद्धि का साक्षी स्वरूप जिनके सामर्थ्य के विषय में कोई अन्दाज भी नहीं कर सकता है सर्व व्यापक होने के कारण जिनका अचिन्तनीय अनन्त स्वरूप है, जो समस्त प्राणियों के एक मात्र परम उपास्य देव हैं ऐसे नित्य प्रभु परब्रह्म परमात्म रूप भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को मेरा प्रणाम है ॥७॥

रघुकुल नायक सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में परमानुराग हो इसलिये उपनिषदों में महत्त्वपूर्ण श्रीरामतापनीय उपनिषद् का श्रीरामतत्वार्थ बोधक भाष्य रामेश्वरानन्दाचार्यजी के द्वारा जगत् प्रीत्यनुरोध से किया जाता है यानी साधकों का सर्वेश्वर श्रीरामजी के श्रीचरणों में दृढानुराग हेतु तत्त्व बोधक भाष्य बनाता हूँ ॥८॥

वे भगवान् कोशलेन्द्र मर्यादापुरुषोत्तम सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी हम सभी की रक्षा करें। जिन्होंने अपने पिता के आदेश पूर्णता प्रयोजन से उपलब्ध होता हुआ राज्य को छोड़कर अपनी वल्लभा जगज्जननी श्रीसीताजी के साथ उनके कर कमलों से स्पर्श

वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषारोपितभ्रूविजृम्भः

त्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोसलेन्द्रोऽवतान्नः ॥१॥

अथ 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' 'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्' 'आनन्दो ब्रह्म' तदेव ब्रह्म त्वं विद्धिनेदं यदिदमुपासते 'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति' 'द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । एकस्तयोः पिप्पलमत्ति स्वाद्वनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति' 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' 'ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्' 'ब्रह्म विद् ब्रह्मैव भवति' 'अथ मर्त्योऽमृतोभवति अत्र ब्रह्म समश्नुते' एवमाद्याम्नायवचनैः ब्रह्मशब्दाभिधेयस्यैकस्यैव निखिलचराचरहेतुत्वम् । परब्रह्म श्रीराम एव च मुक्तात्मभिरुपेयः । इतिशास्त्रवचनैरादिश्यते । श्रीनारायण नृसिंहकृष्णवामनादिषु च भगवद् विग्रहवाचकेषु ब्रह्मशब्दव्यवहारः श्रुति-
करने में भी अक्षम अति कोमल श्रीचरण कमलों से वन वन में भ्रमण किया श्रीसुग्रीवजी श्रीलक्ष्मणजी श्रीहनुमानजी आदि के सम्पर्क से जिन्होंने मार्ग जनित श्रम का दूरीकरण किया । रावण की वहन शूर्पणखा का कुरूपीकरण के पश्चात् अपहृत अपनी प्रेयसी के वियोग जनित क्रोध से उद्धृत भौहों के विलास मात्र से ही जिनसे समुद्र उद्विग्न हो गया, लंका राज्य में अपनी सेना के प्रवेश हेतु जिन्होंने समुद्र में सेतु बन्धन किया, शत्रुओं की सेना स्वरूप महावन के लिये दावानल के समान संहार सक्षम वे भगवान् श्रीकोशलेन्द्रजी हमारी रक्षा करें ॥१॥

प्रकृत प्रसंग का अनुसन्धान निम्न रूपसे करना चाहिये सत्य स्वरूप ज्ञान स्वरूप एवं अनन्त स्वरूप वाला ब्रह्म है । हे सौम्य-यह ब्रह्म सृष्टि के प्रारम्भ काल में नित्य सत्ता स्वरूप यह ब्रह्म तत्त्व था । आनन्द ही ब्रह्म है । वही ब्रह्म है यह तुम समझो, यह ब्रह्म नहीं है जिसकी तुम वर्तमान में उपासना करते हो । उस परम सत्य परब्रह्म को जानकर ही मृत्यु के ऊपर विजय अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है । उसे जानने का या मोक्ष प्राप्त करने, या परमगति का श्रीराम शरणागति सिवाय अन्य मार्ग नहीं है । समान गुण वाले परस्पर मित्र दो सुन्दर पक्षवाले पक्षी (जीवात्मा-परमात्मा) एक वृक्ष को आश्रय बना कर (अथवा-एक शरीर को आधार बनाकर) विद्यमान हैं। उन दोनों में से एक पक्षी (जीवात्मा) स्वादिष्ट पिछली (सांसारिक कर्मफल) को भोगता है । एक परमात्मा उसे नहीं भोगता हुआ, सर्वतोभावेन देदीप्यमान होकर विराजता है। ब्रह्म तत्त्व का जानाकर परब्रह्म को उपलब्ध करता है । अथवा इस सृष्टि के प्रारम्भिक

स्मृतीतिहासपुराणादिषु विलोक्यते सामान्येन, तस्य ब्रह्मशब्दाभिधेयस्य सामान्यवाचकवाचकस्य 'पशुनायजेत' इति वत् विशेषवाचकत्वमभ्युपेयम् । श्रीकृष्णहरिनारायणविष्णुनृसिंहदामोदरादिशब्दानां ब्रह्मवाचकत्वेन व्यवहार दर्शनात् प्रकृततत्त्वविस्फोरणाय गुरोराज्ञायाश्च परिपालनीयत्वात् । सकल-जगदुदेयादिलीलस्य परमकरुणाशीलस्य महामहिमशालिनः परमात्मनः सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रस्य स्वरूपगुणविभूत्यादीनां वर्णनेन स्ववाणीपावनाय श्रीरामतापनि-योपनिषद् भाष्यरचना प्रवृत्तिरुदेति रामेश्वरानन्दाचार्यस्य ॥२॥

काल में एक मात्र ब्रह्म ही था । ब्रह्म तत्त्वज्ञानी ब्रह्म स्वरूपता को ही प्राप्त करता है। इसके वाद मरण धर्मा मानव अमृत हो जाता है । अर्थात् संसारिक बन्धनों को दूर कर मुक्त हो जाता है । इस संसार में रहता हुआ ब्रह्म साक्षात्कार जनित सुख को सम्यक् प्रकार से भोगता है । इत्यादि श्रुति वचनों से ब्रह्म शब्द से प्रतिपाद्य जो कोई तत्त्व विशेष है उस एक मात्र तत्त्व की ही समस्त जडचेतनात्मक जगत् की कारणता प्रतीत होती है । और वह ब्रह्म तत्त्व ही मुक्तात्माओं से समस्त साधनों के द्वारा प्राप्त करने योग्य है । ऐसा विभिन्न शास्त्रों के वचनों से निरूपण किया जाता है । श्रीनारायण श्रीनृसिंह श्रीकृष्ण श्रीवामन आदि जो भगवान् के दिव्य मङ्गल विग्रह के वाचक वचनों से ब्रह्म शब्द का व्यवहार वेद धर्मशास्त्र पुराण इतिहास आदि में सामान्य रूपसे देखा जाता है उस ब्रह्म शब्द के द्वारा प्रतिपादन करने योग्य अर्थ विशेष का जो कि सामान्य वाचक शब्द के द्वारा प्रतिपाद्य 'पशु के द्वारा याग करे' इस श्रुति में जैसे-गो महिष अश्व गर्दभ आदि सामान्यार्थ वाचक पशु शब्द से प्रतिपाद्य किस विशेष वस्तु इष्ट की भावना करें इस जिज्ञासा में 'छागो वा मन्त्र वर्णात्' इत्यादि वचनों की सहायता से पशु विशेष रूप अर्थ ज्ञान का विषय होता है इसी तरह ब्रह्म शब्द में अर्थ विशेष वाचकता है यह सिद्धान्त अवश्य स्वीकार करना चाहिये । श्रीकृष्ण श्रीहरि श्रीनारायण श्रीविष्णु श्रीनृसिंह श्रीदामोदर आदि शब्दों का ब्रह्म अर्थ का वाचक होने के कारण व्यवहार शास्त्र तथा लोक में होने से अतः प्रकृत तत्त्व को वास्तविक रूपसे स्पष्टीकरण करने हेतु और गुरुदेव की आज्ञा सर्वतोभावेन परिपालनीय होने से अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति स्थिति संहार जिनकी लीला है । परम करुणाशील बिना हेतु के ही प्राणी मात्र पर दया करने वाले महामहिमशाली परब्रह्म परमात्मा सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी का स्वरूप सौर्योदार्य वात्सल्यादि गुण तथा विभूति आदि का वर्णन

सामान्यार्थसम्बद्धस्य ब्रह्मशब्दस्य श्रीरामरूपविशेषार्थनिश्चयस्तु पशुछागन्यायेनैव सम्भवति । तद् वृत्तित्वे सति तदितरवृत्तित्वं सामान्यत्वम् । तद् वृत्तित्वे सति तदितरावृत्तित्वम् विशेषत्वम् । यथा लोमवल्लाङ्गूलादिमत्वम् पशुत्वम् । तच्च गवाश्वगर्दभमहिषादिषु वर्तते । छागो वा मन्त्रवर्णादिति विशेषपद सानिध्यात् छाग एवेति निर्णयः । उपासकानामभिमतसिद्धये सत्यज्ञानादि श्रुतेर्ब्रह्मणोऽद्वितीयस्य 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातेन जीवन्ति यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद् ब्रह्मेति श्रुतेः जगज्जन्मादिकारणत्वनिखिलभगवद् विग्रहेषु सामान्यम् । सर्वत्रैवावतारित्वप्राप्तेः । किन्तु तत्र विशेषेण बोध्यते-

रमन्ते योगिनो यस्मिन् सत्यानन्दे चिदात्मनि । इति रामपदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते ॥ सीतारामौ तन्मयावत्रपूज्यौ जातान्याभ्यां भुवनानि द्विसप्तस्थितानि चेत्यादिभिः श्रीरामचन्द्रस्य परंब्रह्मत्वं साध्यते चिद्रूपत्वञ्च । यथा

करने के माध्यम से अपनी वाणी को पवित्र करने के लिये श्रीरामतापनीय उपनिषद् की तात्त्विक व्याख्या स्वरूप की रचना करने के लिये प्रयास जागृत होता है मुझ रामेश्वरानन्दाचार्य को अतः लिखने में प्रवृत्ति हुई है ॥२॥

साधारण अर्थ से सम्बद्ध ब्रह्म शब्द का जिसका कि श्रीनृसिंह श्रीकृष्ण श्रीनारायण आदि अर्थों से सम्बन्ध होता है उसका श्रीरामरूप विशिष्ट अर्थ के साथ निश्चय, तो पशुछाग न्याय से ही होता है। सामान्य उसे कहा जाता है जो वर्णनीय में होते हुये उससे भिन्न में भी हो जैसे पशुत्व छाग में भी है तदितर गो गर्दभ आदि में भी है। लोमवत् लाङ्गूलादि से सम्पन्न पशु कहा जाता है यह सामान्य वाचक हुआ। 'छागो वा मन्त्र वर्णात्' इस वाक्य में छाग पद विशेष्य के सान्निध्य से पशु शब्द का अर्थ छाग ही है यह निर्णय होता है। उपासकों के अभिमत फलों की सिद्धि के लिये सत्यज्ञानादि स्वरूप श्रुति के द्वारा अद्वितीय ब्रह्म का→जिससे यह संसार पैदा होता है जिसके द्वारा उत्पन्न प्राणी जीवित रहता है जिसमें इस दृश्य जगत का विलय होता है वह ब्रह्म है इस श्रुति के द्वारा संसार के उत्पत्ति स्थिति पालन आदि की कारणता भगवान के समस्त विग्रहों में सामान्य रूपसे है इसीलिये सभी श्रीनृसिंह आदि में अवतारित्व प्राप्त होता है। लेकिन जगह-जगह पर विशेष वाक्य के द्वारा ज्ञात कराया जाता है कि जिस परब्रह्म में योगिजन सच्चिदानन्द स्वरूप में समाधि जनित आनन्द का अनुभव करते हैं वही परब्रह्म श्रीराम शब्द से कहे जाते हैं। ब्रह्ममय श्रीसीताराम

च छागपदसन्निधिवशात् पशोः छागत्वमवसीते तथा 'इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माविधीते' इतिश्रुतेः उपक्रमोपसंहारादिभिः हेतुभिः प्राकरणिकः श्रीराम एव, द्वयादिसहस्त्रसंख्याकभुजः सत्यानन्दचिदात्मकस्य श्रीरामचन्द्रपदाभिधेयस्य ब्रह्मत्वम् विज्ञायते । तेन ब्रह्मपर्यायत्वं श्रीरामस्य । ननु ब्रह्मशब्दवाच्यस्य श्रीरामस्य कथं सर्वावतारित्वमिति विविदिषायामाह-रमन्ते योगिनो यस्मिन्नित्युपक्रान्तस्य श्रीरामस्य ब्रह्मपदार्थस्य च वाच्यवाचकभावं निरूप्य, पुनः 'चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः । उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणोरूप कल्पना' । श्रुतावद्वितीयत्वेन सामान्यतो विशेषितमिति सर्वावतारित्वं प्रमाप-

इस संसार में पूजनीय हैं इन दोनों से ही चौदहों भुवन उत्पन्न हुये एवं परिपालित हैं । इत्यादि श्रुतियों के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी का परब्रह्मत्व एवं चिद्रूपत्व सिद्ध होता है । जिसप्रकार छाग पद की सन्निधि से पशु शब्द का छागत्व रूप अर्थ निर्णीत होता है उसीप्रकार श्रीराम पद से यह परब्रह्म कहा जाता है इस श्रुति से उपक्रम उपसंहारादि कारणों से प्रासङ्गिक श्रीरामजी ही दो से लेकर हजार संख्या तक के भुजाओं को धारण करने वाला सत्य आनन्द एवं चैतन्य स्वरूप श्रीरामचन्द्र पद का अर्थ ब्रह्म ही है यह विशेष रूपसे ज्ञात होता है । इसलिये ब्रह्म शब्द की पर्याय वाचकता श्रीराम शब्द की है । यदि यह प्रश्न करें कि ब्रह्म शब्द वाच्य जो श्रीराम है उसका सर्वावतारित्व कैसे होगा ऐसे ज्ञान की इच्छा होने पर जिसमें योगिजन रमण करते हैं इत्यादि भूमिका करके 'राम' एवं 'ब्रह्म' पदार्थ का वाच्य वाचक भाव प्रतिपादन करके पुनः चैतन्यमय, अद्वितीय निष्कल, अशरीरी श्रीरामजी का उपासकों के प्रयोजन सिद्धि के लिये ब्रह्म रूपमें उपकल्पना की गयी है । उपनिषद् में अद्वितीयत्व के रूपमें सामान्य रूपसे विशेषित कर श्रीरामजी का सर्वावतारित्व प्रमाणित किया गया है । और 'यतो वा इमानि, जन्माद्यस्ययतः' आदि श्रौत प्रामाणिक वचनों के द्वारा संसार की उत्पत्ति कारणता आदि की सिद्धि होती है । जिसमें योगी लोग आनन्द का अनुभव करते हैं उन सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म को श्रीराम शब्द से कहा जाता है । जिसप्रकार सूक्ष्म बीज के अन्दर विशाल वटवृक्ष निहित होता है उसीप्रकार श्रीराममन्त्र के बीज में यह जड़चेतनात्मक जगत् निहित है । इत्यादिश्रुतियों से श्रीरामचन्द्रजी की ही अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड की कारणता एवं परब्रह्मत्व सिद्ध है । इसी श्रीरामतापनीय उपनिषद् में आगे कहा जायगा कि जो भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं वेही परब्रह्म हैं । जैसे यागीय पशु शब्द

यति। 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयंत्यभिसंविशन्ति तद् ब्रह्मेति श्रुतेः। जगज्जन्मादिहेतुत्वं सिद्ध्यति। श्रीनारायण नृसिंहकृष्णशिवरुद्रादीनां जगत्कारणत्वे प्राप्तेऽपि-

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते॥
तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्।

इत्यादिश्रुतेश्च अनन्तकोटिब्रह्माण्डहेतुत्वं परंब्रह्मत्वञ्च श्रीरामचन्द्रस्यैवेति। अस्मिंश्चोपनिषदि वक्ष्यते 'ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रस्स भगवान्यत्परं ब्रह्मेति च तथा च दृष्टान्ते यागपशोः सन्निधिवशात् छागशब्दवाच्यत्ववत् 'रामपदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते' इति सान्निध्यात् ब्रह्मशब्दाभिधेयः प्राकरणिकः श्रीराम एवेति निश्चीयते। श्रूयन्ते च द्विभुजादारभ्य सहस्त्रभुजान्तं तस्यावताराः। एतेन ब्रह्मरामशब्दयोः पर्यायत्वं प्रतीयते। परस्य ब्रह्मणः श्रीरामशब्दवाच्यत्वं श्रीरामशब्दस्य च परब्रह्मवाचकत्वमिति तयोः वाच्यवाचकभावः। श्रुत्या च

का छाग पद के सान्निध्य से छाग अर्थ वाच्य होता है उसीप्रकार 'राम' पद से यह परब्रह्म कहा जाता है इसके सान्निध्य से ब्रह्म शब्द का वाच्यार्थ प्रासङ्गिक 'राम' ही है। दो भुजा से लेकर हजार भुजाधारी पर्यन्त उनके अवतार सुने जाते हैं इसलिये ब्रह्म एवं 'राम' पर्याय वाचक हैं। परब्रह्म का वाच्यार्थ 'राम' है एवं 'राम' शब्द का वाच्यार्थ परब्रह्म वाचक शब्द है इसप्रकार दोनों का वाच्य वाचक भाव सम्बन्ध होता है। चिन्मय इत्यादि श्रुति के द्वारा आरम्भ कर परब्रह्म का अनुवाद पूर्वक विधान किया गया है इसलिये जो व्यक्ति मैं 'राम' हूँ ऐसा निरन्तर बोलता है वह संसारी जीव नहीं किन्तु 'राम' ही है इस सामानाधिकरण्य से सर्व शब्द के अर्थ को ज्ञान करानेवाला बहुवचन के प्रयोग से। मैं ओंकार स्वरूप वह सत्य परब्रह्म चैतन्य स्वरूप 'राम' हूँ इस वाक्य में ब्रह्म के पर्याय रूपमें 'राम' शब्द का पुनः पुनः कहने के कारण श्रीराम की ही ब्रह्म विष्णु मत्स्य कच्छपादि रूपों में बोध होता है। 'सर्वेषामवताराणामवतारी रघूत्तमः' इस आगम वाक्य से प्रतिपादित सभी अवतारों के अवतारी सर्वेश्वर श्रीरामजी ही हैं। इस कारण से उपक्रम एवं उपसंहार वाक्यों में एकवाक्यता देखे जाने के कारण भी ज्ञात होता है कि परब्रह्म का वाच्यार्थ 'राम' ही है। जिसप्रकार 'भिङ्गाया हुआ शर्करा रखता है' इस विषय में जिज्ञासा होती है कि

चिन्मयस्येत्यादिभिः उपक्रम्य परब्रह्मानुवादपुरस्सरं विधानात्, 'सदा रामोऽहम्' इत्येतत् ये प्रवदन्ति ते न संसारिणः राम एव इति सामानाधिकरण्येन सर्वशब्दार्थ बोधकबहुवचनप्रयोगात् 'अहमों तत्सत्यंतत्परं ब्रह्म रामचन्द्रश्चिदात्मकः' इत्यत्र ब्रह्मपर्यायत्वेन श्रीरामशब्दस्य भूयोभूयः कथनात् च श्रीरामस्यैव ब्रह्मविष्णु मत्स्यकच्छपादिरूपितया बोधात् । उपक्रमोपसंहारवाक्ययोः एकवाक्यता दर्शनात् । यथा 'आक्ताः शर्करा उपदधाति' इत्यत्र घृततैलादीनां आक्तत्वसन्देहे आयुर्वैघृतमिति वाक्यशेषेण घृतेनाक्ताः इति निर्णीयते । तथैव उपक्रमे सर्वावतारिबोधकब्रह्मशब्दे उक्तौ 'विश्वाधारं महाविष्णुं नारायणमनामयम्' इत्यादिभिः सन्देहोपस्थितौ चरममन्त्ररूपैः वाक्यशेषैः श्रीराम एवेति निर्णीयते । छान्दोग्योपनिषदादिषु दृष्टः कारणवाचको ब्रह्मशब्दः श्रीरामस्यैव कारणत्वं प्रकाशयति ।

ननु नृसिंहगोपालबृहन्नारायणोपनिषदादिषु ऋतं सत्यं परंब्रह्मपुरुषं नृकेश रिणं तथात्मैव नृसिंहो ब्रह्मभवति । सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णाय सकलं परंब्रह्मैव तत् । नारायणः परब्रह्म तत्वं नारायणः परः' इत्यादिषु नृसिंहादीनां शब्दानां ब्रह्मणि पर्यवसानात् 'चिन्मयस्य अद्वितीयस्य ब्रह्मणोरूपकल्पना' इत्यत्र अद्वितीयादिविशेषणविशेषितसर्वरूपित्वबोधकः विशेष्यभूतः ब्रह्मशब्दः श्रूयते ।

किस वस्तु से भिङ्गाया गया तो घृत तेल आदि के सन्देह होने पर 'आयुर्वैघृतम्' इस वाक्य शेष के द्वारा घृत से आप्लावित यह अर्थ निर्णीत होता है उसीप्रकार उपक्रम वचनों में सर्वावतारित्व ब्रह्म शब्द का प्रयोग करने पर समस्त जगत का आधार महाविष्णु नारायण, निर्दोष इत्यादि शब्दों के द्वारा सन्देह उपस्थित होने पर चरममन्त्र रूप वाक्य शेष से 'राम' अर्थ ही विशेष्य है यह निश्चित होता है। छान्दोग्योपनिषद् आदि में देखा गया कारण वाचक ब्रह्म शब्द श्रीराम की ही सर्वकारणता को प्रकाशित करता है ।

यदि प्रश्न करें कि 'नृसिंह, गोपाल, बृहन्नारायण आदि उपनिषदों में चैतन्य, सत्य, एवं परब्रह्म पुरुष नृसिंह ही हैं उसप्रकार पर ब्रह्म होता है। सत्य चित् आनन्द स्वरूप श्रीकृष्ण ही समस्त कलाओं से युक्त परब्रह्म हैं। नारायण ही परब्रह्म हैं समस्त तत्व नारायणात्मक ही है' इत्यादि उपनिषद् वाक्यों में श्रीनृसिंह कृष्ण नारायण आदि शब्दों का ब्रह्म शब्द की पूर्णता देखे जाने से चैतन्यमय, अद्वितीय ब्रह्म की कल्पना

तत्रापि पशुछागन्यायस्य प्रवृत्तिः स्यात् । श्रीनृसिंहः ब्रह्म श्रीकृष्णः ब्रह्म श्रीनारायणः ब्रह्म इत्यादिभिः विशिष्यसामान्यतया उक्तस्य कारणत्वस्य विशेषेऽर्थे पर्यवसानाय पशुछागन्यायस्य प्रवृत्तेः सम्भवात् ॥३॥

यदि तु ब्रह्मशब्दप्रतिपाद्यस्यान्येषु श्रुतिषु विशिष्टस्य सर्वावतारित्वमुक्तम् भवति, तदा विशेषनिश्चायकोपनिषद्वचनेन विशेषता साध्यते, तदान्यस्यापि तथा साधनात् छागन्यायप्रवृत्तिः दुर्वारः स्यात् । नृसिंहकृष्णादीनामप्युपनिषत्सु सर्वरूपित्व सर्वावतारित्वादीनां निरूपणदर्शनात् । श्रीराम इवान्येषां सर्वरूपित्व सर्वावतारित्वादीनां सिद्धौ समेषामप्रामाण्यापत्तिः स्यात् । धर्मशास्त्र पुराणेतिहासादीनां तु वेदप्रामाण्येनैव प्रामाण्यम् । श्रुतेरप्रामाण्ये तेषामप्रामाण्यं

की गयी है। इत्यादि अद्वितीय आदि विशेषण से विशेषित सर्वरूपित्व का प्रतिपादक विशेष्य बना हुआ ब्रह्म शब्द सुना जाता है वहां भी पशु छाग न्याय की प्रवृत्ति होने लगेगी। श्रीनृसिंह ब्रह्म है श्रीकृष्ण ब्रह्म है श्रीनारायण ब्रह्म है इत्यादि वचनों से भेद करके सामान्य रूपसे कहे गये कारणता का विशेष अर्थ में सम्पन्नता हो इसलिये पशुछाग न्याय की प्रवृत्ति सम्भावना बनती है ॥३॥

यदि ब्रह्म शब्द बोध्य तत्व का अन्य श्रुति वचनों में विशिष्ट का सर्वावतारित्व कहा जाता है तो विशिष्ट तत्व प्रतिपादक श्रुतिवचनों से भेदत्व सिद्ध किया जाता है, उस प्रकार अन्य देवता का भी उसीप्रकार सिद्ध किये जाने पर छाग न्याय की प्रवृत्ति को रोकना कठिन होगा। क्योंकि श्रीनृसिंह कृष्ण आदि की भी उपनिषदों में सर्वरूपत्व एवं सर्वावतारिता आदि का प्रतिपादन देखा गया है। श्रीरामजी के समान अन्य देवताओं का भी सर्व रूपित्व एवं सर्वावतारित्व सिद्ध हो जाने पर सभी की अप्रामाणिकता की आपत्ति होगी। मनु आदि धर्मशास्त्र एवं विष्णु आदि पुराणों की तो वेद की प्रामाणिकता के कारण ही प्रामाणिकता है। वेद की अप्रामाणिकता सिद्ध हो जाने पर धर्मशास्त्र पुराणादि की भी अप्रामाणिकता सरलता से सिद्ध हो जायगी। यदि यह कहें कि वेदों में विशिष्ट ब्रह्म का प्रतिपादन सुना जाता है। लेकिन श्रीनृसिंह नारायण कृष्ण आदि का तो ब्रह्म शब्द का सर्वावतारित्व आदि विशेषण ही सुना जाता है। जैसे नृसिंह तापनीय उपनिषद् में, यह अकार ही आप्ततम अर्थ है, आत्मा में ही नृसिंह ब्रह्म में विद्यमान है। यह ही मृत्यु है यह ही व्यापकतम है, आत्मा ही नृसिंह देव ब्रह्म हैं। इत्यादि श्रुति वचनों से वार-वार नृसिंह एवं ब्रह्म शब्द का समान

सुतरां सिध्येत न च विशिष्टब्रह्मनिरूपणम् श्रुतिषु श्रूयते । किन्तु नृसिंहनारायण कृष्णादीनां तु ब्रह्मशब्दस्य सर्वावतारित्वादिविशेषणमेवश्रूयते । यथा नृसिंहतापनीयोपनिषदि-'एष एवाकार आप्ततमार्थः, आत्मन्येव नृसिंहे ब्रह्मणि वर्तते, एष एव मृत्युरेष हि व्याप्ततम, आत्मैव नृसिंहो देवो ब्रह्मभवति, एवमादिभिः पौनः पुन्येन, नृसिंहब्रह्मशब्दयोः कथनात्, सामानाधिकरण्याच्च, स्तुतिवचनैरपि सर्वरूपित्वादिकथनात् । ब्रह्मत्वप्राप्तेः, श्रुतिप्रमाणवादिनामनेक ब्रह्मसिद्धौ दोषः स्यात् ।

अत्रोच्यते-श्रुतौ श्रीनृसिंहस्य पौनः पुन्येन कथनम् न कारणत्वबोधकः, ब्रह्मणः कारणत्वस्य दर्शनाभावात् । अपितु प्राकृतसिंहत्वबुद्धिव्यावर्तनाय ब्रह्माभेदबोधनाय च तथा पाठः । अथवा श्रीनृसिंहोपासकैः सर्वथा चिन्ताराहित्येनोपासना विधेया, ब्रह्मशब्देन सामानाधिकरण्यं तु प्राकृतनृसिंह
विभक्तिकत्व का कथन होने से । और स्तुति वचनों के द्वारा भी एवं रूपित्व आदि कहने के कारण ब्रह्मत्व की प्राप्ति होने पर वेद प्रमाण वादियों के सिद्धान्त में अनेक ब्रह्म सिद्ध हो जाने पर दोष होगा । इस विषय में वस्तु स्थिति कही जाती है कि वेद में श्रीनृसिंह का पुनः पुनः कथन कारणत्व बोधक नहीं है, क्योंकि ब्रह्म का कोई भी कारण नहीं कहा गया है । और भी प्रकरण प्रतिपादित सिंहत्व बुद्धि का निराकरण करने के लिये ब्रह्म के साथ अभेद बोध के लिये उसप्रकार कहा गया है । अथवा श्रीनृसिंह भगवान् की उपासना करने वालों के द्वारा भी उसी तरह से चिन्ता निर्मुक्तता पूर्वक उपासना करनी चाहिये । ब्रह्म शब्द के साथ समान विभक्तिकत्व तो प्राकृत नृसिंह बुद्धि का खण्डन करने के लिये है । वहां नृसिंह तापनीय उपनिषद् में ही- 'सव कुछ यह ब्रह्म ही है, यह आत्मा ब्रह्म है, उस इस आत्मा को ॐ कार इस ब्रह्म के द्वारा ॐकार से अभेद स्थापन करके वह यह अजर अमर अमृत एवं अभय स्वरूप ॐकार का अनुभव करके आत्मा एवं ब्रह्म का अकार उकार मकार का अभेद प्रतिपादन करके पुनः अभेदत्व का दृढीकरण किया गया है । नृसिंह तथा ब्रह्म का समान विभक्तिकत्व (सामानाधिकरण्य) तो पुराणों की कथा में प्रख्यात हिरण्य कशिपु नामक दैत्य के शत्रु नृसिंह विषयक जागृत संस्कार का निवारण करने के लिये है, पहले ब्रह्म का चराचर जगत् सवकुछ आकृति है, यह प्रतिपादन करके, तत्पश्चात् सभी स्वरूपों में ब्रह्म ही अवतारी पुरुष है, यह विषय वतलाने के लिये नृसिंह एवं ब्रह्म

बोधनिरासाय । तत्रैव सर्वं ह्येतद् ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म, तमेतमात्मानमोमिति ब्रह्मणा ॐ कारेणैकीकृत्य तदैतदजरममरममृतमभयमोमित्यनुभय, आत्म-ब्रह्मणो रकारोमकाराणामभेदेन निरूप्य, अभेदत्वस्य दृढीकरणाच्च । श्रीनृसिंह ब्रह्मपदयोः सामानाधिकरण्यं तु पुराणप्रसिद्धहिरण्यकशिपुरिपुनृसिंहविषयकोद् बुद्धसत्वबुद्धिनिरासार्थम् । पूर्वम् ब्रह्मणः सर्वरूपित्वं प्रतिपाद्यततः सर्वावतारित्वं ब्रह्मणो निरूपयितुं नृसिंहेन सामानाधिकरण्यम् । सर्वशब्दविवेचनेन अतीतानागतवर्तमानानामवताराणां संग्रहात् । तद्भिन्नस्य तद्भिन्नाभिन्नत्वमिति न्यायेन, सर्वभिन्नस्य ब्रह्मणः चराचरेणाभेदात् अभिन्नत्व कथनमुचितमेव । अथवा तच्छब्देन ब्रह्मोच्यते तदभिन्नस्यात्मनः पुनः तच्छब्देन ब्रह्मोच्यते, तदभिन्नं का अभेद साधनार्थ उसके साथ सामानाधिकरण्य किया गया है । सर्व शब्दार्थ का विश्लेषण करने पर भूत भविष्य वर्तमान अवतारों का संग्रह किये किया जाने से । जिस प्रकार देवदत्त से भिन्न वस्तु का देवदत्त भिन्न से भिन्न वस्तु के साथ अभेद हो-अभेद मानने का न्याय है सभी से भिन्न ब्रह्म का चराचर भिन्न के साथ अभेद होना समुचित ही है। अथवा तत् शब्द से ब्रह्म का प्रतिपादन होता है, उस ब्रह्म से अभिन्न आत्म स्वरूप का कथन पुनः ब्रह्म शब्द से किया जाता है उससे अभिन्न समस्त चराचर जगत है। उन सभी से भिन्नत्व आत्मा का है यह अभिप्राय है। वहां पर ॐकार भी नृसिंह का ही बोधक है यह नहीं कह सकते, किन्तु उसके उत्कृष्टता का परिचय कराने वाला है । उस आत्मा एवं ब्रह्म के अभेदत्व का परिचय कराते हुए प्रत्यगात्मा में परिपूर्णता होती है । ॐकार यह अक्षर (जिसका कभी विनाश नहीं होता है) ब्रह्म है, क्योंकि यह सव कुछ दृश्य चराचर जगत ब्रह्म ही है। यह आत्मा ब्रह्म है इत्यादि उपनिषद् वचनों से ॐकार का ब्रह्मरूपत्व प्रतिपादन होता है, और समस्त चराचर संसार का ब्रह्मस्वरूपत्व है, और ब्रह्म का आत्मरूपत्व है, और ॐकार का आत्मरूपत्व है, इत्यादि प्रतिपादन किये जाने से, इसीलिये 'आत्मा में ही नृसिंह ब्रह्म में विद्यमान है यह कहा गया है । इसीलिये आत्मा का नृसिंह परत्व और नृसिंह का प्रणवरूपत्व और उसीका सभी की अपेक्षा उत्कृष्टत्व तथा सर्वावतारित्व कहा गया है । प्रणव (ॐकार) का नियत रूप से नृसिंह वाचकत्व हो ऐसा नियम नहीं है । क्योंकि अनेकानेक देवता मन्त्रों में साधारण रूप से ॐकार का सम्बन्ध देखा जाता है। इसलिये प्रणव का सर्वदेवता वाचकत्व तर्क संगत हो जाने पर नृसिंह का सर्वदेवता

चराचरं सर्वम् तेन सर्वेणभिन्नत्वमात्मन इतिभावः । तत्र ॐ कारोऽपि न नृसिंहबोधकः, किन्तु तदुत्कृष्टत्वप्रत्यायकः । तस्यात्मब्रह्मणोरभेदत्वं प्रत्यायन् प्रत्यगात्मनि पर्यवस्यति । ओमित्येदक्षरं ब्रह्म, सर्वं ह्येतद् ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्मेति श्रुतिवचोभिः ॐ कारस्य ब्रह्मात्मकत्वम्, सर्वस्य च ब्रह्मात्मकत्वम्, ब्रह्मश्चात्मरूपत्वम्, ॐ कारस्य चात्मपरत्वबोधनात् । अत एव आत्मन्येव नृसिंहे ब्रह्मणि वर्तते इत्युक्तम् । अत एवात्मनः श्रीनृसिंहपरत्वम् नृसिंहस्य च प्रणवरूप त्वम् तस्यैव सर्वोत्कृष्टत्वम् सर्वावतारित्वञ्च । प्रणवस्य नृसिंहवाचकत्वे नियमो न अनेकेषु देवतामन्त्रेषु सामान्येन प्रणवस्य योगदर्शनात् । तेन ॐकारस्य सर्वदेवता वाचकत्वोपपत्तौ नृसिंहस्य सर्वदेवतावाचकत्वं न सेत्स्यति । नवा नृसिंहस्तुति मन्त्रेषु नृसिंहस्य मत्स्यकूर्मवराहादिरूपित्वं नापि नारायणवासुदेवादिवाच-कत्वमुक्तं तेन सर्वावतारित्वमपि न । अपितु ब्रह्मविष्णु महेश्वरविराट् स्व-रूपत्वमेव, तस्य सर्वरूपित्वाश्रवणादवतारित्वमपि न सम्पद्यते । तथा च तत्रैव यो नारसिंहमानुष्टुभमधीते सोऽग्निपूतोभवतीत्यारभ्य यः प्रणवमधीते स सर्वमधीते इति भूयोभूयः कथनात् प्रणवाध्ययनफलस्य सर्वोत्तमत्वं द्योत्यते । प्रणवस्य नृसिंहमन्त्राङ्गत्वेन कथनात् खादिरोयूपोभवति यथा औदुम्बरादियूपैः

वाचकत्व सिद्ध नहीं हो सकेगा । अथवा न ही नृसिंह प्रशंसा परक स्तुति मन्त्रों में नृसिंह का मत्स्य कूर्म वराह आदि स्वरूपवान् कहा गया है । और न ही नारायण वासुदेव आदि का वाचकत्व नृसिंह में है । इसलिये नृसिंह में सर्वावतारित्व भी सिद्ध नहीं होता है । किन्तु ब्रह्मा विष्णु महेश्वर आदि विराट् स्वरूपत्व ही है । उनका कहीं भी शास्त्रों में सर्वरूपित्व नहीं सुना गया है । इसलिये अवतारित्व भी नहीं सिद्ध होता है । और जैसे कि-वहीं नृसिंह तापनीय उपनिषद् में ही 'जो नृसिंह सम्बन्धी अनुष्टुप छन्दोबद्ध मन्त्र का अध्ययन करता है वह अग्नि से पवित्र होता है यहां से आरम्भ कर, जो प्रणव (ॐकार) का अध्ययन करता है, वह सभी का अध्ययन करता है, इत्यादि विषय वस्तु पुनः पुनः कहे जाने के कारण प्रणव के अध्ययन के फल का सर्वोत्तमत्व प्रकाशित होता है । और प्रणव का नृसिंह मन्त्र का अवयव रूपमें कहे जाने से भी ॐकार का सर्वोत्तमत्व सिद्ध है । जिस तरह खदिर वृक्ष से बना हुआ यूप होता है । जैसे उदुम्बर निर्मित यूपों के साथ संयोग प्राप्त कर पराक्रम की कामना करने वाला खदिर काष्ट का यूप निर्माण करे, यहां पर जैसे अन्य यूपों की अपेक्षा

सार्धसंयोगमवाप्य वीर्यकामः खादिरं यूपं कुर्यादित्यत्र यथा विशिष्टफलवत्वमुक्तं, तथैवात्र विशिष्टफलप्रदत्वं बुध्यते ननु तस्य सर्वावतारित्वं परत्वञ्चेति ॥४॥

तथा च प्रणवो बहुषु मन्त्रेषु आदौ दृश्यते तेन बहुदेवतावाचकत्वम् । सामान्येन नैकदेवतावाचकत्वम् युक्तिसिद्धं भवति । येन तस्य अवतारित्वं सिध्येत । किञ्च श्रीनृसिंहस्य जगदुत्पत्यादिहेतुत्वं कथमपि न मूलकारणत्व साधकम् । श्रीकृष्णादीनामपि जगदुत्पत्यादिहेतुत्वश्रवणात् । 'ॐ क्षीरोदार्णव शायिनं नृकेशरिणमित्यत्र क्षीरशायित्वश्रवणेन तस्यार्थान्तरपरत्वप्रतिपादनाशक्यत्वात् नावतारित्वं प्रमाणसिद्धम् ।

खदिर का विशिष्ट फल साधकत्व कहा गया है । उसी प्रकार यहां पर विशिष्ट फल प्रदान क्षमत्व नृसिंह का प्रतिपादित होता है पर उसमें सर्वावतारित्व या सर्वापेक्षया परत्व का बोध नहीं होता है ॥४॥

इसप्रकार और भी ओंकार प्रणव अनेक मन्त्रों में आरम्भ में देखा जाता है। इससे सिद्ध होता है कि प्रणव अनन्त देवताओं का वाचक है । सामान्य रूपसे एक देवता का वाचक नहीं । सभी मन्त्रों में ओंकार का प्रयोग से यह तर्कसंगत होता है। यदि एक देवता का वाचक होता तो श्रीनृसिंह का अवतारित्व सिद्ध होता । और श्रीनृसिंह का जगदुत्पत्ति आदि का हेतुत्व कथन भी मूल कारणत्व को सिद्ध नहीं करता है अतः मूल हेतुत्व साधक नहीं है क्योंकि श्रीकृष्ण आदि देवताओं का भी संसार के उत्पत्ति आदि का कारण रूपमें सुना जाता है। 'क्षीर सागर में सोनेवाले नृसिंह' इस वाक्य में क्षीरशायित्व श्रवण से अन्य अर्थ का प्रतिपादन करना शक्य नहीं है अतः यह प्रमाण सिद्ध होता है कि श्रीनृसिंह अवतारी पदार्थ नहीं ।

यदि श्रीनृसिंह को अवतारी नहीं मानते तो श्रीकृष्ण को संसार का मूल कारण मान लें ? जैसे कि मुनिगण ब्रह्माजी से कहे कि सर्वश्रेष्ठ देवता कौन हैं ? तो श्रीब्रह्माजी मुनियों को उत्तर दिये कि श्रीकृष्ण ही सर्वश्रेष्ठ देवता हैं । जो गतिशील नहीं होते हुये भी मन के अपेक्षा अधिक वेगपूर्ण गतिशील है इसे प्राचीन काल में यत्न करने पर भी देवता लोग प्राप्त नहीं कर सके इसलिये श्रीकृष्ण हीं सर्वश्रेष्ठ देवता हैं अद्वितीय हैं सर्वव्यापक हैं पूजनीय हैं एक होते हुये भी विभिन्न रूपमें प्रतीत होते हैं । अर्धमात्रा स्वरूप कृष्ण हैं जिस श्रीकृष्ण में सम्पूर्ण संसार प्रतिष्ठित है । क्लीं तथा ओंकार का ब्रह्म वादियों के द्वारा एक रूपता प्रतिपादन किया गया है और उसीका

ननु अस्तु तर्हि श्रीकृष्णस्य मूलकारणत्वम् । यथा मुनयोहवै ब्रह्माणमूचुः कः परमोदेवः, तदुहोवाच ब्रह्मा श्रीकृष्णो परमं दैवतमिति 'अनेजदेकं मनसो-जवीयोनैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्शत्' तस्मात् श्रीकृष्ण एव परमोदेवः । एकोवशी सर्वगः कृष्ण ईड्यः एकोऽपि सन् बहुधा योविभाति । अर्धमात्रात्मकः कृष्णो यत्र विश्वं प्रतिष्ठितम् । क्लीं ॐकारस्य ब्रह्मवादिभिः एकत्वं पठ्यते । तस्यैव च सच्चिदानन्दादिबहुविधरूपवत्वम् प्रणवसम एव कामबीजस्यार्थश्रवणात् पृथिव्यादिकारणत्वनिर्देशाच्च अखिलबीजत्वमुच्यते । श्रीकृष्णस्य विग्रहे एव ब्रह्मविष्णुशंकर्षणादीनां विलयश्रवणात् । यथा च 'अवरुह्यागतो विष्णुः पातालाज्जगतीपतिः । स चापिलीनस्तत्रैव राधिकेशस्य विग्रहे' नारदादिभिः तस्यैव आराधनश्रवणात् नारायणादिकारणत्वं सूच्यते । कृष्णकृष्णोति...समन्नाम सहस्त्रकम्, सहस्त्रनाम्नां पुण्यश्रवणात् । सर्वेषु नामसु मुखस्य कृष्णनाम्नां पापमोचकत्वकथनात् । सहस्त्रनामतुल्यतोक्ता । अनयैव युक्त्या सर्वकारणत्व

ही सच्चिदानन्द आदि विभिन्न प्रकार के रूपवान् होना प्रणव के समान ही क्लीं का जो कामवीज है अर्थ कहा गया है और पृथ्वी आदि का कारणत्व भी बताया गया है इससे अखिल जगत बीज क्लीं को कहा जाता है। श्रीकृष्ण के शरीर में ही ब्रह्मा विष्णु शंकर्षण आदि का विलय उपनिषदों में तथा पुराणों में सुना जाता है । जैसे कि लोकनाथ श्रीविष्णु पाताल से पृथ्वी पर आकर राधिकानाथ श्रीकृष्ण के विग्रह में विलीन हो गये । वहीं पर अन्य अवतारों का भी विलय कहा गया । नारद आदि ऋषियों के द्वारा श्रीकृष्ण की ही आराधना की गयी ऐसा सुना जाता है । अतः श्रीनारायण आदि का कारण होना सूचित होता है । कृष्ण कृष्णेति आदि श्लोक के द्वारा सहस्त्रनाम के तुल्य कृष्ण नाम को कहा गया है । कृष्ण सहस्त्रनाम जप करने से जितना पुण्य मिलता है उतना ही पुण्य कृष्ण नामोच्चारण से मिलता है ऐसा कहने से सभी नामों में प्रधानता एवं कृष्ण नाम का पाप निवारक होना कहा गया है । अतएव सहस्त्र नाम की तुलना कही गयी है । इसी युक्ति के आधार पर श्रीकृष्ण का सर्व कारणत्व सिद्ध होता है ऐसा कहें ? तो नहीं कह सकते हैं क्योंकि उसी श्रुति में ही गोपालोपनिषद् में 'पूर्व में एक ही नारायण देवता थे जिसमें सभी लोग ओत-प्रोत थे । इत्यादि वाक्यों के द्वारा ब्रह्मा के द्वारा पूछे जाने पर कि सभी देवताओं में किस की श्रेष्ठता है तो श्रीनारायण भगवान कहते हैं कि सुमेरु पर्वत के शिखर पर सात पुरी

सिद्धिरितिचेन्न तत्रैव गोपालोपनिषदि 'एको हवै पूर्वो नारायणो देवो यस्मिल्लोका ओताश्च प्रोताश्च' इत्यादिभिः ब्रह्मणा पृष्टे सर्वदेवश्रेष्ठत्वं कस्येति तं नारायणोदेवः उवाच मेरोः श्रृङ्गे सप्तपुर्यः सन्ति तत्र द्वादशमूर्त्तयो वर्तन्ते तान् ब्रह्मादयः यजन्ति तत्र सर्वेषामवताराणां कृष्णावतारस्य श्रेष्ठत्वमुक्त्वा तस्य अवतारित्वन्न प्रतिपादितम् । यद्यपि तत्र 'श्रीकृष्णः परमं दैवतम्' इत्युक्तं तथापि तेषां भक्ताभीष्टपूरकत्वमेव अवतारत्वे निश्चिते अवतारित्वासिद्धेः। अन्यदेवापेक्षया एकादशरुद्राद्यवतारपेक्षया च श्रेष्ठत्वं प्रकाश्यते ।

'यत्रासौ संस्थितः कृष्णः त्रिभिः शक्त्या समाहितः । रामानिरुद्धप्रद्युम्नैः रुक्मिण्या सहितो विभुः' इत्यादिभिः शक्तिशक्तिमतोः अभेदप्रतिपादनात् वायोः पञ्चरूपत्वं तथैव लोकहितार्थं श्रीकृष्णस्यापि पञ्चपदीभवनात् श्रीनारायणनृसिंहा द्यवताररूपेण तस्य बहुधा विभावनत्वानुपपत्तेः । 'क्ली' बीजे पृथिव्यप्तेजः सूर्य चन्द्रपञ्चकस्य कारणत्वोक्तेः पृथिव्यादिकारणापेक्षया 'क्लीं' इत्यस्य श्रेष्ठत्वेऽपि

हैं उनमें श्रीकृष्ण की बारह मूर्तियाँ विद्यमान हैं उन मूर्तियों की ब्रह्मा आदि उपासना करते हैं उनमें सभी अवतारों में कृष्णावतार की श्रेष्ठता है ऐसा कहकर श्रीकृष्ण का अवतारी होना नहीं कहा गया है । यद्यपि श्रीकृष्ण परम श्रेष्ठ देवता हैं यह कहा गया है तथापि उनका भक्तों के अभिमत पूरक होने से ही अवतारत्व निश्चित हो जाने पर भी अवतारित्व की सिद्धि नहीं होती है । दूसरे देवताओं की अपेक्षा तथा एकादश रुद्रों की अपेक्षा श्रीकृष्ण का श्रेष्ठत्व मात्र प्रकाशित होता है न कि अवतारित्व भी।

जहां ये श्रीकृष्ण तीन शक्तियों से सम्पन्न होकर सम्यक् प्रकार से प्रतिष्ठित हैं। बलराम अनिरुद्ध एवं प्रद्युम्न तथा रुक्मिणी के सहित परम व्यापक श्रीकृष्ण प्रतिष्ठित हैं। इत्यादि वाक्यों से शक्ति एवं शक्तिमान् में अभेद प्रतिपादन करने के कारण एक ही वायु का जैसे प्राण अपान आदि पाँच रूप बताया जाता है उसी प्रकार लोक कल्याण के लिये श्रीकृष्ण का भी पञ्चपदी रूप होने से श्रीनारायण श्रीनृसिंह आदि अवतार रूपमें विभिन्न रूपों में विभिन्न प्रकार से प्रतीत होना युक्ति संगत नहीं होता है। क्लीं इस बीज में पृथ्वी जल, तेज, सूर्य, चन्द्रमा इन पांचों की कारणता कही गयी है। इस कथन में पृथ्वी आदि कारण की अपेक्षा क्लीं इस मन्त्र की श्रेष्ठता होने पर भी तन्मात्रा आदि की कारणता नहीं होती है। क्योंकि श्रीनृसिंहादि मन्त्रों का भी जगत्कारणत्व सुना जाता है। और भूत प्रेत पिशाचादि मन्त्रों का जगत्कारणत्व रूपमें

न तन्मात्रादीनां कारणत्वम् । नृसिंहादिमन्त्राणामपि च जगत्कारणत्वश्रवणात् । भूतप्रेतादिमन्त्राणाञ्च तथात्वाश्रवणात् । तुल्यरूपेण कारणत्वप्रतिपादनेऽपि श्रीनारायणकार्यत्वात् तयोरभेददृष्ट्या एव परमदैवतत्वं सर्वनियन्त्रितत्वं बहु-रूपित्वं जगदहेतुत्वादिकञ्च उक्तं भवति ॥५॥

तथैव श्रीनृसिंहाद्यवतारेष्वपि नावतारित्वमिति बोध्यमन्यथा बहूनां तुल्यदैवतत्वे तत्तदुपनिषदां परस्परं विरोधः स्यात्, तेष्वेकस्यावतारित्वाङ्गीकारे अप्रामाण्यं कल्पितत्वं च स्यात् । इतिहासपुराणादिनामपि वेदोपबृंहणरूपत्वात् तथैवाङ्गीकर्तव्यम् । यानि च श्रीकृष्णावतारस्य बोधकानि श्रुतिमूलकानि वाक्यानि साधारण्येनावतारित्वं प्रतिपादयन्ति तस्य चावताराः कुत्रापि न पठ्यन्ते 'नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाकुण्ठेमेधसे । यो धत्ते सर्वभूतानामभवायोशती तनूः' इति न श्रुतिमूलकानि, तेषां केवलमभिरूचिजनकानि, एवंविधानि वाक्यानि पक्षीकृत्यानुमितेरसङ्गतिः स्यात् । श्रीनारायणावतारवाचकश्रुतिव-

नहीं सुना जाता है। इसप्रकार तुल्य रूपसे कारणत्व प्रतिपादन करने पर भी श्रीकृष्ण श्रीनृसिंह आदि का श्रीनारायण का कार्य होने से कारण एवं कार्य में अभेद दृष्टि के द्वारा ही श्रीकृष्ण में परम दैवतत्व सर्व नियामकत्व बहुविध रूपवत्व एवं जगदहेतुत्व आदि कथित होता है ॥५॥

उसी तरह श्रीनृसिंह आदि अवतारों में भी अवतारित्व नहीं है यह समझना चाहिये। यदि इसप्रकार अवतारित्वाभाव नहीं समझेंगे तो बहुतसे देवताओं की समान देवतात्व हो जाने पर तत्तद् देवता सम्बन्धी उपनिषदों का आपस में विरोध होने लगेगा। उनमें से किसी एक को अवतारी एवं शेष को अवतार स्वीकार कर लेने पर अप्रामाणिकता की एवं काल्पनिकता की आपत्ति उपस्थित हो जायेगी। उन उन देवताओं से सम्बन्धित इतिहास पुराण आदि का भी वैदिक सिद्धान्तों का विस्तृत स्वरूपवान् होने के कारण अवतारत्व साधक ही युक्ति है ऐसा ही मानना चाहिये। और जो भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार प्रतिपादन करनेवाले वेद मूलक वाक्य हैं वे सामान्य रूपसे श्रीकृष्ण के अवतारित्व का प्रतिपादन नहीं करते हैं, प्रत्युत श्रीकृष्ण का देवतान्तर रूपमें कोई अवतार कहीं नहीं पढे जाते हैं। अव्याहत प्रतिभापूर्ण बुद्धिशाली उन भगवांन् श्रीकृष्ण को नमस्कार है, जो श्रीकृष्ण समस्त सांसारिक प्राणियों का जन्म मरण बन्धन विमोचक कामनानुसार शरीरों को धारण करते हैं।

चनस्य श्रीकृष्णास्य वेदविपरीतत्वात् मुख्यार्थपरकमपि न सम्भवति, शिष्टप्रतिषेधात् । बलदेवादीनां पंचपदमन्त्रस्य सर्वभूतहितसाधकत्वं 'उशतीतनूः' श्रीनारायणादीनां च श्रीकृष्णविग्रहे विलीनत्वप्रतिपादनं च तदुपासकेच्छाया रुचिजननाय कल्पितत्वात् न प्रामाण्यम् । श्रुतिप्रामाण्येन श्रीनारायणत्वेन संकर्षणस्तत्रोच्यते । तस्यैव च तन्न्यूनतया श्रीकृष्णे विलयत्वमुपपद्यते । 'एतस्मिन्नन्तरे तूर्णमाजगामत्वरान्वितः । शुद्धस्फटिकसंकाशो नाम्ना संकर्षण स्मृतः' इति तत्रोक्तेः । तेन श्रुतौ कमलासनजनको यो नारायणोऽनिरुद्धा परपर्यायः तस्य तत् कारणत्वं न कल्पनीयम्, तथा स्वीकारेऽपि तस्मिन्

इत्यादि वाक्य कलाप वेदमूलक नहीं हैं। केवल उन श्रीकृष्ण भक्तों के अभिरूचि को पैदा करनेवाले हैं। जो अभिरूचि जनक वाक्य हैं इसतरह के वाक्यों को पक्ष बनाकर अनुमान किया जाना सुसङ्गत नहीं कहा जा सकता है। अतः असङ्गति होगी, भगवान् श्रीनारायण के अवतार वाचक वेद वचनों पर आधारित श्रीकृष्णचन्द्र का वेद विरुद्ध अवतारी प्रतिपादन को विपरीत होने से मुख्यार्थ प्रतिपादन परकत्व भी सम्भव नहीं है। क्योंकि इसतरह के प्रतिपादन का शिष्ट पुरुषों के द्वारा प्रतिषेध किया गया है। बलदेव आदि के पञ्चपद मन्त्र का समस्त प्राणी मात्र का हित साधकत्व प्रतिपादनार्थ 'उशती तनूः' कहा है। और नारायण आदि देवों का भगवान् श्रीकृष्ण के विग्रह में विलीनता का निरूपण जो किया है वह श्रीकृष्ण के भक्तों की इच्छा के अनुरोध से उन भक्तों में अभिरुचि उत्पादन करने के लिये केवल काल्पनिक प्रतिपादन है अतः उसकी प्रामाणिकता नहीं हो सकती है। वेद की प्रामाणिकता के अनुसार श्रीनारायण के स्वरूप में वहां पर संकर्षण कहे जाते हैं। और संकर्षण की ही श्रीकृष्ण की अपेक्षा न्यूनता के कारण श्रीकृष्ण शरीर में उनका विलीन होना युक्ति संगत होता है। जैसे कि इसी के मध्य में शीघ्राति शीघ्र सत्वरता से युक्त शुद्ध स्फटिक मणि के सदृश गौर वर्ण श्रीकृष्ण विग्रह में आ गये जो संकर्षण नाम से कहे गये हैं। इसप्रकार वहां कहा गया है। इसलिये वेदमें जो कमलासन ब्रह्मा को जन्म देनेवाले श्रीनारायण कहे गये हैं। वह अनिरुद्ध जिनका पर्याय वाचक है वे नारायण हैं। उनका यह श्रीकृष्ण कारण है ऐसी कल्पना नहीं करनी चाहिये। इसप्रकार स्वीकार कर लेने पर भी उन श्रीनारायण में श्रीकृष्ण की अपेक्षा अधिकता ही उपपन्न होती ही न कि न्यूनता क्योंकि श्रीनारायण का श्रीकृष्ण रूपमें अवतार होता है।

श्रीकृष्णादाधिक्यमेव समायति । 'रामोऽहमनिरुद्धोऽहं प्रद्युम्नोऽहं सनातनः' इति गोपालोपनिषदि, 'एष नारायणः साक्षात् क्षीराब्धिनिकेतनः, नागपर्य्यङ्क मुत्सृज्येहागतोमथुरापुरीमित्यादिवाक्यान्यपि श्रीकृष्णस्य संकर्षणप्रद्युम्नानिरुद्ध स्वामित्वबोधनात् नागपर्य्यंकवचनाच्च तच्छेषत्वमेवावगमयन्ति । सहस्त्रनाम्न आधिक्यमपि न सम्भवति तस्यावतारित्वे श्रीनारायणादाधिक्यापत्तेः । वेदेषु समानार्थकतन्मूलकवचनाश्रवणात् । तेन ब्रह्मवैवर्तपुराणे पाञ्चाल्योपदेशः देवतान्तरसहस्त्रनामतुल्यस्य श्रीकृष्णनाम्न उक्तं भवतीति बोध्यम् ।

लौकिकावैदिका शब्दा ये केचित् सन्ति पार्वति, नामानि रामचन्द्रस्य सहस्त्रेष्वधिकंमतम् । तादृङ्नामसहस्त्रैस्तु रामनाम समंमतमितिवत् उत्कृष्टत्वमात्र बोधक इतिध्येयम् तत्र श्रीकृष्णनामान्तरेभ्यः कृष्णस्याधिकं महत्वम्, नतु भगवन्नामान्तरेभ्य इति ॥६॥

मैं राम हूँ, मैं अनिरुद्ध हूँ, मैं सनातन प्रद्युम्न हूँ इत्यादि जो गोपालतापनीय उपनिषद् में कहा गया है। ये साक्षात् श्रीनारायण जिनका क्षीर सागर निवास स्थान है वे हैं। ये शेषनाग स्वरूप पलङ्ग का परित्याग कर यहां पर मथुरा पुरी में आ गये हैं। इत्यादि वाक्य कलाप भी श्रीकृष्ण के संकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध के स्वामित्व का बोधनकारी है। इसिलिए नागपर्यङ्क वचन से भी श्रीकृष्ण का शेषत्व ही प्रतिपादित होता है यह समझना चाहिये । सहस्त्रनाम की अपेक्षा एकमात्र श्रीकृष्ण नाम की अधिकता भी सम्भव नहीं है । क्योंकि श्रीकृष्ण का अवतारित्व सिद्ध होने पर श्रीनारायण के अपेक्षा अधिकता की आपत्ति होगी । वेदों में समान अर्थ वाले श्रीनारायण मूलक वचन सुना जाने के कारण । इसलिए ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी जो पंचालतनया द्रौपदी को उपदेश है, वह अन्य देवताओं के हजारों नाम के तुलना में श्रीकृष्ण के नाम की महिमा कही गयी है ऐसा समझना चाहिये ।

लोक व्यवहार अथवा वेद के जो शब्द हैं हे पार्वती ! वे जो कोई भी नाम हैं उन हजारों नाम में श्रीरामचन्द्रजी का नाम अधिक महत्वपूर्ण हैं अर्थात् इसप्रकार हजारों नाम एक श्रीराम नाम के समान कहा गया है। इस शिव वाक्य के समान केवल उत्कृष्टता मात्र का प्रतिपादक है, यह ध्यान देना चाहिये । वहां पर श्रीकृष्ण का अन्य नामों के अपेक्षा अधिक महत्व है यही पांचाली को बोध कराना अभिष्ट हैं । न कि भगवान् के अन्य नामों के अपेक्षा अधिकता प्रतिपादन अभिमत हैं ॥६॥

श्रीरामनाम्नस्तु सकलभगवन्नामभ्यो मुख्यतमता महापुरुषेषु प्रसिद्धा । तत्र तत्र भगवन्नामान्युच्चार्य सहस्त्रगुणाधिक्येन प्रतिपादनात् ।

विष्णोर्नामसहस्त्राणां तुल्य एष महामनुः ।
सर्वेषु मन्त्रवर्गेषु श्रेष्ठं वैष्णवमुच्यते ॥
गाणपत्येषु शैवेषु शाक्तसौरेष्वभीष्टदम् ।
वैष्णवेष्वपि मन्त्रेषु राममन्त्राः फलाधिकाः ॥
मन्त्रस्तेष्वप्यनायासफलदोऽयंषडक्षरः ॥ तथा-
लौकिका वैदिका शब्दा ये केचित् सन्ति पार्वति ? ।
नामानि रामचन्द्रस्य सहस्त्रं तेषु चाधिकम् ॥

श्रीराम नाम का तो समस्त भगवत् सहस्त्र नामों के अपेक्षा प्रधानता है यह महापुरुषों में प्रसिद्ध है । उन-उन भगवान् विष्णु के नामों का उच्चारण करके उनके अपेक्षा हजार गुणा अधिकता से प्रतिपादन किये जाने के कारण । जैसे कि श्रीविष्णु के हजारों नामों के तुल्य यह श्रीराम महामन्त्र है, जो समस्त मन्त्र वर्गों में अतिशय श्रेष्ठ है, तथा वैष्णबमन्त्र कहा जाता है गणपति देवता सम्बन्धि मन्त्रों में शिव सम्बन्धी, शक्ति सम्बन्धी एवं सूर्य सम्बन्धी मन्त्रों में यह श्रीराम महामन्त्र सर्वश्रेष्ठ है, एवं भक्तों के अभिमत फल को प्रदान करनेवाला है । वैष्णव मन्त्रों में भी श्रीराम मन्त्र सभी के अपेक्षा अधिक फलदायी है तथा समस्त श्रीराममन्त्रों में भी छ अक्षरों वाला यह श्रीराम महामन्त्र अनायास फल प्रदान करनेवाला है । तथा लोक व्यवहार में प्रयोग में आनेवाले एवं वेद में प्रयोग होने वाले जो कोई भी शब्द हैं, 'हे पार्वती ? जो भी श्रीविष्णु के हजार नाम है अथवा श्रीरामजी के नाम है उनमें यह सर्वश्रेष्ठ है' विष्णु का एक एक नाम ही सभी वेदों के अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ माना गया है । इसप्रकार के हजारों नामों से तुल्य एत श्रीराम नाम कहा गया है । समस्त वेदों के उच्चारण करने से एवं सभी मन्त्रों के उच्चारण करने से अपेक्षाकृत हे पार्वती ? उनसे कडोरों गुणा अधिक पुण्यदायकता श्रीरामनाम से उपलब्ध होता है । अनन्त भगवान् विष्णु के मन्त्र एक श्रीरामनाम के समान कहे गये हैं । इत्यादि इसतरह के श्रीशिव पार्वती के सम्वाद से समस्त भगवद् विषयक वाक्यों के द्वारा सभी भगवान् के नामों से श्रीरामनाम का हजार गुणा अधिकता सुस्पष्ट होती है ऐसा प्रतिपादन किया गया है । यहां पर श्रीनारायण श्रीवासुदेव श्रीकृष्ण श्रीनृसिंह श्रीवामन आदि के नाम अथवा दूसरे

विष्णोरेकैकनामैव सर्ववेदाधिकंमतम् ।
तादृङ् नामसहस्त्रैस्तु रामनामसमम्मतम् ॥
जपतः सर्ववेदाश्च सर्वमन्त्राश्च पार्वति ? ।
तस्मात् कोटिगुणं पुण्यं रामनाम्नैव लभ्यते ॥
अनन्ता भगवन्मन्त्रा नानेन तु समा कृतः ॥

एवमादिभिर्निखिलैर्वाक्यैः सकलभगवन्नामभ्यः श्रीरामनाम्नः सहस्त्रगुणाधिक्यं स्फुटं प्रतिपादितम् । अत्र श्रीनारायणवासुदेवकृष्णनृसिंहवामनादिनामानि नामान्तराणि वोक्तानि, अतस्तेषामाधिक्यं नोपपद्यते । वैष्णवमन्त्रेष्वेतेषामन्तः देवताओं के नाम भी कहे गये हैं, जिनसे श्रीरामनाम अधिक महत्वशाली हैं । इसलिये उन नामों या मन्त्रों की अधिकता तर्क संगत सिद्ध नहीं होती है । क्योंकि इन भगवत् सम्बन्धी मन्त्रों का वैष्णव मन्त्रों में समावेश होता है । वैष्णव मन्त्रों में भी श्रीराम मन्त्र की अधिक फल प्रदान क्षमता बतलायी गयी है । लेकिन श्रीराममन्त्र का तो इन मन्त्रों में अन्तर्भाव नहीं हो सकता है क्योंकि श्रीराममन्त्र के व्याप्य कोटि में आ जाने पर उसकी अधिकता नहीं रहेगी अपितु न्यूनता की आपत्ति होगी और यह भी कहे जाने के कारण अन्तर्भाव सम्भव नहीं है कि भगवान् के अगणित मन्त्र हैं । और उनमें सहस्त्र गुणा अधिकता है इस श्रीराममन्त्र में इस कथन के द्वारा वैष्णव मन्त्रों के अपेक्षा इस श्रीराम मन्त्र की हजार गुणा अधिक फल प्रदान क्षमता है । एक एक श्रीराममन्त्र का भी सभी से अधिक महत्व, समस्त भक्तजनों के अभिमत फलों का प्रदान क्षमत्व है यह लिङ्ग पुराण में कहे गये हेतुओं से सिद्ध होता है और इसी माहात्म्य प्रतिपादन से लोक एवं वेद व्यवहार में प्रयुक्त होनेवाले जो कोई भी शब्द हैं उन शब्दों की एक वाक्यता भी युक्ति संगत सिद्ध होती है । यहां पर सहस्त्रनाम नाम पद भगवान् श्रीविष्णु के सहस्त्रनाम नाम बोधन परक है । सभी वेद सभी मन्त्रों के जप से श्रीरामनाम की श्रेष्ठता कहे जाने के कारण इसलिये भगवान् विष्णु के नामों का एवं मन्त्रों का उसके अन्तर्गत रूपमें स्वीकार किये जाने से श्रीरामनाम की उन सभी से अधिक ही नहीं हजारों गुणा अधिकता सिद्ध होती है ।

और यदि यह कहें कि जिस तरह अन्य स्थानों पर मूल आधार उपलब्ध नहीं होता है उसी तरह इस श्रीरामनाम के विषय में भी मूल नहीं है यह सन्देह करें तो ऐसा सन्देह करना ठीक नहीं, क्योंकि श्रीराम का बहुत रूप धारण कर्तृत्व सुने जाने

पातः, वैष्णवेष्वपि मन्त्रेषु श्रीराममन्त्रस्य फलाधिक्योक्तेः । श्रीराममन्त्रस्य तु न तदन्तर्गतत्वम् । व्याप्यकोट्यापातेन्यूनत्वापत्तेः । अनन्ता भगवन्मन्त्रा इत्युक्तेश्च, सहस्रं तेषु चाधिकमिति वैष्णवमन्त्रेभ्योऽस्य सहस्रगुणफलत्वम् । एकैकस्यापि सर्वाधिकत्वं सर्वाभिमतप्रदायकत्वञ्चेति लिङ्गपुराणोक्तेः । तेनैव च लौकिक वैदिकशब्दानामेकवाक्योपपत्तेः । अत्र सहस्रनामपदं भगवत् सहस्रनामपरम् । सर्ववेदसर्वमन्त्रजपतः श्रेष्ठतोक्तेः। अतो भगवन्नाम्नां मन्त्राणां च तदन्तरगतत्वेन अङ्गीकरणात् तेन श्रीरामनाम्नः तेभ्योऽपि सहस्रगुणाधिक्यं निष्पद्यते ।

नच यथा अन्यत्र तथैवात्रापि मूलं नोपलभ्यते इति शङ्क्यम् । श्रीरामस्य बहुरूपधारित्वश्रुतेः । मृत्सर्वाङ्गवाचकं यथा मृत्कार्यवाचकत्वेऽपि व्यापकस्य श्रीरामेतिकरणनाम्नः घटशरावादाविव एकदेशवाचित्वेन वाप्येभ्यः भगवन्ना से यह सन्देह असम्भव है । जैसे मिट्टी के समस्त भेद प्रभेद नामरूप समूह का वाचक कारण रूपमें मृत्तिका ही वाचक है इसलिये मिट्टी (मृत्तिका) रूप में जाना जाता है, उसीतरह श्रीरामचन्द्रजी के समस्त भेद प्रभेद नाम रूप आदि समूह को केवल कारणरूप होने के कारण श्रीरामनाम ही वाचक है, कारण अपने समस्त कार्यों का वाचक होता है ऐसा स्वीकार करने पर व्यापक इस श्रीराम कारण नाम की मृत्तिका भेद घटशराब आदि के समान एक देश वाचक होने के कारण व्याप्य नामों की तुलना में अन्य भगवन् नामों से यह व्यापक श्रीरामनाम की सहस्र गुणा अधिकता स्वभाव से ही सिद्ध होती है । क्योंकि श्रीरामनाम में अर्थ की तर्क संगतता सहन करने की योग्यता एवं वेद वाक्यों की अनुकूलता ये दोनों विशेषतायें पायी जाती है और वेद सिद्धान्त सम्मत होना भी सिद्ध होता है । अतः 'विश्वरूपस्य ते राम ? विश्व शब्दा ही वाचकाः' इसप्रकार महर्षि श्रीवाल्मीकिजी ने श्रीरामजी को विश्व रूपमें निरूपण कर विश्व के समस्त शब्दों को श्रीरामजी का वाचक निरूपित किया है जो सर्वथा वेदानुकूल है 'तस्माद्रामायणं देवि ? वेद एव न संशयः' ऐसा श्रीशंकरजी ने श्रीपार्वतीजी को कहा है ।

जिस सिद्धान्त या विचार प्रवाह का प्रमाणों से विरोध नहीं है ऐसा होने पर पूर्वोक्त प्रकार के वाक्यों को पक्ष बनाकर (जिसमें साध्य विषयक सन्देह होता है उसे पक्ष कहते हैं) अनुमान हेतु के आधार पर करना चाहिये । इसतरह के शिष्ट पुरुषों के वचन के अनुसार समझा जाता है । इस तरह के विषय में आचार्य जैमिनी के

मान्तरेभ्यः सहस्त्रगुणाधिक्यसिद्धेः । अर्थस्य युक्तिसहत्वात् श्रुत्यनुकूलत्वाच्च वेदसम्मतत्वं सिद्ध्यति ।

असति विरोधे एवं विधानि वाक्यानि पक्षीकृत्य अनुमातव्यम् इति शिष्टवचनात् बुध्यते । उक्तञ्च जैमिनिना-'विरोधे तु उपेक्षं स्यात् ।' अनुमानाकारश्च विमतानि वाक्यानि वेदमूलकानि भवितुमर्हन्ति वेदाविरोधे सति वेदार्थप्रज्ञोक्तत्वात् मन्वादिप्रणीतवाक्यवत् । अनुमानमात्रबोध्यानि औपनिषदानि अपि ब्रह्मादीनां अन्वर्यबोधकः सर्ववाच्यस्य वाचकः स्वभूः ज्योतिर्मयः अनन्तरूपित्वेन रेफारूढमूर्तयः सन्ति । लौकिकवैदिकशब्दान्तरगतेभ्यः गणेशशिवादिकालीभवानीसूर्यादिशब्देभ्यः सर्वेषु मन्त्रेषु वैष्णवं मन्त्रं श्रेष्ठ मुक्तम् । वैष्णवमन्त्रेष्वपि भगवन्नामान्तरेभ्यः श्रीरामनाम्नः सहस्त्रगुणाधिक्यस्य निर्वाधत्वेन उपपत्तेः 'राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः । राम एव परं तत्वं

द्वारा कहा भी गया है कि यदि परस्पर सिद्धान्त में विरोध उपस्थित होता हो तो, उपेक्षा योग्यता होती है । तथा श्रीरामनाम की श्रेष्ठता के विषय में अनुमान वाक्य का स्वरूप यह होगा कि-जिसके विषय में मतभेद है वे वाक्य समूह वेद मूलक हैं । ऐसा होने की इन वाक्यों में योग्यता है । वेद के साथ विरोधाभाव होने के साथ-साथ वेदार्थ तत्व के विशेषज्ञ ऋषियों के द्वारा निरूपित होने के कारण होने से मनु आदि प्रतिपादित धर्मशास्त्र वचनों के समान जैसे मनु आदि के वचन वेद प्रमाण सिद्ध होने से प्रामाणिक हैं उसीतरह यह भी वेद प्रमाण सिद्ध है । वेद विरुद्ध कोई भी स्मृति स्मृति वाक्य वा अन्य कोई भी प्रामाणिक नहीं होता ।

अनुमान मात्र से ज्ञान करने योग्य उपनिषद् सम्बन्धी अर्थात् उपनिषदों में निरूपण किये गये वचन भी जिस तरह ब्रह्म आदि के स्वरूप योग्यता का अनुगतार्थ बोधक हैं । उसी तरह समस्त वाङ्मय मात्र का वाच्यार्थ का प्रतिपादक स्वभूः स्वयं अपनी इच्छानुसार होने वाला ज्योतिर्मय अनन्त दिव्य प्रकाश स्वरूप अनन्त रूपों वाला अर्थात् विराट् स्वरूप का भी रूपी होने से अग्नि वीज रेफ में स्थापित अनन्त स्वरूप हैं । लौकिक एवं वैदिक शब्दों के अन्तर्गत होने से गणेश शिव आदि काली भवानी सूर्य आदि शब्दों के सभी मन्त्रों में विष्णु देवता सम्बन्धी मन्त्र श्रेष्ठ बताया गया है। तथा वैष्णव मन्त्रों में भी भगवान् विष्णु के अन्य नामों से भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का नाम की सहस्त्र गुणा अधिक श्रेष्ठता का निर्वाध रूपमें तर्क संगत सिद्ध होता है

श्रीरामो ब्रह्मतारकम्' इतिश्रुतेः 'परान्नायणाच्चैव कृष्णात्परतरादपि । यो वै परतमः श्रीमान्रामोदाशरथिस्वराट्' इत्यागमोश्च, श्रीकृष्णादीनां मूलकारणत्वं सिद्ध्यति सर्वेशश्रीरामस्य ।।७।।

गोपालतापनीयोपनिषत् प्रामाण्येन नारायणाथर्वशीर्षप्रामाण्येन चास्तु तर्हि श्रीनारायणस्यैव सर्वावतारित्वम् 'एको ह वै नारायणः आसीन्न ब्रह्मा न ईशानो नापो नाग्नीषोमौद्यावापृथिव्यौ...एकाकी नारायण एवेति, अथ पुरुषो ह वै नारायणो कामयत प्रजा सृजेयेति, नारायणात् प्राणो जायते मनः सर्वेन्द्रियाणि च...नारायणे प्रलीयन्ते' इति उपनिषत् प्रामाण्यात् श्रीनारायणस्य श्रीरामजी ही परब्रह्म हैं श्रीरामजी ही परम तप हैं श्रीरामजी ही परम तत्त्व हैं एवं श्रीरामजी ही तारक ब्रह्म हैं तथा पररूप श्रीनारायणजी से श्रीकृष्णजी परतर हैं पर उनसे भी स्वयं प्रकाशमान् सर्वकारणभूत दशरथ नन्दन श्रीरामजी परतम हैं यानी 'सर्वापेक्षया सर्वेश्वर श्रीरामजी पर एवं सर्वोत्कृष्ट हैं । इन शास्त्रीय हेतुओं से श्रीकृष्णादि का मूल कारणता सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी में है यह प्रमाण सिद्ध होता है ।।७।।

गोपालतापनीय उपनिषद् की प्रामाणिकता के अनुसार तथा नारायणाथर्वशीर्ष के प्रमाणानुसार श्रीनारायण का ही तब सभीका अवतारी मान लिया जाय इसमें क्या हानि है । इसके पुष्टि के लिये 'निश्चित रूपसे एक मात्र श्रीनारायणजी ही सृष्टि की पूर्वावस्था में थे न श्रीब्रह्माजी थे न श्रीमहादेवजी थे न जल था न ही अग्नि और सोम था तथा अन्तरीक्ष पृथिवी आदि भी नहीं थे । एक मात्र श्रीनारायणजी ही थे अन्य नहीं । इसके वाद प्राणी मात्र के अन्दर विराजने वाले इस श्रीनारायणजी ने कामना किये कि प्रजा की सृष्टि करुँ । श्रीनारायणजी से प्राण की उत्पत्ति होती है । मन एवं समस्त इन्द्रियाँ उत्पन्न हुई...नारायण में ही विलीन होते हैं' इन उपनिषदों के प्रामाणिकता के अनुसार श्रीनारायणजी का सृष्टि के एवं प्रलय की कारणता सुने जाने से श्रीनारायणजी को अवतारी मानना चाहिये । और श्रीनारायणजी का नित्यत्व निर्विकल्पकत्व, निरञ्जनत्व आदि श्रुति वचनों से प्रमाणित होने से भी एक अद्वितीय श्रीनारायणजी ही है दूसरा कोई भी नहीं है इत्यादि वेद वाक्यों से श्रीनारायणजी का अवतारित्व युक्तिसंगत होता है ऐसा यदि कहें तो यह अवतारित्व प्रतिपादन उचित नहीं । क्योंकि जिसप्रकार श्रीनारायणजी से भिन्न किसी अन्य का प्रतिषेध श्रवण वेदवचन में पाया जाता है उसीप्रकार सृष्टि से पूर्वावस्था में एक मात्र मैं ही पहले

सृष्टिप्रलयहेतुत्वश्रवणात् । तस्य च नित्यत्वनिर्विकल्पत्वनिरञ्जनत्वादिश्रुति-वचनाच्च एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चिदिति तस्यावतारित्वमुपपन्नं भवतीति । तन्न यथा हि श्रीनारायणव्यतिरिक्तस्य प्रतिषेधश्रवणं श्रुतावुपलभ्यते तथैव 'अहमेक प्रथमत आसीत् वर्तानि च भविष्यामि च नान्यः कश्चिन्म त्तोव्यतिरिक्तचेत्यादिभि रुद्राथर्वशीर्षोपनिषदा अपि प्रतिषिद्ध्यते रुद्रव्यतिरिक्त सृष्टिप्रलयादिहेतुत्वञ्चापि तत्रोच्यते । इत्थमुभयत्र समानत्वेन द्वयोरेकस्य मूलका-रणत्वाङ्गीकारेऽन्यत्रातिव्याप्तिदोषापत्तेः, उभयनिष्ठयोर्वाक्ययोरप्रामाणिकत्वे च नेष्टसिद्धिः । तथा च नारायणोपनिषत्सु ह वै इति पदश्रुतेः ह वै पदानाञ्च प्रसिद्धार्थद्योतकत्वम् प्रसिद्धहेतूद्देशेनैव तयोः प्रयोगात् । तथा च 'एको ह वै नारायणो देवः' इतिगोपालोपनिषदि, 'एको ह वै नारायणः' इतिमहोपनिषदि, अथ च 'पुरुषो ह वै नारायणः' इतिनारायणोपनिषदि च श्रवणात् सर्वासां श्रुतीनामनुवादकत्वं सिद्ध्यति कस्यानुवादकत्वमिति जिज्ञासायां शिवरुद्रादि

था हूँ एवं रहूँगा । मुझसे अतिरिक्त दूसरा कोई भी नहीं है इत्यादि रुद्राथर्वशीर्ष वचनों से और उपनिषद के द्वारा भी सृष्टि से पूर्वावस्था में श्रीरुद्र से भिन्न किसी अन्य का निषेध किया जाता है। अर्थात् श्रीरुद्र में सृष्टि प्रलय आदि की कारणता भी कही जाती है। तदनुसार इसमें भी अवतारित्व सिद्ध होता है। इसप्रकार श्रीरुद्र एवं श्रीनारायणजी दोनों में समान रूपसे अवतारित्व रूप मूलकारणता होने पर दोनों में से किसी एक की मूलकारण का स्वीकार करने पर अन्य में अतिव्याप्ति दोष की आपत्ति होगी । अतिव्याप्ति दोष होने से अवतारित्व लक्षण संगत नहीं होगा । दोनों में ही स्थित रहनेवाले वाक्यों की अप्रामाणिकता सिद्ध होने पर अभिमत पक्ष की सिद्धि नहीं होती है । और जैसे कि नारायण उपनिषदों में 'ह वै' पद सुने जाते हैं 'ह वै' पदों के सुने जाने के कारण तथा इन पदों की प्रसिद्धार्थ द्योतकता है इसलिये प्रसिद्ध हेतुओं के उद्देश्य से ही ह वै इन पदों का प्रयोग किया गया है । इसप्रकार जैसे कि 'एको ह वै नारायणोदेवः' इत्यादि रूपमें गोपालतापनीय उपनिषद में प्रयोग किया गया है 'एको ह वै नारायणः' ऐसा महोपनिषद् में कहा गया है । और इसके वाद 'पुरुषो ह वै नारायणः' ऐसा नारायणोपनिषद में सुने जाने से तीनों उपनिषदों में ह वै प्रयोग के श्रवण होने के कारण सभी श्रुति वचनों का अनुवादकत्व मात्र सिद्ध होता है । यदि ऐसी जिज्ञासा हो कि किसका अनुवादकत्व है तो जिज्ञासा शान्ति के लिये शिव, रुद्र

प्रतिपाद्यस्येति । श्वेताश्वतरोपनिषदि रुद्रोपनिषदि च सृष्टिप्रलयावधित्वप्रतिपादकतया नारायणोपनिषद् वाक्यानां चैकवाक्यता भवति समानार्थकत्वात् 'देवा ह वै रुद्रमपृच्छन् कोभवान् इति सोऽब्रवीत् अहमेकः प्रथममासीद् वर्तानि च भविष्यामि च नान्यः कश्चिन् मत्तोव्यतिरिक्त इति' अत्रापि 'ह वै' इतिनिपातौ दृश्येते । द्विष्ठस्य मूलकारणत्वस्यायुक्तत्वात्, क्लृप्तकल्पितयोः क्लृप्तस्यैव च बलीयस्त्वात्, श्रीशिवस्यापि मूलकारणत्वं न युक्तमनुवाद्यत्वात् । यत्तु क्वचित् श्रीरामचन्द्रस्य श्रीशिवाराधकत्वं पुराणादौ श्रूयते, तन्न युक्तत्वम् यतो हि श्रुतौ तु-

अथ तं प्रत्युवाच स्वयमेव याज्ञवल्क्यः-

''श्रीरामस्य मनुं काश्यां जजाप वृषभध्वजः ।

मन्वरसहस्त्रैस्तु जपहोमार्चनाभिः ॥

ततः प्रसन्नोभगवान् श्रीरामः प्राह शंकरम् ।

वृणीष्व यदभीष्टं तद्दास्यामि परमेश्वर ? इति ॥

आदि पदों से प्रतिपाद्य देवताओं का अनुवादकत्व है यह कहते हैं । श्वेताश्वतरोपनिषद् में और रुद्रोपनिषद में भी सृष्टि से लेकर प्रलय पर्यन्त की कारणता को प्रतिपादन करने वाला होने के कारण और नारायणोपनिषद् के वाक्यों की भी एक वाक्यता होती है क्योंकि दोनों का ही अर्थ समान होने के कारण एक वाक्यता समुचित है जैसे कि देवतागण निश्चित रूपसे रुद्र को प्रश्न किये कि आप कौन हैं इसके उत्तर में रुद्र कहे कि सृष्टि से पूर्वावस्था में मैं ही था वर्तमान में भी मैं ही हूँ एवं भविष्य में भी मैं ही रहूँगा मुझसे अतिरिक्त दूसरा कोई भी नहीं है । इस रुद्रोपनिषद् वाक्य में भी ह वै ये दोनों निपात प्रयुक्त हुए हैं ऐसे देखे जाते हैं । इसप्रकार दो में रहनेवाली मूल कारणता तो अनुपयुक्त है । असंगत मूलकारणता युक्त नहीं है । निश्चित एवं कल्पना प्राप्त दोनों की उपस्थिति होने पर निश्चित ही बलवान् होता है । क्लृप्त शब्द का अर्थ बलिष्ठ है । क्लृप्त की बलिष्ठता के कारण शिव का भी मूलकारणत्व प्रतिपादन युक्ति संगत नहीं है । क्योंकि मूलकारणता असंगत होने के कारण शिव का भी अनुवाद्यत्व ही है । और जो प्रतिवादी गण कहीं पर प्रतिपादन करते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी का श्रीशिवजी का उपासक होना पुराणादि ग्रन्थों में सुना जाता है तो आपके द्वारा प्रतिपाद्य अवतारी श्रीरामचन्द्रजी का श्रीशिवाराधकत्व श्रवण होता है तो यह प्रतिवादियों का कथन वेदशास्त्र सम्मत या तर्कसंगत नहीं है क्योंकि वेद में तो निम्नप्रकार से रहस्य

सहोवाच-मणिकर्णिकायां मत्क्षेत्रे गंगायां वा तटे पुनः ।
म्रियते देहि तज्जन्तोर्मुक्तिः नातोवरान्तरम् ॥
अथ सहोवाच श्रीरामः-
क्षेत्रेऽत्र तव देवेश ? यत्र कुत्रापि वा मृता ।
कृमिकीटादयोप्याशुमुक्ताः सन्तु न चान्यथा ॥
अविमुक्ते तव क्षेत्रे सर्वेषां मुक्तिसिद्धये ।
अहं सन्निहितस्तत्र पाषाणप्रतिमादिषु ॥
क्षेत्रेऽस्मिन् योऽर्चयेद्भक्त्या मन्त्रेणानेन मां शिव ? ।
ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

मूलतत्व का वर्णन मिलता है। परतत्त्व निर्णय परायण मिथिलाधिपति विदेह राजा जनक से सामायोजित सभा में ब्रह्म रुद्र बृहस्पति याज्ञवल्क्य भरद्वाज अत्रि प्रभृति तत्त्वज्ञ महापुरुष संमिलित हुये। चर्चा प्रसङ्ग में श्रीराम पूर्वतापनीय उपनिषद् प्रधानतया केन्द्रविन्दु बनी रही उसमें सर्वेश्वर श्रीरामजी के नाम रूप लीला एवं धाम के विषय में व्यास-समास चर्चा के अनन्तर उत्तरभाग में सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के महामन्त्रों का वैभव विशिष्ट महिमा तथा सम्प्रदाय सम्बन्धी सम्वाद महर्षियों के सम्पन्न हुये। अनन्तर श्रीराम तत्त्वज्ञ महर्षि श्रीयाज्ञवल्क्यजी ने सर्वेश्वर श्रीरामजी तथा श्रीराम महामन्त्र का परत्व प्रति पादन एवं सम्प्रदाय तथा परम्परा प्रतिपादनार्थ महर्षि अत्रि ऋषिजी के प्रति स्वयं कहा-

सर्वेश्वर श्रीरामजी के ब्रह्मतारक षडक्षर महामन्त्रराज का सहस्रों मन्वन्तर तक जप होम अर्चन एवं आगे निर्दिष्ट सप्तचत्वारिंशत् मन्त्रों द्वारा स्तुति करते हुये वृषभध्वज-श्रीशंकरजी काशी में तप किये अनन्तर ज्ञान बल ऐश्वर्य वीर्य तेज शक्ति प्रभृति छओं ऐश्वर्यों से परिपूर्ण सर्वेश्वर श्रीरामजी प्रसन्न होकर श्रीशंकरजी से कहे-हे परमेश्वर ? जो अभीष्ट हो मांगिये उसे दे देता हूँ।

शरणागत वत्सल श्रीरामजी की दिव्य वाणी श्रवण कर श्रीशंकरजी ने प्रार्थना की सर्वेश्वर श्रीरामजी ? यदि आप मुझपर प्रसन्न हों तो मणिकर्णिका में मेरे इस पञ्चकोशी काशी क्षेत्र में अथवा गंगा के तट में मरे हुये जन्तुओं को मुक्ति प्रदान कर दें यही वर मैं मांगता हूँ दूसरा कोई वर हमें नहीं चाहिये।

श्रीशंकरजी की प्रार्थना सुनकर प्रसन्नतापूर्वक श्रीरामचन्द्रजी ने कहा-हे देवेश ? इस तुम्हारी काशी क्षेत्र में-पञ्चकोशी के अन्दर कहीं भी मरे मनुष्य कीटादि सभी इसी

त्वत्त्वो वा ब्रह्मणो वापि ये लभन्ते षडक्षरम् ।
जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युर्मुक्ता मां प्राप्नुवन्ति ते ॥
मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम् ।
उपदेक्ष्यसि मन् मन्त्रं स मुक्तोभविता शिव ? ॥

श्रीरामोत्तरतापनीयोपनिषद् ४/१-८

वेदावतारभूते श्रीमद्रामायणेऽन्यत्रागमशास्त्रे च नास्ति गन्धावलेशः श्रीशिवपूजनविषयेऽतः प्रकृतश्रुतिवचनानामननुकुल्येपि लोकशिक्षाभिप्रायेण मानव जन्मान्त में मुक्त होंगे यह मेरा वर है जो असत्य नहीं होगा । इस आपके अविमुक्त क्षेत्र में सभी को मुक्ति प्रदानार्थ पाषाण या अन्य प्रतिमाओं में भी मैं सदा सन्निहित ही रहूँगा ।

हे शिवजी ? जिस महामन्त्र का अनुष्ठान आपने किया है उस मन्त्रराज से कोई भी भक्तिभाव पूर्वक मेरी पूजा करेगा उसे अज्ञानावस्था में हुये ब्रह्महत्यादि पापों से भी मुक्त कर दूँगा इस विषय में आप चिन्ता न करें ।

सर्वेश्वर श्रीरामजी ने कहा श्रीशंकरजी ? जिस षडक्षर ब्रह्मतारक श्रीराम महामन्त्र का अनुष्ठान आपने किया है उस महामन्त्रराज को आपसे या श्रीब्रह्माजी अथवा अविच्छिन्न परम्परागत आचार्यजी से जिसे विधिपूर्वक ग्रहण कर जो साधकवर्ग साधना करेंगे वे जीवन काल में ही मन्त्र सिद्ध होंगे एवं परिणामतः सायुज्य प्राप्तकर मुझे मेरे दिव्यलोक श्रीसाकेतधाम में प्राप्त करेंगे ।

सर्वशरण्य श्रीरामजी के इस वरदान रूप आदेश से श्रीराम महामन्त्र की दो परम्परा चली एक श्रीशंकरजी की जिसमें महर्षि श्रीअगस्त्यजी महर्षि श्रीसुतीक्ष्णजी प्रभृति आते हैं । दूसरी श्रीब्रह्माजी की जिसमें ब्रह्मर्षि श्रीवशिष्ठजी महर्षि श्रीपराशरजी महर्षि श्रीव्यासजी परमहंस शिरोमणि श्रीराम ब्रह्मतत्त्वोपदेशक श्रीशुकमुनिजी प्रभृति का समावेश है जिनकी विरक्त एवं गृहस्थ शिष्यों की परम्परा आज तक विश्व में सर्वत्र न्यूनाधिक रूपसे व्याप्त है । इन्हीं महर्षियों की विरक्त परम्परा की धारा में २२.वें श्रीसम्प्रदायाचार्य आनन्दभाष्यकारजी हुये अग्रिम अविच्छिन्न परम्परा में ४१.वें आचार्य के रूपमें मेरी-इस भाष्योद्योत के लेखक की गणना है जिसका क्रमबद्ध विवेचन आगे होगा ।

सर्वेश्वर श्रीरामजी ने पुनः कहा-हे शिवजी ? जिस किसी मुमूर्षु व्यक्ति के

लीलया च तद्बोध्यम्, धर्मनिष्ठराजवंशावतीर्णस्य प्रकटीकृतमानुषदेहस्य लोकशिक्षाधिया तथा व्यवहारस्यौचित्यात् 'यद् यदाचरतिश्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः' इतिगीतोक्तेः । श्रीशिवस्य श्रीरामसेवकत्ववचनं तु न तथा प्रकृतोदाहृत श्रुतिसामञ्जस्यात् तस्यामानुषत्वादिप्राप्तौ श्रुतौ सेवकत्वेन स्मरणात् । अन्यथा वास्तवमूलकारणत्वानुपपत्तेः । ननु 'नारायणः परंब्रह्म तत्त्वं त्वं नारायणः परः' इत्यादिबृहन्नारायणनचनात् तस्यैवावतारित्वमस्त्विवतिचेन्न, तत्र परशब्दस्य ब्रह्मशब्दस्य च समानार्थकतया विशेष्येऽवतारित्वनारायणे पर्यवसानासम्भवात् ।

दाहिने कान में इस मेरे षडक्षर तारक महामन्त्र का स्वयं उपदेश करेंगे वह अवश्य ही मुक्त हो जायेगा । यहां यह स्मरण रहे परम्परागत आचार्यजी से सविधि उपदिष्ट श्रीराम महामन्त्र से ही मुक्ति सम्भव है मनमुखीपना से नहीं । प्रकृत में जैसे श्रीशिवजी से सर्वेश्वर श्रीरामजी की उपासना निरूपित है उससे सभी की कुशंका शान्त हो जाती है इतना ही नहीं वेद का अवतार श्रीमद्रामायण में भी श्रीरामजी के द्वारा श्रीशिवजी की पूजा का गन्ध भी नहीं है अर्थात् कहीं चर्चा भी नहीं है । श्रीरामचरितमानस का प्रसंग क्षेपक है । तथैव किन्ही पुराणों में चर्चित प्रसंग भी क्षेपक है इस विषय में निबन्धान्तर में विवेचन करूँगा । श्रेष्ठ लोग जो आचरण करते हैं उसका अनुकरण सामान्य लोगों के द्वारा भी किया जाता है इस दृष्टि से लोकशिक्षा के अभिप्राय से मनुजावतार काल में श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा शिवाराधकत्व प्रस्तुत किया गया ऐसा समझना चाहिये । जिस राजवंश में परम्परा से धर्म के प्रति निष्ठा प्रतिष्ठित है उस राजवंश में अवतार धारण किये हुए जो अपने निर्गुण निराकार स्वरूप को कार्य कलापानुसार मानव देह के रूपमें प्रकट किये हैं उन श्रीरामचन्द्रजी की लोकशिक्षा की भावना से उस तरह का सामयिक शिवोपासना गीता वचनानुसार ठीक है पर महान् आश्चर्य की बात तो यह है कि ऊपर लिखे श्रुति में श्रीशिवजी का श्रीरामजी की उपासना करना ही वर्णित है एवं श्रीमद्रामायण तथा अन्य आगम शास्त्र में भी कहीं भी श्रीरामजी के द्वारा श्रीशिवोपासन का कुछ भी वर्णन न होने पर भी कतिपय स्थल के प्रक्षिप्त अंश को लेकर लेखकाभास लोग टूट पड़ रहे हैं जो विचारणीय है इस प्रसंग में पुनः विचार करूँगा ।

भगवान् शिव का श्रीरामचन्द्रजी का सेवकत्व वचन तो उस प्रकार लोक शिक्षा भावना से नहीं है । क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी की अमानुषत्व आदि दशाओं के प्राप्त होने

नच नारायणपरवाक्यानुरोधात् तस्य ब्रह्मणोरूपकल्पनेति वाच्यम्, तदपि न कोऽवताराणां श्रेष्ठः यं स्मृत्वा मुक्ताभवन्ति, इति एकवचनेन ब्रह्मणः प्रश्ने श्रीकृष्णावतारस्य श्रेष्ठत्वज्ञापनाय, नारायणोदेव इत्युक्त्वा एकं रुद्रा यजन्तीत्यादि द्वादशभेदानाह । तत्र च श्रीनृसिंहमत्स्यादीनां नामश्रवणमपि न । तेष्वपि मोक्षप्रदत्वादिसाधने तदधिकत्वानुपपत्तेः । तस्य नारायणावतारबोधकवाक्यतः शङ्खचक्रादिसहितद्वयादिसहस्रान्तभुजत्वब्रह्मावतारत्वबोधकत्वेन 'ब्रह्मणोरूपकल्पना' इत्यादिप्रकरणस्य बलवत्तया ब्रह्मशब्दसामान्यत्वेनाङ्गीकार उपपद्यते । पर वेद में भगवान् शिव को श्रीरामजी का सेवक उपासक के रूपमें प्रतिपादन पूर्वोक्त श्रुति में किया गया है । अन्यथा वास्तविक मूलकारण स्वरूप अवतारित्व की सिद्धि युक्तिसंगत नहीं हो सकेगी ।

यदि यह प्रश्न करें कि 'नारायण ही परब्रह्म हैं । नारायण ही परमतत्व हैं' इत्यादि बृहन्नारायण उपनिषद् के वचनानुसार उन श्रीनारायण का ही अवतारित्व स्वीकार करें तो क्या हानि है । यदि ऐसा कहें तो श्रीनारायणजी को अवतारित्व सिद्ध नहीं किया जा सकता । क्योंकि उस वाक्य में पर शब्द का एवं ब्रह्म शब्द का समान अर्थवाचक होने से विशेष्यभूत अवतारित्व साध्य श्रीनारायण में वाक्यार्थ की सम्पन्नता असम्भव है । और श्रीनारायण परक वाक्यानुरोध से भी उस ब्रह्म की परिकल्पना की गयी है यह भी नहीं कह सकते । क्योंकि उपनिषद् में यह प्रश्न किया गया कि सभी अवतारों में कौन श्रेष्ठ है जिसको स्मरण करके प्राणी जन्म-मृत्यु बन्धन विमुक्त हो जाते हैं । उस वाक्य में 'कः श्रेष्ठः' में एकवचन प्रयोग से ब्रह्म का प्रश्न होने पर श्रीकृष्णावतार की श्रेष्ठता प्रतिपादन करने के लिये उत्तर देते हुए 'नारायणोदेवः' नारायण देवता यह कहकर एक को रुद्रगण उपासना करते हैं इत्यादि भिन्न भिन्न उपासक भेद से बारहं भेदों को कहा और उस भेद प्रतिपादन प्रकरण में श्रीनृसिंह श्रीमत्स्य आदि नामों का श्रवण भी नहीं होता है । उन सभी में मोक्षप्रदान करने की क्षमता आदि सिद्ध करने पर उन सवके अपेक्षा श्रीकृष्ण में अधिकत्व सिद्ध होना तर्कसंगत नहीं होता है । उस श्रीनारायणजी का अवतार बोधक वाक्य से शङ्ख, चक्र, गदा आदि के सहित दो से लेकर हजार पर्यन्त बाहुवाला ब्रह्म का अवतार बोधक रूप में कहा गया है न कि ब्रह्म की 'उपकल्पना है' इत्यादि प्रकरण की बलवत्ता से ब्रह्म शब्द सामान्य रूपमें अंगीकार सिद्ध होता है क्योंकि नारायण उपनिषद् में स्वतन्त्र

यतो हि नारायणोपनिषदि स्वतन्त्रस्य ब्रह्मशब्दस्य नारायणशब्दस्य वा कारण वाचकत्वमवतारित्वञ्च न श्रूयतेऽतः पशुछागन्यायेन न पर्यवसानम् ॥८॥

अवतारिब्रह्मविषये श्रुतौ श्रूयते 'न तत्समोऽभ्यधिकश्च श्रूयते' इति । श्रीरामनाममाहात्म्यवन्नारायणमाहात्म्यं न श्रूयते । न वा तत्र सामान्यविशेषत्वेन श्रीराम इव ब्रह्मशब्दवाच्यत्वं दृश्यते । श्रीनृसिंहादावपि तथात्वापत्तेः । श्रीरामब्रह्मणि तु तद्दृढयन् स्ववाच्यस्य तत्तदावतारित्वं साधयन् "इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते" इतिश्रुत्या श्रीरामाख्यस्य ब्रह्मणः सर्वावतारित्वं

ब्रह्म शब्द का अथवा नारायण शब्द का कारणवाचकत्व अथवा अवतारित्व नहीं सुना जाता है । इसलिये पशुछागन्याय से पूर्णता नहीं होती है ॥८॥

अवतारी ब्रह्म के विषय में वेद वचनों में सुना जाता है कि अवतारी ब्रह्म के समान अथवा उनसे बढकर कहीं भी नहीं सुना जाता है । जिस तरह श्रीरामजी के नाम का माहात्म्य है उसी तरह श्रीनारायणजी के नाम का माहात्म्य नहीं सुना जाता है । अथवा न हीं श्रीरामजी के समान सामान्य विशेष स्वरूप में ब्रह्मशब्द वाच्यत्व देखा जाता है । यदि ऐसा स्वीकार करेंगे तो श्रीनृसिंह श्रीकृष्ण आदि में भी उसी प्रकार ब्रह्मत्व होने लगेगा । श्रीराम ब्रह्म में तो अवतारित्व सिद्धान्त को दृढता से निरूपण करते हुए, श्रीराम शब्दार्थ का अवतारित्व सिद्ध करते हुए 'इसप्रकार इस श्रीराम पद के द्वारा परब्रह्म प्रतिपादित हो जाता है' इस वेदवचन के द्वारा श्रीराम नाम से प्रसिद्ध ब्रह्म का सर्वावतारित्व अर्थात् सभी अवतारों का अवतारी ज्ञात कराया गया है । उस परब्रह्म का प्रकरण उपसंहार आदि हेतुओं के द्वारा निश्चय रूपसे प्रतिपादन किया गया है । जो परब्रह्म ब्रह्माण्ड के अन्दर एवं बाहर व्याप्त होकर रहता है, एवं जो विशेष रूपसे सर्वव्यापक विराट् महासागर के मध्य शयन करता हुआ जल में हमे और तुम्हें उत्पन्न किये । इत्यादि वेद वचन एवं धर्मशास्त्र वचनों तथा 'उस सनातन स्वरूप से विराजमान आप हैं एवं किसी से भी जीते नहीं जा सकते हैं सव भूतों की रक्षा हेतु आप ही ने श्रीविष्णु का रूपधारण किये' इत्यादि श्रीमद्रामायणीय ब्रह्माजी की वाणी से यह सिद्ध हो जाता है कि सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी का ही अवतार श्रीनारायण आदि हैं । और उन्हीं श्रीरामचन्द्रजी का ही रुद्र आदि का अवतार है यह भी कारण दृष्टि से प्रतिभासित होता है । अथवा दूध के समुद्र में शयन करनेवाले श्रीनारायणजी में ब्रह्म का व्यवहार वेद में सुने जाने के कारण अवतारित्व आरोपित किया जाता है ।

बोधितम् । तस्य प्रकरणोपसंहारादिलिङ्गैश्च निर्णयः कृतः । यो ब्रह्माण्ड स्यान्तर्वहिर्व्याप्नोति, यो विराट् महार्णवे शयानोऽप्सु मां त्वां पूर्वमजीजनत् । एवमादिश्रुतिस्मृतिवचोभिः "ततस्त्वमसि दुर्धर्षात्तस्माद्भावात्सनातनात् । रक्षां विधास्यन् भूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान्" (७/१०४/९) इत्यादि श्रीमद्रामायणस्य वेदावतारभूतस्य वचनैः श्रीरामस्यैव श्रीविष्णुनारायणरूप धारित्वावगनात् तस्यैव च रुद्राद्यवतारित्वमिति कारणदृष्ट्या वा क्षीरसागर

उपनिषदों के अन्दर व्यवहार में आनेवाले सभी ब्रह्म विषयक वाक्यों की एक वाक्यता अर्थात् एक सूत्र में जोड़ने पर दो में होने वाला अवतारित्वपना का प्रतिपादन करना तर्कसंगत नहीं है। क्योंकि दो से प्रारम्भ कर हजार पर्यन्त भुजाओं वाले ब्रह्म का अवतार के स्वरूप में प्रतिपादन किये जाने के कारण अवतारित्व श्रीरामजी में है अन्य में नहीं कारण कि सभी की अपेक्षा उत्कृष्ट होने के कारण और प्रत्यक्ष श्रुति वचनानुसार श्रीरामचन्द्रजी में ही अवतारित्व सम्यक् प्रकार से युक्ति संगत होता है। क्योंकि उपनिषद् में सुने जाने के कारण उन उन प्रकरणों से ज्ञात होने से श्रीरामजी में ही अवतारित्व है। सामान्य शब्द के द्वारा जाना गया ब्रह्म शब्द की विशेष वाचक श्रीरामजी में परिपूर्णता होती है। विशेषभेद के उपस्थित कराने वाले श्रीविष्णुजी के हजार नाम का अनन्त भगवन्नामापेक्षया अगणित गुणाधिक श्रीराम मन्त्रों की तुलना किये समुत्कर्ष जानने के कारण उन्हीं श्रीरामजी में परिपूर्णता होती है। 'इसप्रकार ये श्रीरामचन्द्रजी 'राम' पद के द्वारा श्रुति से परब्रह्म कहे जाते है' "परम चैतन्यमय परमेश्वर" इत्यादि चैतन्यमयत्व पूर्ण ब्रह्म ही श्रीराम शब्द का वाच्य प्रतिपाद्य है इस तरह श्रुति में देखा जाता है। यह आत्मा ब्रह्म है, प्रत्येक अवस्था में मैं श्रीराम स्वरूप हूँ। इस प्रकार ब्रह्म पद के स्थान पर श्रीराम पद का व्यवहार किये जाने के कारण और चरम मन्त्र के द्वारा भी श्रीरामचन्द्रजी का चराचर जगत का अन्तर्यामित्व सभी अवतारों का अवतारित्व प्रकाशित किया जाता है। भगवान् श्रीविष्णु के हजारों नामों के समान एक श्रीराम नाम है यह विषय भी अवतारित्व प्रकाशन से ही युक्ति संगत होता है। और अवतारित्व प्रकाशन के द्वारा ही सभी की परमकारणता भी सिद्ध होती है यह अच्छी तरह युक्ति युक्त है।

जिस परम नित्य आनन्द एवं चैतन्यमय श्रीरामचन्द्रजी में योगिजन समाधि जनित परमानन्द की अनुभूति करते हैं इसलिये ये श्रीरामचन्द्रजी परब्रह्म स्वरूप में

शायिनि ब्रह्मश्रुत्यावतारित्वमारोपितम् । सर्वासामुपनिषदन्तर्गतवाक्यानामेकवाक्यतया द्विनिष्ठमवतारित्वसाधनमयुक्तम् । द्वयादिसहस्रान्तहस्तवतां ब्रह्मावतारत्वेन बोधनात् । सर्वोत्कृष्टतया प्रत्यक्षश्रुतेश्च श्रीरामे सम्यगुपपद्यते । उपनिषदि श्रवणेन तत् प्रकरणबोधात् सर्वेशश्रीरामेसर्वावतारित्वं सर्वतोभावेन निष्पद्यते । सामान्यशब्देन ज्ञातस्य ब्रह्मशब्दस्य विशेषे पर्यवसानम् । विशेषोपस्थापके विष्णुसहस्रनामनि श्रीरामेऽनन्तभगवन्मन्त्रादिकसमुत्कर्षकथनेन पर्यवसानत्वम् 'इति रामपदेनासौ परब्रह्माधियते' इत्युपक्रम्य 'रामचन्द्रश्चिदात्मकः' इतिब्रह्मरामयोरभेदः । 'चिन्मयः परमेश्वरः' इत्यादौ चिन्मयत्वं, ब्रह्मरामशब्दवाच्यत्वञ्च प्रतिपादित किये जाते हैं । उपासकों के अभिमत लक्ष्य की सिद्धि के लिये ब्रह्म की उपकल्पना की जाती है, जो परम चैतन्यमय हैं अखण्ड एवं अद्वितीय हैं निष्कल हैं एवं शारीरिक बन्धन विमुक्त हैं उन परब्रह्म की उपकल्पना की जाती है। यहां पर जो परब्रह्म कहा जाता है उसी अद्वितीय अखण्ड ब्रह्म की उपासकों की अभीष्ट सिद्धि हेतु ब्रह्म की उपकल्पना है इसतरह अन्वय होता है। किन्तु वेदवचन कलाप तो श्रीरामचन्द्रजी में ही परिपूर्ण होते हैं । और जैसे मूल के ज्ञान से समस्त शाखा प्रशाखाओं का उसी के माध्यम से ज्ञान हो जाता है उसी प्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी में मूलकारणता एवं अवतारित्व को प्रकाशित करती हैं। उन अवतारी श्रीरामचन्द्रजी के ही अवतार स्वरूप श्रीमत्स्य श्रीकूर्म श्रीबराह श्रीनृसिंह श्रीकृष्ण श्रीवामन श्रीनारायण आदि देवगण हैं। उन उन स्थानों पर मत्स्य कूर्मादि जातीय बुद्धि का निवारण करके मत्स्य कूर्मादि में ब्रह्मत्व बुद्धि को अवगत कराते हैं। जिस तरह एक ही कारण स्वरूप सुवर्ण कटक कुण्डल हार आदि आभूषणों की विशेषता को उपलब्ध करके उनके रजतत्त्व आदि बुद्धि का उन कटक कुण्डलादि में निवारण पूर्वक यह सुवर्ण का बना हुआ उसका विकार स्वरूप है इस विषय का बोध कराता है। इसीप्रकार परब्रह्म शब्द भी मत्स्य कूर्म वराहादि की विशेषता को प्राप्त कर प्रतिभासित होनेवाली मनुष्यत्व मत्स्यत्व कूर्मत्व आदि की बुद्धि को निवारित करके ब्रह्मत्व को सिद्ध करता है। इसप्रकार श्रीरामतापनीय उपनिषद् के साथ एक वाक्यता के द्वारा सभी उपनिषदों के प्रतिपादन विषय बने हुए श्रीनारायण श्रीवासुदेव श्रीनृसिंह श्रीकृष्ण श्रीशिव रुद्र आदि सभी अवतारों के कारण स्वरूप अनन्त स्वरूपधारी श्रीरामचन्द्रजी के ही अवतार है यह सिद्ध होता है। अतः अवतारित्व श्रीरामचन्द्रजी में ही है।

दृश्यते । 'अयमात्मा ब्रह्म' 'सदा रामोऽहम्' इति ब्रह्मपदस्थाने रामपदप्रयोगात् चरममन्त्रेणापि श्रीरामस्य सर्वान्तर्गतत्वं, सर्वावतारित्वं च प्रकाश्यते । श्रीरामनाम्नः श्रीविष्णुसहस्त्रनामतुल्यत्वमपि तेनैवोपपद्यते । तेनैव च सर्वकारणत्वमपि सूपपाद्यते→

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि ।
इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते ॥
चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः ।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणोरूपकल्पना ॥

इत्यत्र यः परब्रह्माभिधीयते तस्यैवाद्वितीयस्य ब्रह्मणः तस्यैवोपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणोरूपकल्पनेत्यन्वयः । श्रुतयस्तु श्रीरामे एव पर्यवस्यन्ति सर्वशाखा प्रत्ययन्यायेन मूलकारणत्वमवतारित्वञ्च प्रकाशयन्ति । तस्यैवावतारभूताः श्रीमत्स्यकूर्मवराहनृसिंहश्रीकृष्णवामननारायणादयः सन्ति 'सर्वेषामवताराणा-
यदि यह कहें कि श्रीरामजी का श्रीनारायण आदि अवतार हैं ऐसा नहीं सुने जाने के कारण तथा श्वेताश्वतर एवं रुद्र आदि उपनिषद् के द्वारा शिव रुद्रादि प्रतिपाद्य विषय है यह समझा जाता है । तो उपनिषद् प्रतिपाद्य होने से इन्हें अवतारी मानें, ऐसा यदि कहते हैं तो ठीक है जब तक समाधान नहीं करता हूँ। फिर भी श्रीशिवशङ्कर परमेश्वर आदि शब्दों के द्वारा प्रतिपादन करने योग्य देवताओं का श्रीरामचन्द्रजी का आराधक होना 'श्रीरामस्य मनुं काश्यां जजाप वृषभध्वजः । मन्वतर सहस्रैस्तु जपहोमार्चनादिभिः' 'सर्वेषामवताराणामवतारीरघूत्तमः' इत्यादि श्रुतिस्मृतियों में सुना जाता है, इसलिये श्रीरामजी में ही अवतारित्व है । 'नारायण से रुद्र उत्पन्न होते हैं। नारायण से ग्यारह रुद्र उत्पन्न होते हैं' इत्यादि वार-वार कहे जाने से श्रीरुद्रादि का श्रीनारायण जन्यत्व सिद्ध होता है। श्रीशिव रुद्र आदि का श्रीराम महामन्त्र के उपदेश द्वारा काशी में सभी प्राणियों को मोक्ष प्रदायक होना उपनिषदों में वर्णित है । इससे सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी का सभी का स्वामित्व सिद्ध होता है। श्रीशिव रुद्र आदि का श्रीरामजी से उत्पन्न होने के कारण भी श्रीरामजी का ही स्वामीत्व सिद्ध होता है। 'रुद्र का कोई उत्पन्न करनेवाला नहीं है। रुद्र का कोई स्वामी भी नहीं है' इस श्रुति वचन का श्रीरामजी के स्वामित्व निरूपण करने से असङ्गति होती है । ऐसा प्रश्न करने पर इसका समाधान कहा जाता है। श्रीब्रह्मा श्रीरुद्र आदि जीव और ईश्वर भेद

मवतारीरघूत्तमः' इत्यागमोक्तेः । अतः तत्र तत्र तज्जातीयां बुद्धिं निरस्य ब्रह्मत्वमवगमयति श्रीरामस्य । यथा एकएव कारणरूपः सुवर्णः कटक कुण्डलादिविशेषणत्वमवाप्य तस्य रजतत्वादिबुद्धिनिरासपूर्वकं सुवर्ण परिणामत्वं बोधयति । एवं परब्रह्मशब्दोऽपि विशेषणत्वमवाप्य प्रातिभासिक मनुष्यत्वमत्स्यकूर्मत्वादिबुद्धिं निरस्य ब्रह्मत्वं साधयति । इत्यं श्रीरामतापनीयोप निषदैकवाक्यतया सर्वासामप्युपनिषदां प्रतिपाद्यभूताः श्रीनारायणवासुदेवनृसिंह कृष्णशिवरुद्रादयः सर्वकारणस्य बहुरूपिणः श्रीरामस्यैवावताराः प्रकृतोदाहृता-गमप्रामाण्यादतः अवतारित्वन्तु श्रीरामे एव ।

ननु श्रीरामनारायणादीनामवताराश्रवणेन, श्वेताश्वतररुद्राद्युपनिषदा च शिवरुद्रादिप्रतिपाद्यत्वञ्चोपपद्यते । इति चेत् सत्यम्, तथाऽपि शिवशङ्कर परमेश्वरादिशब्दप्रतिपाद्यस्य श्रीरामाराधकश्रवणात् । 'नारायणाद् रुद्रोजायते' 'नारायणादेकादशरुद्राः समुत्पद्यन्ते' इत्यादि पौनः पौन्येन कथनात् नारायण जन्यत्वम् । शिवरुद्रादेः श्रीराममन्त्रोपदेशेन काश्यां प्राणिमोक्षप्रदायकत्व मुपनिषदादिसूपलभ्यते, तेन श्रीरामस्याधिपत्वं सिद्ध्यति । शिवरुद्रादेः श्रीराम से दो प्रकार के हैं। उनमें जीव स्वरूप जो रुद्र हैं वे श्रीनारायण से उत्पन्न होनेवाले हैं। न कि परमेश्वर स्वरूप श्रीरुद्र नारायण जन्य हैं जिसका तात्विक निरूपण ३-२. मन्त्र के आनन्दभाष्य में हुआ जो वही देखना चाहिये । श्वेताश्वतर उपनिषद् में 'कारण स्वरूप ब्रह्म कौन है ? ये ब्रह्म कहां से उत्पन्न हुए' इत्यादि ब्रह्म शब्द का उपक्रम करके ब्रह्म का पर्याय होने के कारण ब्रह्म का वाचक है। 'श्रीश्चते लक्ष्मीश्च' श्री और लक्ष्मी ब्रह्म की पत्नियाँ हैं, इससे श्री के रमण का सामर्थ्य सभी का कारण स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी का अवतारित्व प्रतिपादक है यह समझा जाता है। उस परब्रह्म के समान अथवा उससे अधिक कोई नहीं सुना जाता है। श्रीरामजी की तुलना कहीं नहीं है, उसका नाम महान् यश स्वरूप है' इन श्रुति वचनों से तुलना रहित होना समान तथा अधिक शून्यता महान् यशस्वी होना सुना जाता है। जिस तरह श्रीराम नाम महान् यशस्वी है इस तरह दूसरा नाम नहीं सुना जाता है। इन श्रुति वचनों से श्रीरामजी का ही सभी का अवतारी होना तुल्य तथा अधिक से राहित्य होना तर्क युक्त सिद्ध होता है। क्योंकि यह 'यश इतना मात्र रघुनायक श्रीरामचन्द्रजी का नहीं है इससे अनन्त गुणा अधिक है जो देवताओं की प्रार्थनानुसार लीला विग्रह धारण करनेवाले अधिकता

जातत्वेन तदाराधकत्वेन च रुद्रस्य "न तस्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः" इतिश्रुतेरनुपपन्नत्वं भवति। अत्रोच्यते ब्रह्मरुद्रादयो जीवेश्वरभेदेन द्विविधाः, तत्र जीवभूतस्य रुद्रस्य नारायणजन्यत्वम् नतु परमेश्वरभूतस्येति। श्वेताश्वतरे "किं कारणं ब्रह्म कुतः स्मजाताः" इत्यादयो ब्रह्मशब्दोपक्रमेण ब्रह्मशब्दपर्यायत्वेन ब्रह्मवाचकत्वम्। 'श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्याविति श्रियोरमणसामर्थ्यं सर्वकारणस्य श्रीरामस्य प्रतिपाद कत्वं बुध्यते। "न तस्य प्रतिमास्ति" तस्य नाम महद् यशः" "न तत् समश्चाभ्यधि कश्च दृश्यते" इति अप्रतिमत्वेन समाभ्यधिकराहित्येन महद् यशस्वी च श्रूयते, यथा श्रीरामनाम्नो महद् यश तथा नामान्तरस्य न श्रूयते। तेन सर्वावतारित्वं समा भ्यधिकराहित्यञ्चोपपद्यते 'नेदं यशो रघुपतेः सुरयाञ्चयात्त लीलातनोरधिकसाम्य विमुक्तधाम्नः" इत्थं स्मर्यते शास्त्रेषु तत्र श्रीशु-कार्यमतदीपिकायां जगद्गुरु श्रीगङ्गाधराचार्याः "अधिकसमाभ्यां विमुक्तं धाम प्रभावो यस्य निरतिशया धिकप्रभाववत् इत्याशयः" इत्याहुः। "चिन्मयस्याद्वितीयस्येत्यद्वितीयत्वश्रुतेश्च मूलकारणत्वबोधकश्रुतीनामप्रमाणत्वा पत्त्या सर्वासामप्युपनिषदामप्रामाण्यं स्यात्। तस्मात् सर्वशब्दप्रतिपाद्यस्य श्रीरामस्यैव श्वेताश्वतराद्युपनिषदां प्रतिपाद्याः शिवशङ्कररुद्रमहेश्वरेशानशब्दाः सामान्य-शब्दवाच्यकारणवाक्यगतशिवादि वाच्यत्वं श्रीरामस्यैव। ते च श्रीरामस्य शेषांशाः "स्वभक्तानां संसाररुजं द्रावयति नरकादिपातेनाभक्तान् रोदयतीति वा

एवं समता से विमुक्त प्रभावशाली हैं' इस तरह श्रीव्यासादि महर्षियों से स्मरण किया जाता है। 'चैतन्यमय अद्वितीय का' इत्यादि के द्वारा अद्वितीयत्व श्रवण से भी मूलकारण के स्वरूप में बोध कराने वाले श्रुतियों की अप्रामाणिकता की आपत्तियां उपस्थित होने से सभी उपनिषदों की भी अप्रामाणिकता उपस्थित हो जायेगी। इसलिए सर्वशब्द के द्वारा प्रतिपादन करने योग्य श्रीरामचन्द्रजी की श्वेताश्वतर आदि उपनिषदों का प्रतिपादन विषय 'शिवशङ्कर रुद्र महेश्वर ईशान' आदि शब्द सामान्य शब्दार्थ कारण वाक्यगत शिव आदि का वाच्यत्व श्रीरामचन्द्रजी ही हैं। अर्थात् इन शब्दों के द्वारा कारण ब्रह्म श्रीरामजी ही प्रतिपादित किये जाते हैं। और वे सभी श्रीरामचन्द्रजी के शेषांश हैं। और जो दुर्गाकाली आदि शब्द हैं वे अपने अपने वाच्यार्थ के कारणता को बोध कराते हैं, यहां मूलकारण की द्विनिष्ठता का औचित्य नहीं होने के कारण इन्हें श्रीशिव आदि की पत्नी के रूपमें नहीं स्वीकार करने वालों को श्रीसीताजी एवं श्रीरामजी में पारमार्थिक रूपसे अभेद होने के कारण और सर्वकारण श्रुति

रुद्रः 'ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमानन्दात्मा ये चैकादशरुद्रा भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः'' (३।२.) ''तेन समस्तत्समोऽधिकश्च ततोऽधिकश्चापि श्रुत्यादिषु नं दृश्यते (६-८) इत्यादिरूपेणानन्दभाष्यकारचरणैर्व्याख्यातत्त्वान्नते रुद्रशिवादिशब्दाः श्रीशिवबोधकाः किन्तु सर्ववेदादिसामञ्जस्यात् सर्वेश्वरश्रीरामस्यैव प्रबोधका इति ध्येयम् । विशेषार्थिभिः प्रकृतोपनिषदानन्दभाष्यं कार्त्स्न्येनानुसन्धेयम् । ये च दुर्गाकालीप्रभृतयः शब्दाः स्व स्व वाच्यस्य हेतुतां गमयन्ति । मूलकारणस्य द्विनिष्ठता अनौचित्यात् शिवादिपत्नीत्वमस्वीकुर्वतः श्रीजानकीरामयोरभेदात् सर्वकारणत्वश्रुतेश्च सर्वशब्दवाच्यायां श्रीजानक्यां पर्यवसानं बोध्यम् । अन्यथा सर्वासां श्रुतीनां विसम्बादित्वेना प्रामाण्यं स्यात् । एवं सूर्यगणेशादिशब्दानामपि पर्यवसाने तथात्वद्योतनं स्वीकर्तव्यम्, वेदाविरुद्धः सिद्धान्त एकवाक्यतयैव सम्पद्यते ॥९॥

एकस्य वेदस्य वेदान्तरपरत्वं न युक्तम् । ''ब्रह्मणोरूपकल्पनेति वदन्येषूपमिषत्सु देवतान्तरवाक्यं न श्रूयते, तथाऽपि यदि कश्चित् स्वेष्टदेवताविषयकं वाक्यं कल्पयित्वोपनिषदि दर्शयेत्तदा तुल्यार्थकवाक्ययोः परस्पर विपरीतार्थकत्वेन समेषामप्रामाण्यं स्यात् प्रत्यक्षब्रह्मणोरूपकल्पनापेक्षया परो-

के आधार पर सर्वशब्द के वाच्यार्थ बनी हुई श्रीजानकीजी में पर्यवसान होता है यह समझना चाहिये । ऐसा नहीं मानने पर समस्त श्रुतिवचनों की विसम्बादिता हो जाने के कारण अप्रामाणिकता हो जायगी । इसी तरह सूर्य गणेश आदि शब्दों का भी सवसे अन्त में उसी पूर्व नियमानुसार श्रीरामचन्द्रजी का शेषांशत्व स्वीकार करना चाहिये वेद से अविरुद्ध सिद्धान्त एक वाक्यता के द्वारा ही समन्वित होते हैं ॥९॥

एक वेद का अन्य वेद परक है ऐसा प्रतिपादन करना युक्ति संगत नहीं है । 'ब्रह्मणो रूप कल्पना' यह जैसे कहा गया है उसीप्रकार अन्य उपनिषदों में देवतान्तर परक वाक्य नहीं सुना जाता है । तथापि यदि कोई अपने अभिमत देवता से सम्बन्धित वाक्य की कल्पना करके उपनिषद् में लिखकर दिखाए तो समान अर्थवाले वाक्यों में परस्पर विपरीत अर्थबोधकता होने से सभी श्रुतिस्मृति वचनों की अप्रामाणिकता सम्भावित होगी । प्रत्यक्ष ब्रह्म की उपकल्पना के अपेक्षा परोक्ष ब्रह्म की उपकल्पना की दुर्बलता होने के कारण कल्पित उपनिषद् वाक्य की कैमुतिक न्याय से अनादरणीयत्व ही है। वेद वाक्य का एक मुख्यार्थपरक होने पर कथा आदि के द्वारा

क्षस्य दुर्बलतया कल्पितस्य कैमुतिकन्यायेनानादरणीयत्वमेव । श्रुतिवाक्यस्यैकार्थपरत्वे सति तदुपबृंहणभूतेष्वितिहासपुराणवाक्येष्वपि तात्पर्यस्यैकविषयकत्वे निर्णीते श्रीरामतन्नाम्नो वाच्यवाचकव्याघातो न शङ्कनीयः, तस्य सर्ववाचककारणश्रीरामनामवाच्यत्वोपपत्तेः ।

विश्वरूपस्य ते राम विश्वे शब्दा हि वाचकाः ।
तथाऽपि मूलमन्त्रस्ते विश्वेषां वीजमक्षयम् ॥ इति ॥ स्मरणाच्च ।

ननु सर्वा अप्युपनिषदो नारायणादीनां जगद्धेतुत्वमुपदिशन्ति । पृथक् पृथक् च जगत्कारणत्वं कथयन्ति सर्वासां स्वार्थलाभाय पार्थक्येन जगत्कारणत्वं नित्यत्वञ्च कथं नोच्यते भवता । तत्र तत्रोपनिषत्सु जगद्धेतुत्वेन नामविशेष

वेद का विस्तार स्वरूप इतिहास पुराण आदि के वाक्यों में भी एक विषयकत्व में ही तात्पर्य है ऐसा निर्णय करलेने पर श्रीराम एवं श्रीरामजी के नाम में वाच्य-वाचकभाव का व्याघात होता है ऐसा सन्देह नहीं करना चाहिये । क्योंकि श्रीरामजी का सर्ववाचक कारण श्रीरामनाम से वाच्य-वाचकत्व युक्ति संगत होता है । जैसे कि- हे राम चराचर सर्वस्वरूप आपका संसार के सभी शब्द वाचक हैं । तथापि आपका मूलमन्त्र समस्त चराचर जगत् का अविनाशी बीज अर्थात् मूलकारण है इस रूपमें स्मरण किये जाने के कारण भी श्रीरामजी के सर्वावतारी वाचकत्व में सन्देह नहीं है।

यदि कहें कि सभी उपनिषद् श्रीनारायण आदि संसार की कारणता का प्रतिपादन करते हैं तो और आपत्ति होगी कि अलग-अलग संसार की कारणता को कहेंगे । समस्त उपनिषद् वाक्यों के स्वार्थ समन्वय लाभ के लिये पृथकता से संसार की अलग-अलग कारणता एवं नित्यता आपके द्वारा क्यों न कही जाय । क्योंकि उन-उन उपनिषदों में जगत्कारणता के द्वारा नाम विशेष का उच्चारण करके उसके अर्थ का पर्याय वाचकत्व का ज्ञान कराने के लिये एकवचन का निर्देश किया गया है । इससे एक की ही जगत्कारणता है यह विषय सूचित होता है। श्रुति वचनों के परस्पर विरोधिता होने पर अप्रामाणिकता का दोष उत्पन्न होगा । जैसे कि नारायण से संसार उत्पन्न होता है एवं नारायण में ही विलीन होता है । आनुष्टुभ नृसिंह से संसार उत्पन्न होता है । आनुष्टुभ नृसिंह में ही विलीन होता है इत्यादि श्रुतियों में कहा गया है । इसप्रकार किस समय किससे उत्पन्न होता है किस समय और किसमें विलीन होता है इत्यादि प्रकारक कदा कुत्र आदि शब्दों में सन्देह निवारण करने की क्षमता का

मुच्चार्य तदर्थस्य पर्यायवाचकत्वबोधनायैकवचननिर्देशः, एकस्यैव च जगत् कारणत्वं सूच्यते । परस्परविसम्वादे अप्रामाण्यापत्तेः । यथा-'नारायणादुत्पद्यते नारायणेलीयते । नृसिंहादानुष्टुभाच्चोत्पद्यते नृसिंहे अनुष्टुभे वा लीयते । कृष्णादुत्पद्यते तत्रैवलीयते' इत्यादि । एवं कदाकस्माज्जायते, कदा कुत्र च लीयते एवमादिषु कदा कुत्रादिषु सन्देहनिवारकत्वाभावेन, कस्य कोजनकः कस्य को जन्यः कं स्वजनकं स्मृत्वा मुक्तोभवेदित्यादीनामनिर्णायकत्वे वेदानामुन्मत्त प्रलपितत्त्वं स्यात् । तथा सति मुक्तये वेदभिन्नस्योपास्यज्ञानाभावात् । इत्थं स्वपरमनिश्रेयसोऽज्ञानान्निखिलस्यैव जगतो भ्रंसः स्यात् । हेतुनानेन तत्तन्नाम्नो जगत् कारणत्वश्रुतौ उपासनीयत्वं कथयतः समानधर्मत्वेनाभेदत्वं विधाय श्री विष्णुनारायणादीनामुपासनया संसारनिर्वृत्तिर्भवतीति मन्तव्यम् । श्रीविष्णुकृष्ण

अभाव होने से किसका कौन उत्पन्न करनेवाला है कौन जनक है कौन जन्य है किस अपने जनक को स्मरण करके जीवात्मा मुक्त हो सकेगा एवमादि विषयों का निर्णायक नहीं होने के कारण वेदों का उन्मत्त प्रलापिता होना सिद्ध होने लगेगा । अर्थात् वेद उन्मत्त वाक्य है यह प्रमाणित हो जायेगा । वेदों के उन्मत्त प्रलापिता सिद्ध होने पर जीवन मरण बन्धन अभाव स्वरूप मोक्ष प्राप्ति के लिये वेद से भिन्न अन्य कोई उपाय का ज्ञान नहीं होने के कारण इस तरह अपने परम निःश्रेयस का अज्ञान होने से समस्त संसार का ही पतन हो जायेगा । इस कारण से उन-उन नामों का जगत्कारणत्व श्रुति में उपासना योग्यता कहते हुए समान धर्मवाले श्रुति वचनों का परस्पर अभेद निरूपण करके विष्णु नारायण आदि की उपासना करने से संसार बन्धन की निवृत्ति होती है यह स्वीकार करना चाहिये । विष्णु कृष्ण नृसिंह आदि नामों की पर्याय वाचकता है ऐसा स्वीकार कर तात्विक रूपसे इनकी एकता है इस विषय को बोध कराने के लिये 'सृष्टि से पूर्व एक ही नारायण थे । हे सौम्य सृष्टि से पूर्वकाल में वह नित्य ही था, सृष्टि से पूर्व ब्रह्म ही एक मात्र था उसका नाम महान् यशोमय है, एक ही एवं अद्वितीय ब्रह्म है, इत्यादि श्रुति वचनों में एकवचन का उच्चारण करने के कारण उन-उन अवतारों का वाचक के रूपमें वाच्य वाचकता होता है । सर्वनाम का वाच्य नहीं है यह निर्देश करके उन-उन देवताओं का विशेष रूप ज्ञान कराने के लिये श्रीराम पद के द्वारा कहा गया श्रीराम नाम से प्रसिद्ध ब्रह्म का सभी अवतारों का अवतारित्व है, और सर्वशब्द वाच्यत्व है यह सम्यक् प्रकार से सिद्ध किया गया है ।

नृसिंहादिनाम्नां पर्यायत्वं स्वीकृत्य तात्विकरूपेणैकत्वं ज्ञापयितुं 'एको ह वै नारायणः' सदेव सोम्येदमग्र आसीत् ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् तस्य नाम महद्यशः, एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म, इत्यादिषु एकवचननिर्देशात् तत्तद्रूपित्वेन वाच्यत्वं भवति। सर्वनामावाच्यत्वं निर्दिश्य तस्य तस्य विशेषरूपबोधाय श्रीरामपदोक्तस्य रामाख्यस्य ब्रह्मणः सर्वावतारित्वं सर्वशब्दवाच्यत्वञ्च संसाधितम्।

''उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणोरूपकल्पना, सर्ववाच्यस्य वाचक इत्याद्याः श्रुतयोऽशङ्क्यते। ब्रह्मसामान्यशब्देन ज्ञातस्य परब्रह्मशब्दस्य च एकस्मिन्नर्थ रूढित्वं न युज्यते, येन सकलोपनिषदुक्तसकलकारणत्वं युज्येत। सामान्येन तत्तद् विशेषसामानाधिकरण्येनापि न वक्तुं शक्यते। यथा सामान्यः पशुशब्दः छागाश्वगर्दभाद्यर्थबोधकः सन्नपि नैकत्रार्थे रूढः। तत् कथं श्रीरामपरत्वं प्रतिपाद्य तस्य सर्वावतारित्वं सर्वोपनिषद् प्रतिपाद्यत्वञ्चोच्यते। अत्रोच्यते यथा पशुशब्दो सामान्येन गवाश्वागर्दभादिवाचकः सन्नपि 'पशुना यजेत' इति श्रुतौ छागो वा मन्त्रवर्णात्' इति सन्निहितछागविशेषवाच्ये पर्यवस्य तस्यैव यागाङ्गत्वं बोधयति।

'उपासकों के प्रयोजन सिद्धि हेतु ब्रह्म की उपकल्पना की गयी है। सर्व शब्द वाच्य का वाचक' इत्यादि श्रुतियां शङ्का का विषय बनायी जाती हैं। ब्रह्म इस सामान्य शब्द के द्वारा ज्ञान किया गया पदार्थ का एवं परब्रह्म शब्द का एक ही अर्थ में रूपित्व (अनादि कालीन व्यवहार) कहना तर्कसंगत नहीं होता है। जिसके द्वारा सभी उपनिषदों में कहे गये सभी भगवत् तत्वों का कारणत्व युक्ति संगत हो सके। सामान्य के द्वारा तथा तत्तद् विशेष सामानाधिकरण्य के द्वारा भी सर्वकारणत्व प्रतिपादन नहीं किया जा सकता है। जिसप्रकार सामान्य चतुस्पाद जन्तु विशेष वाचक पशु शब्द छाग, घोड़ा, गधा आदि अर्थों का बोधक होते हुए भी एक अर्थ विशेष में अनादि काल से रूढ नहीं है तो किस प्रकार सभी ब्रह्म शब्द का सामान्य रूपसे श्रीराम परत्व प्रतिपादन करके उसका सर्वावतारित्व एवं सभी उपनिषदों के प्रतिपाद्यत्व कहा जाता है? इस विषय का उत्तर देते हैं कि जिस प्रकार पशु शब्द सामान्य रूपसे गो अश्व गर्दभ आदि का वाचक होने पर भी 'पशुना यजेत' इस श्रुति में 'छागो वा मन्त्रवर्णात्' इस सन्निकष्टस्थ वाक्य से छाग विशेष रूप अर्थ में निर्णीत होकर उस छाग अर्थ का ही याग की अंगता को बोध कराता है। उसी तरह ब्रह्म शब्द भी उन-उन श्रीनारायण श्रीनृसिंह आदि का विशेषण रूप तत्तत् अर्थ विशेष वाचकता साधारण में सामान्य शब्द

तथैव ब्रह्मशब्दोऽपि तत्तद् विशेषणत्वेन तत्तद्वाचकत्वसाधारण्ये सामान्यशब्दे ज्ञाते, "ब्रह्मणोरूपकल्पना" इतिप्रकरणसन्निहितस्य 'इति रामपदेनासौ परब्रह्मा भिधीयते' इतिश्रुत्या चरममन्त्रेण श्रीरामशब्दार्थे पर्यवस्य तस्यैव सर्वावतारित्वं बोधयति । बहूनां द्वयोर्वादिकारणत्वासङ्गतेः । एकत्र श्रीरामे पर्यवस्यान्यत्रादि कारणत्वानुपपत्तेः । श्रीनृसिंहादिशब्दसामानाधिकरण्यं त्वादिकारणत्वं न बोधयति, किन्तु हिरण्यकशिपोर्वधाय सकलजगदुत्पत्तिस्थितिलयहेतुना श्रीरामेण परमकारुणिकेनानुग्रहं कुर्वता विलक्षणं श्रीनृसिंहरूपमाविष्कृतम् 'रामो वैशाख शुक्लस्य चतुर्दश्यां तिथौ खलु । श्रीमन्नृसिंहरूपः सन् हिरण्यकशिपुं व्यहन्' इतिश्रीबोधायनमतादर्शकारोक्तेः । हिरण्यकशिपोर्मनसि निरतिशयपुण्याभावात् विष्णुपुराणोक्तदिशा विष्णुस्वरूपं नाभिज्ञातमतस्तत्र ब्रह्मावतारत्वप्रकाशितम् ।

का ज्ञान हो जाने पर 'ब्रह्मणोरूपकल्पना' इस प्रकरण से सन्निकटस्थ वाक्य इस श्रीराम पद के द्वारा यह परब्रह्म कहा जाता है। इस श्रुति वचन से तथा चरम मन्त्र के द्वारा श्रीराम शब्दार्थ में निर्णीत होकर उसी का ही सर्वावतारित्व रूप अर्थ को ज्ञात कराता है। बहुतों का अथवा दो का सर्वकारणत्व होना असंगत होने से एक श्रीराम रूप अर्थ में निर्णीत होकर अन्य अर्थों में आदि कारणत्व होना तर्कसंगत नहीं है।

श्रीनृसिंह आदि शब्द की समानाधिकरणता तो आदि कारणता रूप अर्थ को नहीं बोध कराता है, किन्तु हिरण्यकशिपु नामक दैत्य का वध करने के लिए समस्त चराचर जगत् की उत्पत्ति पालन एवं संहार के कारण परमकरुणामय श्रीराम ने अनुग्रह कर 'वैशाख शुक्ल चतुर्दशी को श्रीनृसिंह रूपधारण कर श्रीरामजी ने हिरण्य कशिपु का वध किया' ऐसा शास्त्र प्रमाण है अतः अवतारी पुरुष सर्वेश्वर श्रीरामजी ही हैं अन्य नहीं लेकिन हिरण्य कशिपु के मन में निरतिशय पुण्य का अभाव होने से विष्णु पुराण के कथनानुसार विष्णु स्वरूप से पूर्ण परिचित नहीं हुआ। किन्तु श्रीनृसिंह में ब्रह्मावतारत्व प्रकाशित किया गया है। इसी विषय वस्तु को पहले सुवर्ण आभूषणादि उदाहरण के द्वारा प्रकाशित किया गया है।

जो प्रतिवादीगण इस सिद्धान्त को विशेष रूपमें विना जाने ही 'जिससे संसार के चराचर प्राणी उत्पन्न होते हैं। और उत्पन्न होकर जिससे जीवित रहते हैं, एवं जिसमें विलीन होते हैं वह ब्रह्म हैं। जिससे प्राणियों का जन्म आदी होता है वह ब्रह्म है' इत्यादि वेदवचनों के तात्पर्य होने के कारण संसार के उत्पत्ति स्थिति विलय आदि

तदेवपूर्वं सुवर्णादिदृष्टान्तेन प्रकाशितम् । ये तु सिद्धान्तमिममविज्ञाय 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद् ब्रह्म' 'जन्माद्यस्य यतः' 'सत्यं ज्ञानमन्तं ब्रह्म' इत्यादिश्रुतिमुदाहृत्य जगज्जन्मादि हेतुत्वादिभिः तस्य तस्य ब्रह्मत्वसाधनपुरस्सरमादिकारणत्वं व्यवस्थापयन्ति, तन्न पूर्वोक्तहेतूना जगज्जन्मादिहेतुना चान्यतरस्य तथात्वेनोपपादने तेनैव हेतुना दृष्टान्तेन च अन्यस्यापि तथात्वसिद्धौ ब्रह्मणो बाहुल्येन कारणवाचकत्वासिद्धेः । एतन्नानावताराणां निधानमित्यादिभिः श्रीनारायणावतारित्वविषयकस्य रौद्यादि द्वादशावतारविषयकत्वेन दूषितत्वात् । एष नारायणसाक्षादित्यादिभिः समाहितत्वाच्च नारायणनाभिपङ्कजात् अब्जयोनेरुत्पत्तिश्रुतेः क्षीरसागरशायिनारायणस्य तु इतिहासपुराणादौ अनिरुद्धस्य शङ्करस्य वा अवतारत्वेन प्रतिपादनात् । तस्य वसुदेवसुतस्य श्रीकृष्णस्य कारणत्वानुपपत्तेः । उच्यते । नारायणश्रुतिः न स्वार्थपरा किन्तु श्रीकृष्णगतप्रातीतिकबुद्धिनिरासाय । 'एकोऽपि सन् बहुधा यो

की कारणता आदि से उन-उन अवतारों का ब्रह्मत्व साधन पूर्वक आदि कारणता की व्यवस्था करते हैं । उनकी यह आदि कारणत्व व्यवस्था युक्ति संगत नहीं है पूर्व प्रतिपादित कारणों से और संसार के उत्पत्ति स्थिति आदि की कारणता से दो में से किसी एक की आदि कारणता प्रतिपादित करने पर उसी हेतु के द्वारा और उसी दृष्टान्त से दूसरे की भी बहुमतत्व एवं आदि कारणता सिद्ध हो जाने पर ब्रह्म की बहुलता हो जाने से कारण वाचकता की सिद्धि नहीं हो सकेगी । 'यह अनेक प्रकार के अवतारों का निधान है' इत्यादि नारायण के अवतारित्व विषयक रुद्र आदि के द्वारा उपासनीय बराह अवतारों के विषय से सम्बन्धित होने के कारण पहले ही इस सिद्धान्त का खण्डन किया जा चुका है, तथा 'क्षीरसागर में सोने वाले ये साक्षात् नारायण हैं' इत्यादि वचनों से समाधान किया जा चुका है । भगवान् नारायण के नाभि कमल से कमल योनि ब्रह्मा की उत्पत्ति सुने जाने के कारण क्षीर सागर में शयन करने वाले श्रीनारायणजी का तो इतिहास पुराण आदि में अनिरुद्ध का अथवा शंकर का अवतार रूपमें निरूपण किया जा चुका है श्रीनारायण का वसुदेव तनय श्रीकृष्णजी का कारणत्व युक्ति संगत नहीं होता है यह कहा जाता है क्योंकि नारायण श्रुति स्वार्थ परक नहीं है अपितु वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण में जो प्रतीति जनित मानवता बुद्धि है, उसका निराकरण के लिए 'एक होते हुए भी जो अनन्त प्रकार से प्रतीत होता है । पहले

विभाति' 'एको ह वै नारायण आसीत्' इत्याद्युक्तेः श्रीकृष्णानुवादेन च तस्यैवावतारित्वम् । श्रीरामचन्द्रवत् इतिवदतां समाधानाय उच्यते । वेदविरुद्धस्य इतिहासपुराणादिवचनस्य स्वार्थान्तरपरत्वेन, प्रमाणान्तरनिरपेक्षत्वेन अपौरुषेयस्य वेदस्य वाक्यान्तरविरोधे अर्थान्तरपरत्वस्वीकारात् । वेदवाक्यानामपि तथात्वे सामान्यविशेषभावादिभिः अन्वयात् । श्रीकृष्णस्य च वेदे अवतारित्वा श्रवणात् श्रीकृष्णकारणत्वेन श्रीनारायणस्यैवावतारित्वं बोध्यम्, द्विनिष्ठत्वानुपपत्या श्रीकृष्णनाम्नः अपि श्रीरामपरत्वमुपपाद्यते । किन्तु नहि श्रीकृष्णविषयकत्वेन वेदे कुत्रापि कारणत्वं निश्चीयते । सर्वशाखाप्रत्ययन्यायस्यापि श्रीनारायण नामानुसारित्वमेव । अतः उक्तैर्हेतुभिः 'एकोऽपि सन् बहुधा यो विभाति' इत्यादिश्रुतयः 'महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः । पुरुषान्नपरः कश्चित्'

एक मात्र नारायण ही था' इत्यादि श्रुतियों के द्वारा और श्रीकृष्ण के अनुवाद के द्वारा उसी को क्यों नहीं अवतारित्व मान लिया जाय जिस प्रकार की श्रीरामचन्द्रजी को अवतारी मानते हैं । इस पक्ष का निरूपण करने वाले विद्वानों के समाधान के लिए कहा जाता है । जो वेद के विरुद्ध इतिहास पुराण आदि के वचनों का स्वार्थ से भिन्न अर्थ परकता के रूपमें वचन है तथा जिसे अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं है ऐसे अपौरुषेय वेद के अन्य वाक्यों के साथ परस्पर विरोध होने पर अर्थान्तर भी इसी प्रकार होने की स्थिति में सामान्य विशेष भाव से अन्वय किये जाने से, और वेद में श्रीकृष्ण का अवतारी के स्वरूप में नहीं सुने जाने से, श्रीकृष्ण का कारण होने से श्रीनारायण का ही अवतारित्व है यह समझना चाहिये । दो में होने वाली सर्वकारणता युक्ति संगत नहीं होने से श्रीकृष्ण नाम का भी श्रीराम परत्व युक्ति संगत है वेद में कहीं पर भी श्रीकृष्ण को विषय बनाकर श्रीकृष्ण रूपमें कारणता का निश्चय नहीं किया जाता है । सर्वशाखा प्रत्यय न्याय का भी श्रीनारायण का अनुसरण करनेवाला है यह निर्णय है । अत एव पूर्व में कहे गये कारणों से 'एक होते हुए भी जो अगणित स्वरूप में प्रतीत होते हैं' इत्यादि श्रुतियां, महान् (बुद्धि तत्व से ऊपर अव्यक्त प्रकृति है, प्रकृति से उत्कृष्ट पुरुष परमात्मा) है । परमात्मा से उत्कृष्ट कोई भी तत्व नहीं है, सर्वोत्कृष्ट तत्व परमात्मा ही है' इत्यादि कथनों के द्वारा बुद्धि तत्व का प्रकृति में विलय होता है, प्रकृति का अविनाशी तत्व में विलय होता है । अक्षर तत्व का अन्धकार में विलय होता है । एवं अन्धकार परमेश्वर में एकरूपता को प्राप्त

इत्यादिभिरपि महानव्यक्तेलीयते अव्यक्तमक्षरे अक्षरं तमसि तमः परेदेवे एकी भवति' इत्यादिवचनमवलम्ब्य 'यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः । अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः'' इत्यादिस्मृतयोऽपि नावतारित्व प्रतिपादने क्षमाः श्रीनारायणावतारित्व, ब्रह्मावतारित्वश्रुतिविरोधेन अर्थान्तर परत्वात् । सर्वेषां ब्रह्मावतारत्वे कस्याप्युपास्यस्य विग्रहस्य ब्रह्मत्वानुपपत्तौ एकवचनश्रुतेरपि असंगतत्वं स्यात् । अतो नारायणस्य जलजन्तुविषयक बुद्धिनिरासाय ब्रह्मशब्दविशेषित्वम् । ब्रह्मशब्दस्य नारायणादुत्कृष्टत्वबोधात् । अवतारत्वावच्छिन्नानां ब्रह्मावतारविषयत्वेन बलीयस्त्वात् । द्वयोः श्रुत्योर्मुख्यार्थाङ्गीकारे विप्रलिप्सादोषापत्तेस्तस्यानुवादकत्वमिति बोध्यम् ॥१०॥

सर्वासु नारायणोपनिषत्सु क्षीरशायित्वलिङ्गश्रुतेः ब्रह्मयोनित्वं जगदोत प्रोतत्वं च वर्ण्यते तेन तद्भिन्नपरत्वं नोपपद्यते । तद्विधस्य नारायणशब्दस्य

होता है' इत्यादि वचनों को आश्रय बनाकर-जिस कारण में श्रीकृष्ण विनाशी तत्व रूप क्षर से ऊपर हूँ, एवं अविनाशी तत्व अक्षर से भी ऊपर हूँ, इसलिये मैं लोक व्यवहार एवं वेद व्यवहार में पुरुषोत्तम स्वरूप में प्रसिद्ध हूँ' इत्यादि स्मृति ग्रन्थ भी श्रीकृष्ण को अवतारित्व निरूपण करने में सक्षम नहीं है । श्रीकृष्ण का अवतारी श्रीनारायण को बताने वाली, एवं ब्रह्म को अवतारी निरूपण करनेवाली श्रुतियों के साथ विरोध होने के कारण अन्यार्थ बोधन परक है यह कहा जाता है । सभी विष्णु के अवतारों को ब्रह्म का अवतारत्व स्वीकार करलेने पर किसी भी उपासनीय देवता के शरीर का ब्रह्मत्व नहीं युक्ति संगत होने पर, वेदों में सर्वत्र एकवचन निर्देश श्रवण का भी असंगतत्व होने लगेगा । इसलिये नारायण शब्द का जलीय प्राणी विशेष विषयक बुद्धि का निवारण करने के लिये ब्रह्म शब्द द्वारा विशेषित किया गया है । ब्रह्म शब्द को नारायण के अपेक्षा उत्कृष्ट होने के कारण उसमें श्रेष्ठता के ज्ञान होने से । समस्त अवतारत्व से युक्त भगवत् तत्त्वों का ब्रह्म का अवतारत्व विषय होने के कारण ब्रह्म का श्रेष्ठत्व है । दोनों ही श्रुतियों का मुख्यार्थता स्वीकार करने पर प्रतारित करने की इच्छा रूप दोष का आरोप होता है, इसलिये उसका अनुवादकत्व है यह जानना चाहिये ॥१०॥

समस्त श्रीनारायण सम्बन्धित उपनिषदों में क्षीरसागर शायित्व रूप हेतु सुने जाने के कारण ब्रह्म कारण एवं चराचर जगत् में पूर्ण रूपसे ओत प्रोत हैं ऐसा वर्णन

ब्रह्मसमाभ्यधिकानुपपत्त्या ब्रह्मविरोधेन सर्वावतारित्वानुपपत्तेः । केचनशैवाः कथयन्ति यत् नारायणोपनिषत्सु ब्रह्मरुद्राद्यशेषजगदुत्पत्यादिकारणत्वं यस्य श्रूयते, यस्य च श्रीकृष्णो मुख्यावतारः मत्स्यवराहनृसिंहादयश्चावताराः कथ्यन्ते स हिरण्यगर्भविराडाद्यभिधेयः । तस्य पृथक्त्वेनाश्रवणात् यथा बृहदारण्यके हिरण्यगर्भाङ्गेभ्यो जगदुत्पत्तिर्वर्ण्यते । नारायणोपनिषदि ब्रह्मादीनामुत्पत्तिः । पुराणादिषु च पुरुषशब्दाभिधेयक्षीरसागरशायिनोनाभिपङ्कजाद् ब्रह्मोत्पत्तिस्ततश्च सर्वजगदुत्पत्तिः । यथा-

"जगृहे पौरुषं रूपं भगवान् महदादिभिः ।
सम्भूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ॥

यस्य नाभ्यम्बुजादासीद् ब्रह्मा लोकपितामहः ।
यस्यावयवसंस्थानैः कल्पितोलोकविस्तरः ॥

किया जाता है । इस प्रकार के कारणों के होने के कारण श्रीनारायणजी स्वभिन्न परक हैं ऐसा कहना युक्ति संगत नहीं होता है । इसतरह के गुणों से सम्पन्न नारायण शब्द का ब्रह्म के समान अथवा ब्रह्म से अधिक कहना तर्क सिद्ध नहीं होने के कारण, ब्रह्म के समानता आदि का विरोध होने से श्रीनारायण का सर्वावतारित्व निरूपण युक्ति सिद्ध नहीं होता है ।

कतिपय शैवगण ऐसा कहते हैं कि-नारायण सम्बन्धित उपनिषदों में ब्रह्म रुद्र आदि सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति पालन आदि की कारणता जिसकी सुनी जाती है । और जिस श्रीनारायण का श्रीकृष्ण प्रधान अवतार है । और मत्स्य वराह नृसिंह आदि जिस श्रीनारायण के अवतार कहे जाते हैं । वह श्रीनारायण हिरण्य गर्भ विराट् आदि शब्दों के द्वारा प्रतिपादन करने योग्य हैं । क्योंकि इसमें उस श्रीनारायणजी का भिन्न रूपसे शास्त्रों में नहीं सुना जाना हेतु है । जैसे बृहदारण्यक उपनिषद् में श्रीनारायण से ब्रह्मा आदि का उत्पत्ति वर्णन है । और पुराणेतिहास आदि में पुरुष शब्द के द्वारा प्रतिपादनीय क्षीरसागर में शयन करनेवाले श्रीनारायणजी के नाभि कमल से ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई, और ब्रह्माजी से समस्त संसार का प्रादुर्भाव हुआ ।

जैसे कि-भगवान् श्रीनारायण बुद्धि तत्त्व आदि के सहित पुरुष सम्बन्धित स्वरूप को धारण किये । इस चराचर स्वरूप दृश्यमान संसार की रचना करने की

यस्मादेव समुद्भूता देवतिर्यङ्नरादयः ।

एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम् ॥''

इतिनानावतारहेतुत्वञ्चोच्यते । अन्यत्राप्युपनिषदन्ते कृष्णस्यावतारित्वं, लोकानामोतप्रोतत्वं चोच्यते । 'यच्चकिञ्चिज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा । अन्तर्बहिश्च तत् सर्वं व्याप्यनारायणः स्थितः' इतिब्रह्माण्डान्तर्बहिव्यापित्वञ्च नारायणस्य, ब्रह्माण्डस्यान्तर्बहिर्योव्याप्नोति स विराडिति व्युत्पत्याचान्तर्बहिव्यापित्वादोतप्रोतत्वं कथ्यते । किञ्च बृहन्नारायणे-सहस्त्रशीर्षं देवं विश्वसम्भवं, विश्वं नारायणं देवमक्षरं परमं प्रभुम् । विश्वतः परमं नित्यं विश्वं नारायणं हरिम् । विश्वमेवेदं पुरुषस्तद्विश्वमुपजीवति' इत्यादिषु सहस्त्रशीर्षत्वविश्वसम्भवत्वादि हेतुभिः, नारायणपरब्रह्मेत्यादिब्रह्मविशेषणेन च, मत्स्यादिजलजन्त्वेतरनिवर्तनेन सह क्षीरसागरशायिनः परब्रह्मावतारत्वं ज्ञाप्यते । नारायणशब्दः परब्रह्मावतारत्व बोधनायैव ब्रह्मशब्देन विशेषितः । तस्यैव नृसिंहरूपित्वं, तदुक्तं नृसिंहोपनिषदि-'क्षीरोदार्णवशायिनं नृकेसरिणमिति ।

न च-आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।

ताः तस्य ह्ययनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ।

इच्छा से वह सोलह कलाये हुई हैं जिसमें ऐसे स्वरूप से सम्पन्न हो गये । जिस भगवान् श्रीनारायण के नाभि स्वरूप कमल से इस संसार के पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुये थे । जिस लोकपितामह ब्रह्मा के अवयव संस्थानों से इस चराचर दृश्य जगत् की संरचना की गयी । जिससे ही देवता पशु पक्षी एवं मनुष्य आदि समुत्पन्न हुए। यही विभिन्न प्रकार के अनन्त अवतारों का आगार एवं अविनाशी बृद्धि ह्रासादि शून्य बीज अर्थात् हेतु है' इसप्रकार विभिन्न प्रकार के अवतारों का पुरुष स्वरूप नारायण में हेतुत्व निरूपण किया गया है । अन्यत्र भी दूसरे उपनिषदों में श्रीकृष्ण को अवतारित्व बताया गया है । सभी लोकों में ओत प्रोत है इत्यादि से व्यापकता कही जाती है । इस भौतिक जगत् में जो कोई भी देखा जाता है, अथवा सुना जाता है, भीतर बाहर उन सभी तत्वों में व्याप्त होकर भगवान् श्रीनारायण विद्यमान हैं, इत्यादि कथन के द्वारा समस्त ब्रह्माण्ड के अन्दर श्रीनारायण का व्यापक रूपसे स्थित होना कहा जाता है। ब्रह्माण्ड के आन्तरिक एवं बाह्य भाग को जो व्याप्त करता है वह विराट् कहा जाता है । इस व्युत्पत्ति के अनुसार भीतर बाहर में व्यापक रूपसे रहने से ब्रह्माण्ड

नराज्जातानि तत्वानि नारायणविदुर्बुधाः ॥
तस्य तान्ययनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥

इत्यादिभिः नरावतारत्वश्रवणाद् ब्रह्मश्रुतेर्बलीयत्वं, श्रुतिलिङ्गवाक्य प्रकरणस्थानसमाख्यानां पारदौर्बल्यमर्थविप्रकर्षादिति लिङ्गात् श्रुतेर्बली यस्त्वम्। तत्राप्युपस्थितानां देवानां शङ्खचक्रादिधारित्वश्रवणात्, 'उपासकानां कार्यार्थमिति ब्रह्मरूपस्य देवतानामवतारत्वबोधात्। श्रीरामाख्यब्रह्मणोऽवतारेषु श्रीनृसिंहकृष्णादीनामन्तर्गतत्वाच्च केवलश्रुतेर्बलीयस्त्वं बुध्यते। पुनश्च श्रीनारा यणशब्दबोध्ये परमेश्वरे ब्रह्मसापेक्षत्वदर्शनेन ब्रह्मशब्दस्य च तथा अदर्शनेन तत्रोत्कृष्टत्वमवगम्यते। यद्यपि क्षीरसागरशायित्वेन मत्स्यादीनां बोधः, तथाप्य-वतारकारणत्वेनोक्तेर्भगवद् विग्रहेषु न वास्तविको भेदो विद्यते। श्रीनारायणस्य में ओत प्रोत होना कहा जाता है। और भी बृहन्नारायणोपनिषद् में अगणित शिर धारण करनेवाले समस्त चराचर जगत् का उत्पत्ति कारण सर्वस्वरूप भगवान् श्रीनारायण अविनाशी देव परमप्रभु सभी से पर उत्कृष्ट नित्य सर्व जगत् स्वरूप श्रीनारायण सभी पापों को हरण करने वाले हरि को संसार के समस्त प्राणी उनको आश्रय बनाते हैं, एवं सारे संसार के वे उपजीव्य हैं। इत्यादि श्रुतियों में सहस्र शिर धारी एवं समस्त संसार का उत्पत्ति कारण होना आदि वर्णित कारणों से तथा 'नारायण परं ब्रह्म' इस ब्रह्म विशेषण से मत्स्य आदि अन्य जल जन्तु आदि अर्थों का निवारण के साथ-साथ क्षीर सागर में शयन करनेवाले श्रीनारायण का ब्रह्मावतारत्व है यह अर्थ बोध कराया जाता है। नारायण शब्द परब्रह्म के अवतारत्व रूप अर्थ का बोध कराने के लिये ही 'ब्रह्म' इस शब्द से विशेषण युक्त किया गया है। और नारायण का ही नृसिंह आदि का रूपित्व है यही विषय नृसिंहोपनिषद् में कहा गया है 'क्षीरसागर के अन्दर शयन करनेवाले नृसिंह को' इत्यादि रूपसे कहा गया है।

यदि ऐसा कहें कि जल को नारा कहा गया है जल ही नरों को उत्पन्न करनेवाले हैं, जल ही नर का अयन है इस कारण से नारायण कहा गया है नर से उत्पन्न होने वाले सभी तत्वों को विद्वान् लोग नारायण कहते हैं। नर के जल से उत्पन्न होने वाले तत्व अयन है इसलिये इसे नारायण कहते हैं। इत्यादि वचनों के आधार पर नर का अवतारत्व श्रवण के कारण इसकी अपेक्षा ब्रह्म श्रुति को बलवान् होना ज्ञात होता है। श्रुति, लिङ्ग, वाक्य, प्रकरण, स्थान तथा समाख्या का उत्तरोत्तर दुर्बलत्व होता है, अर्थ

नानावतारकारणत्वमपि श्रुतावुक्तम् 'अवताराह्यसंख्येया हरेः' इतिहरिशब्द प्रयोगाच्च, 'नराज्जातानि तत्वानि नाराणीति बुधा' इतिस्मृत्या नरावतारत्वाव गमाच्च, 'एको ह वै नारायण आसीन्न ब्रह्मा नेशानो' इत्यादिभिः पूर्वमेकस्यैव नरस्य स्थित्यवगमाच्च नरे प्रतीतौ प्रकृतिजीवौ तयोरयनमधिष्ठानमिति नारायण निर्वचनेन नरनारायणयोरैक्यात् कारणकार्यत्ववचनं न युज्यते इति यदाहुस्तन्न नारायणनाम्नः नराधिष्ठानत्वरूपस्य च पश्चाद् भावित्वेनोत्तरावस्थाबोधात् नर-वाच्यकार्यत्वोपपत्तेः ।

की दूरी होने के कारण इस नियम के अनुसार लिङ्ग (हेतु) की अपेक्षा श्रुति की बलवत्ता है । उन नामों से उपस्थित देवताओं का शङ्ख चक्र गदा आदि धारण करनेवाला सुने जाने से भी ब्रह्मावतारत्व है । 'उपासकानां कार्यार्थम्' इत्यादि श्रुति के द्वारा भी ब्रह्म स्वरूप का देवताओं का अवतार ज्ञान कराया जाता है, श्रीराम नामक ब्रह्म के अवतारों में श्रीनृसिंह कृष्ण आदि का समावेश हो जाने से भी केवल श्रुति बलवत्ता समझी जाती है । और भी श्रीनारायण शब्द के द्वारा ज्ञातव्य परमेश्वर में ब्रह्म सापेक्षत्व देखे जाने के कारण और ब्रह्म शब्द का उसतरह नारायण सापेक्षत्व नहीं देखे जाने के कारण ब्रह्म में नारायण के अपेक्षा उत्कृष्टत्व का बोध होता है । श्रीनारायणापेक्षा ब्रह्म में उत्कृष्टत्व ज्ञान होने पर भी यद्यपि क्षीरशायित्व इस विशेषण से मत्स्य आदि का बोध होता है । फिर भी अवतार का कारण के स्वरूप में कहे जाने के कारण जल जन्त्वादि निराकरण पूर्वक भगवद् बुद्धि होती है । क्योंकि विभिन्न अवतारों के भगवद् विग्रहों में वास्तविक भेद नहीं है । क्योंकि श्रीनारायणजी का अनेकानेक अवतारों का कारण होना अनेक श्रुतियों में कहा गया है । सत्वों के निधान श्रीहरि के संख्यातीत अवतार कहे गये हैं । इस तरह हरि शब्द का प्रयोग करने से भी अवतारत्व है । 'नर से उत्पन्न हुए तत्वों को नार कहा जाता है' ऐसा ज्ञानी लोग कहे हैं । इस स्मृति वचन के द्वारा नारायण में नरावतारत्व का भी बोध होता है । 'सृष्टि पूर्वावस्था में निश्चित रूपसे एकमात्र नारायण ही थे, न ब्रह्माजी थे न शंकरजी थे' इत्यादि श्रुतियों के द्वारा सृष्टि से पूर्वावस्था में एकमात्र श्रीनारायण की ही स्थिति बोध होने से भी नारायण का अवतारत्व है । नर में ज्ञात किये गये प्रकृति और जीव तत्व, इन दोनों तत्वों का अधिष्ठान रूप आश्रय होने से नारायण शब्द का निर्वचन के द्वारा नर एवं नारायण इन दोनों में एकता का बोध होने के कारण कारणत्व वचन

केचन तु ईयतेऽनेनेत्ययनं, यन्त्यस्मिन्नित्ययनं, ईयते प्राप्यते यत् तदयनम् नराणां जीवानामयनं प्रापकः प्राप्यश्च आधारश्च यः स नारायण इति निर्वचनेन क्षीरार्णवशायिभिन्नविग्रहवन्तं प्रतिपादयन्ति, तादृशव्युत्पत्तेः श्रुतिषु स्मृतिषु चादर्शनेनाप्रामाणिकम् । 'एको ह वै नारायणः श्रुतिपूर्वकालीन आसीदित्येव प्रामाणिकम् । तस्यैव क्षीरसागरशायिन उपेयत्वं प्राप्यत्वं प्रापकत्वञ्च गोपालनारायणमहोपनिषदादिभिरवगम्यते । शिष्टैर्नारायणस्योपास्यत्वमङ्गीकृतम् । शिष्टाचारानुमितस्य स्मृतिपरिकल्पितश्रुतेश्च प्रमाणेन परत्वं गम्यते ।

एवं कार्यत्व वचन तर्कसंगत नहीं होता है । ऐसा जो कोई प्रतिपक्षी कहे हैं, उनका यह कथन संगत नहीं है, नारायण नाम का और नराधिष्ठानत्व स्वरूप पूर्व पश्चाद् भावित्व होने के कारण उत्तर कालीन परिस्थिति का ज्ञान होता है । तथा इससे नर शब्द वाच्य अर्थ का कार्यत्व बोध की सिद्धि होती है ।

कतिपय विद्वान् तो ऐसा कहते हैं कि जो प्राप्त किया जाता है उसे अयन कहते हैं, अथवा जिस में समावेशित होते हैं उसे अयन कहते हैं, या जो प्राप्त होता है उसे अयन कहते हैं नर शब्द प्रतिपाद्य जीवों का अयन अर्थात् प्राप्त कराने वाला और प्राप्त करने योग्य तथा जो आधार भूत पदार्थ है वह नारायण है इसप्रकार का शब्द निर्वचन के द्वारा क्षीर सागर में शयन करनेवाले से अतिरिक्त शरीर धारी अर्थ वाले को नारायण बतलाते हैं । लेकिन इस तरह की व्युत्पत्ति का वेदों में अथवा धर्मशास्त्रों में श्रवण अथवा दर्शन नहीं होने से प्रामाणिकता नहीं है 'सृष्टि के पूर्वावस्था में एकमात्र नारायण थे' यह श्रुति पूर्व काल में होनेवाला था इसी अर्थ विशेष को बोध कराती हुई प्रामाणिक है । उसी क्षीरसागर शायी विष्णु का उपेयत्व प्राप्यत्व और प्रापकत्व है, ऐसा गोपालतापनीय नारायण तथा महोपनिषद् आदि उपनिषद् के द्वारा तात्पर्य जाना जाता है । प्रामाणिक शिष्ट आचार्यों के द्वारा नारायण की उपासनीयता भी स्वीकार की गयी है । शिष्टाचार कें माध्यम से अनुमान किया गया, एवं स्मृतियों के स्वरूप में परिकल्पित श्रुति वचन के प्रमाण द्वारा श्रीनारायण का परत्व बोध होता है ।

श्वेताश्वतर उपनिषद् में-कारण ब्रह्म क्या है । एवं कहां से उत्पन्न हुए हैं इत्यादि श्रुतियों के द्वारा कारण वाचक से प्रारम्भ करके पश्चात् 'जिस समय में केवल अज्ञान जनित अन्धकार था उस समय दिन भी नहीं था, रात भी नहीं थी । न सत् पदार्थ था न असत् पदार्थ था केवल एकमात्र शिव ही था, शिव से अतिरिक्त कुछ भी नहीं

श्वेताश्वतरे-'किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता' इतिकारणवाचकेनारभ्य पश्चात्-'यदा तमस्तत्र दिवा न रात्रिर्नसन्नचासच्छिव एव केवलः' इतिशिवस्य कारणवाचकत्वश्रुत्या ब्रह्मशिवयोः पर्यायत्वं ज्ञायते। ''सर्वव्यापी च भगवान् तस्मात् सर्वगतः शिवः'' इतिसर्वगतत्वं च श्रूयते । तस्य सर्वशरीरित्वेन तत् समाभ्यधिकनिषेधश्रवणेन च तस्य ब्रह्मत्वमिति चेन्मैवम् । तस्य सृष्ट्यादि कारणवाचकत्वबोधेऽपि नावतारित्वम् । तत्र सर्वशब्दवाच्याश्रुतेश्च श्रीनारायणवासुदेवमत्स्यकूर्मकृष्णादिरूपित्वाश्रवणाच्च । चिदचिद्वाचकवाच्यत्वसिद्धावप्यवतारिवाचकत्वानुपपत्तेश्च ।

तत्र तत्रोपनिषत्सु 'नारायणः परंब्रह्म, नृसिंहोब्रह्मेत्येवं समानाधिकरण श्रवणेन, तेषां सर्वं व्यापित्वश्रुतेश्च शिवादिसर्वाङ्गीणत्वेन न युज्यते, जगज्जन्मादिहेतुत्वेऽपि अवतारकारणत्वाश्रुतेः । सर्वेषां भगवद् विग्रहाणां वस्तुत ऐक्यात् तत्तनिष्ठगुणादिष्वाधिक्यद्वारेणैवकारणत्वमवतारित्वं च निर्णीयते। सुवर्णन्यायेनैव तस्यावताराभवन्तीति श्रीविष्णुनारायणवासुदेवमत्स्यकूर्मकृष्ण शिवरुद्रादिरूपित्वं च यस्य श्रूयते । यन्मन्त्रस्य ब्रह्मात्मकत्वं सच्चिदानन्दाख्यत्वं

था' इत्यादि कथन के द्वारा शिव का कारण वाचकत्व श्रुति के द्वारा ब्रह्म एवं शिव पदार्थों में पर्याय वाचकत्व का ज्ञान होता है। और 'सभी में व्यापक रूपसे स्थित रहने वाले भगवान् शिव ही हैं, अतः शिव सर्वगत हैं' इस वचन के द्वारा शिव का सर्वगतत्व भी सुना जाता है। उस श्वेताश्वतर उपनिषद् प्रतिपाद्य शिव का सभी भगवद् विग्रहों का शरीरी के स्वरूप में और उनके समान अथवा उनसे अधिक होने के वचन का निषेध सुने जाने के कारण उस श्रीशिव में ब्रह्मत्व है यदि ऐसा कहें तो इसप्रकार नहीं कहा जा सकता है। उस श्रीशिव में सृष्टि आदि के कारण वाचकत्व का ज्ञान होने पर भी अवतारित्व का बोध नहीं होता है, इसलिये उसे ब्रह्म नहीं कह सकते हैं। और श्रीशिव में सर्वशब्द वाच्यत्व का भी श्रवण नहीं होता है। श्रीनारायण वासुदेव मत्स्य कूर्म और कृष्ण आदि का शिव में रूपित्व भी कहीं नहीं सुना जाता है। इसलिये शिव में चिदचिद् वाचक वाच्यत्व की सिद्धि हो जाने पर भी अवतार वाचकत्व युक्तिसंगत नहीं होता है।

जगह-जगह पर उन-उन उपनिषदों में-'नारायण परब्रह्म हैं, नृसिंह ब्रह्म हैं' इत्यादि में समानाधिकरण सुने जाने के कारण श्रीनारायण नृसिंह वामन वराह मत्स्य

प्रणवहेतुत्वं, रुद्रोपदेश्यत्वं सर्वपापप्रणाशकत्वं सर्वाभयप्रदातृत्वं स्वशरणागतस्वधामप्रापकत्वमकारादिमन्त्राश्रयत्वादिकत्वञ्च यस्मिन्नस्ति तस्यैव सर्वशरण्यस्य 'शरण्यं शरणञ्च त्वमाहुर्दिव्यामहर्षयः' इतिश्रीमद्रामायणोक्तेः 'सर्वेषामवताराणामवतारीरघूत्तमः' इत्याद्यागमप्रामाण्याच्चसर्वेश्वरश्रीरामस्यैवावतारित्वं प्रापकत्वं प्राप्यत्वञ्च युज्यते । सर्वं तच्छ्रीरामस्य तन्मन्त्रस्य च श्रीरामतापनीयोपनिषदि श्रूयते वेदार्थज्ञैरूपपद्यते च ॥११॥

कृष्ण आदि का सर्वव्यापित्व बोधक श्रुति से भी शिव रुद्र आदि का सर्वाङ्गीणत्व रूपमें उपपादन युक्ति संगत नहीं है। संसार के उत्पत्ति स्थिति आदि की कारणता होने पर भी अवतारों के कारणता का शिव आदि में कहीं नहीं सुने जाने के कारण शिव में ब्रह्मत्व नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि श्रीनारायण नृसिंह मत्स्य कूर्म वराह कृष्ण वामन आदि समस्त भगवत् विग्रहों में वास्तविक रूपमें एकरूपता स्वीकार की गयी है। इसलिये तत्तद् अवतारों में होने वाले देवताओं गुण आदि में अधिकता के द्वारा ही अवतारों की कारणता का ज्ञान किया जाता है। गुणों की अधिकता से ही अवतारित्व का निर्णय करते हैं। जैसे एक ही सुवर्ण से कटक कुण्डलादि अनन्त आभूषणों की रचना की जाती है, लेकिन सुवर्णत्व सभी में रहता है, इसी न्याय से ही उस अवतारी के अवतार हुआ करते हैं। इसलिये विष्णु नारायण वासुदेव मत्स्य कृष्णादि एवं शिव रुद्रादि का रूपित्व जिसके विषय में सुना जाता है, जिसके मन्त्र की परब्रह्म स्वरूपता है, एवं सत् चित् और आनन्द नामता है 'रामानाम्नः समुत्पन्नः प्रणवोमोक्षदायकः' इस आगम वचनानुसार जो ॐकार का कारण स्वरूप है, और जिसके मन्त्र का रुद्र उपदेश देते हैं तथा जिसमें अनन्त जन्म जन्मार्जित पाप समूह का पूर्ण विनाशक सामर्थ्य है और जिनमें सभी को अभय प्रदान करने की योग्यता है और जिन में अपने शरण में आये हुए भक्तों को अपने परम धाम श्रीसाकेत में प्रापक शक्ति है एवं अकारादि सभी मन्त्रों का आश्रयत्व भी जिनमें है तथैव महर्षियों ने जिन श्रीरामजी में ही शरणागत वत्सलता का निरूपण किया है और सभी अवतारों के अवतारी सर्वेश श्रीरघुनाथजी हैं ऐसा आगम में वर्णन है, उन्हीं का अवतारित्व प्रापकत्व एवं प्राप्यत्व भी है। ऐसा श्रीरामतापनीय उपनिषद् में सुना एवं देखा जाता है, तथा वेदार्थ तत्त्व ज्ञानियों के द्वारा ऐसा ही स्वीकार भी किया जाता है ॥११॥

नारायणं जगन्नाथमभिरामं जगत्पतिम् ।
कविं पुराणं वागीशं रामं दशरथात्मजम् ॥ इत्यारभ्य
सर्वेषां त्वं परंब्रह्म त्वन्मयं सर्वमेव हि ।
त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वमेव पुरुषोत्तमः ।
त्वमेव तारकं ब्रह्म त्वत्तोऽन्यन्नैव किंचन ।
रामः सत्यं परंब्रह्म रामात् किञ्चिन्न विद्यते ।

'नारायण जगन्नाथ अभिराम जगत् पति कवि पुराण, वागीश राम आदि दशरथ तनय को' यहां से इन वचनों के द्वारा प्रारम्भ करके सभी का आप परात्पर ब्रह्म हो आप से ही बना हुआ दृश्यादृश्य समस्त लोक हैं। आप अविनाशी उत्पत्ति ह्रास आदि से रहित दिव्य सर्वोत्कृष्ट प्रकाश हो, आप ही पुरुषोत्तम हो, आप ही तारक ब्रह्म हो, भूत भविष्य वर्तमान में आप से अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ही सत्य परब्रह्म हैं, श्रीरामजी से अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, सवकुछ श्रीरामजी ही हैं। हृदय का विमान रूप में शास्त्रों में प्रतिपादित श्रीराम नाम से कहा जाने वाले ब्रह्म' इत्यादि निरूपण पर्यन्त कथन के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी का नारायण आदि भगवद् तत्वों का रूपी के स्वरूप में उन-उन नामों के वाच्यत्व कहा है। और श्रीराम नाम का ब्रह्म वाचकत्व कहा है और श्रीराम नाम का ही ब्रह्म वाचकत्व अभिव्यक्त होता है। इसी तरह और सत्य एवं ज्ञान स्वरूप तथा अनन्त ब्रह्म है। सत्य आनन्द एवं चैतन्य स्वरूप जिस अनन्त स्वरूप में योगिजन समाध्यादि के द्वारा रमण करते हैं, इसलिये रमण करने के कारण 'राम' पद के द्वारा परब्रह्म प्रतिपादित होता है। इस समान अर्थ का वाचकत्व के द्वारा भी श्रीराम शब्द का ब्रह्म का विशेष रूपसे बोधकत्व प्रतीत होता है। श्रीरामजी का विशेष शब्दत्व तो 'ब्रह्म में होनेवाला धनुष वाण आदि के सहित दो भुजाओं वाली दिव्य श्रीमूर्ति' आदि स्वरूप का बोधन के द्वारा अभिव्यक्त होता है। और भी समस्त शास्त्र समुदाय में वर्णित जितने भी मन्त्रों के समूह हैं उन समस्त मन्त्र वर्णों में श्रेष्ठ वैष्णव मन्त्र कहे जाते हैं। गणपति देवता सम्बन्धित मन्त्रों में शिव देवता सम्बन्धित मन्त्रों में शक्ति देवता सम्बन्धित मन्त्रों एवं सूर्य देवता सम्बन्धित मन्त्रों में से वैष्णव मन्त्र अभिमत फलों को प्रदान करनेवाले कहे गये हैं। और विष्णु देवता सम्बन्धित भी जितने मन्त्र हैं उन सभी में भी श्रीराम मन्त्र सवसे अधिक फलदाता होने से सर्वश्रेष्ठ है। गणपति आदि देवताओं से सम्बन्धित मन्त्रों

स्मृतहृदयविमानं ब्रह्म रामाभिधानमित्यन्तेन श्रीरामस्य नारायणादि रूपित्वेन तत्तन्नामवाच्यत्वं श्रीरामनाम्नो ब्रह्मवाचकत्वञ्च व्यक्तं भवति ।

तथा च 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' ।

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि ।

इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते ॥

इतिसमानार्थवाचकत्वेनापि श्रीरामशब्दस्य ब्रह्मणो विशेषरूपेण बोधकत्वं ज्ञायते । विशेषशब्दत्वं तु तस्य ब्रह्मनिष्ठधनुर्वाणादिसहितद्विभु-जत्वाद्याकृतिबोधनेनावगम्यते । अपि च-

सर्वेषु मन्त्रवर्गेषु श्रेष्ठं वैष्णवमुच्यते ।

गाणपत्येषु शैवेषु शाक्तशौरेष्वभीष्टदम् ॥

के अपेक्षा अधिक फलदायी होने के कारण श्रीराम मन्त्र करोडों गुणा अधिक श्रेष्ठ है। हे राजश्रेष्ठ श्रीराम मन्त्र तो गुरु आदि के द्वारा दीक्षा के विना ही और पुरश्चरण के विना तथा न्यास विधि विधान आदि के विना भी केवल जपमात्र के द्वारा ही सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं। और उन श्रीराम मन्त्रों में भी ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराममन्त्र विना किसी परिश्रम के ही फल प्रदान करनेवाला है। यह तो ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराममन्त्र तो जन्म जन्मान्तरों से अर्जित समस्त पाप पुञ्जों का विशेष रूपसे नाश करने वाला है। और दिनानुदिन होने वाले जो भी अशुभ फलद दूषित कर्म हैं अथवा पक्ष मास ऋतु एवं वर्ष में होने वाले दुष्कर्मों को जिसमें कुछ भी शेष नहीं रह जाय ऐसे सभी पापों को जिसप्रकार रुई के पहाड को हवा अनायास ही उड़ा देती है उसीप्रकार नष्टकर देता है। जान बूझ कर अथवा विना जाने हुए किये हजारों ब्रह्महत्याओं के पापों को और करोडों प्रकार के या करोडों हजार उपपातकों से होनेवाले पाप समुदाय को भी श्रीराममन्त्र का संकीर्तन करने मात्र से ही सभी प्रकार के पाप समुदाय प्रकर्ष क्षण मात्र में विनष्ट हो जाते हैं। भगवान् विष्णु के हजारों नामों के समान यह श्रीरामचन्द्रजी का एक नाम समान कहा गया है। यह महामन्त्र एक श्रीराम नाम विष्णु सहस्रनाम के तुल्य है। भगवान् के संख्यातीत मन्त्र हैं किन्तु वे सभी मिलकर इस महामन्त्र श्रीराम नाम के समान नहीं कहे गये हैं। इसलिये हे सुमुखि पार्वती यह महामन्त्र श्रीराम नाम एवं विष्णु सहस्रनाम ये दोनों समान नहीं है। लोक व्यवहार में प्रयोग आने वाले अथवा वेद व्यवहार में प्रयोग होनेवाले जो कोई भी शब्द कहे गये हैं। हे पार्वती

वैष्णवेष्वपि मन्त्रेषु राममन्त्राः फलाधिकाः ।
गाणपत्यादिमन्त्रेषु कोटिकोटिगुणाधिकाः ॥
विनैव दीक्षां राजेन्द्र पुरश्चर्यां विनैव हि ।
विनैव न्यासविधिना जपमात्रेण सिद्धिदाः ॥
मन्त्रस्तेष्वप्यनायासफलदोऽयं षडक्षरः ।
षडक्षरोऽयं मन्त्रस्तु सर्वाघौघ विनाशकः ॥
दैनन्दिनं च दुष्कृत्यं पक्षमासर्तुवर्षजम् ।
सर्वं हरति निःशेषं तूलाचलमिवानिलः ॥

श्रीरामचन्द्रजी का नाम एवं श्रीविष्णु का हजार नाम इन दोनों में परम श्रेष्ठ अधिक श्रीराम नाम है ।

इस तरह के हजारों नामों से एक श्रीराम नाम समान कहा गया है । हे पार्वती सभी वेदों के जप करने से और सभी मन्त्रों के जप करने से जो पुण्यराशि उपलब्ध होता है, उसके अपेक्षा करोडों गुणा अधिक पुण्य केवल श्रीराम नाम के उच्चारण मात्र से उपलब्ध होता है । जो भी प्रयोग विभिन्न तन्त्र ग्रन्थों में तत्तत् प्रकार के विभिन्न यत्न प्रयत्नों के द्वारा सिद्ध किये जाते हैं वे समस्त प्रयोग कलाप श्रीराम नाम के संकीर्तन मात्र से शीघ्रातिशीघ्र सफल हो जाते हैं । इत्यादि प्रकार के श्रीराम नाम महत्व प्रतिपादक वचनों के द्वारा वेदार्थ तत्व ज्ञानी ऋषि महर्षियों के वचनों में अन्य भगवान् के मन्त्रों के अपेक्षा प्रकृत श्रीराम मन्त्र का सहस्त्र गुणा अधिक प्रतिपादन किया गया है । वेदार्थ रहस्य ज्ञानियों द्वारा स्मृति स्वरूप में परिकल्पित वचनों के द्वारा श्रीराम मन्त्र का सहस्त्र गुणा अधिक फल श्रवण से तथा करोड़ गुणा अधिक फल श्रवण से श्रीरामचन्द्रजी में अंशित्व सिद्ध होता है । तथा श्रीरामचन्द्रजी का ही सर्वकारणत्व सर्वावतारित्व आदि प्रतिपादित होता है क्योंकि सभी अवतारों के अवतारी रघुकुल श्रेष्ठ श्रीरामजी ही हैं इसप्रकार आगम शास्त्र प्रतिपादन करता है । ब्रह्मत्व बोध परिचायक समस्त ब्रह्मपरक ब्रह्म हरि आदि सभी कारण वाचक शब्द कलाप श्रीराम अर्थ में पूर्ण समन्वित होकर श्रीरामजी की मूलकारणता अर्थ को प्रकाशित करते हैं । महान् विशाल सागर में शयन करते हुए जल के अन्दर से प्राचीन काल में आप मुझको भूयोभूयः उत्पन्न किये । इत्यादि श्रुति वचनों के द्वारा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का 'हरि' 'नर' आदि शब्दों का वाच्यत्व भली भांति प्रतीत होता है यह समझना चाहिये । और हरि

ब्रह्महत्यासहस्राणि ज्ञानाज्ञानकृतानि च ।
कोटिकोटिसहस्राण्युपपातकजान्यपि ।
सर्वाण्यपि प्रणश्यन्ति राममन्त्रानुकीर्तनात् ॥
विष्णोर्नाम्नां सहस्राणां तुल्य एष महामनुः ।
अनन्ता भगवन्मन्त्रा नानेन तु समाकृताः ।
सहस्रानामतत्तुल्यं रामनामवरानने ।
लौकिका वैदिका शब्दा ये केचित्सन्ति पार्वति ।
नामानि रामचन्द्रस्य सहस्रं तेषु चाधिकम् ।
तादृङ्नामसहस्रैस्तु रामनामसमं मतम् ॥
जपतः सर्ववेदांश्च सर्वमन्त्रांश्च पार्वति ।

नर आदि शब्दों का सामान्यार्थ वाचकता होने पर भी तत् समाभ्यधिक आदि वचनों के सन्निहित होने के कारण विशेष शब्द के द्वारा पशु छाग न्याय से अर्थात् जैसे पशु शब्द सामान्यार्थ वाचक होने पर छाग पद के सान्निध्य के कारण पशु शब्द छाग विशेषरूप अर्थ को कहता है। उसीतरह विशेषण बोधकत्व होता है यह विषय पहले ही प्रतिपादित किया जा चुका है। इस कारण से विष्णु हरि नर आदि शब्द उन श्रीरामचन्द्रजी के ही पर्याय वाचक शब्द हैं यह विषय समझना चाहिये। जिसप्रकार कील के द्वारा सभी पत्ते अच्छी तरह गूँथ दिये जाते हैं। इसी तरह ओंकार के द्वारा समस्त वाणी का ग्रन्थन हो जाता है। इस तरह जो व्यक्ति प्रणव (ॐकार) का अध्ययन करता है। यह बात उपनिषदों में यत्र तत्र व्यवहार किये जाने के कारण और उन-उन सभी मन्त्रों के आदि में ॐकार का व्यवहार होने के कारण वाचकत्व के द्वारा सामान्य शब्दत्व प्रमाणित हो जानें पर उस के द्वारा भी श्रीरामचन्द्रजी का मूल कारणत्व निर्णय किया जा सकता है। निश्चित रूपसे अकार ही समग्र वाणी है' यह प्रसिद्ध अकार वाक् स्पर्श-क से लेकर म पर्यन्त २५.वर्ण उष्मा शषसह आदि के साथ व्यापक रूपसे रहकर बहुत अ से लेकर ह तक के वर्णों के स्वरूप वाली होती है। और उस अकार को प्रणव के आद्यक्षर के रूपमें सुने जाने के कारण अकार का अथवा ॐकार का सर्व वागात्मक (समस्त वाङ्मय स्वरूपत्व) ज्ञान होने से भी श्रीरामचन्द्रजी का ही मूलकारणत्व है। वेदों के प्रारम्भ काल में जो स्वर ॐकार प्रकर्ष मात्रा में कहा गया है। और आत्म परमात्म तत्त्व विद्या स्वरूप बोधक वेदान्त शास्त्र में भी

तस्मात् कोटिगुणं पुण्यं रामनाम्नैव लभ्यते ॥
ये प्रयोगास्तु तन्त्रेषु तैस्तैर्यत्साद्यते फलम् ।
तत् सर्वं सिद्ध्यति क्षिप्रं रामनाम्नस्तु कीर्तनात् ॥

एवमादि वेदार्थज्ञप्रणीतवचनेषु स्मृतिपरिकल्पितश्रुतिप्रमाणेषु वचनेषु इतरभगवन्मन्त्रेभ्यः श्रीराममन्त्रस्य सहस्रगुणाधिकत्वफलश्रुतेः कोटिगुणाधिकफलोक्तेश्च तत्रांशांशित्वासिद्धेः श्रीरामस्यैव सर्वकारणत्वं सर्वावतारित्वं च प्रतिपादितम्भवति 'ततस्त्वमसि दुर्धर्षात्तस्माद्भावात्सनातनात् । रक्षां विधास्यन् भूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान्' इतिश्रीमद्रामायणोक्ते 'सर्वेषामवताराणामवतारीरघूत्तमः' इत्यागमोक्तेश्च सर्वेऽपि ब्रह्मपरा ब्रह्महरिप्रभृतयः कारणवाचकाः शब्दास्तत्रैव पर्यवसिताः सन्तो मूलकारणत्वं ज्ञापयन्ति । 'महार्णवे शयानोऽप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः' इत्यादिभिः श्रीरामस्य हरिनरशब्दवाच्यत्वागमात् । अतो न मूलकारणस्य द्वित्रिनिष्ठत्वं भवतीति बोध्यम् । हरिनरशब्दादीनां सामान्यवा-
जो ॐकार प्रतिष्ठित है। उस प्रकृति में विलीन सर्व व्यापक के जो पर है वही महेश्वर अर्थात् देवाधिदेव श्रीरामचन्द्रजी हैं।

इस वचन के अनुसार अकार का ही प्रणव ॐकार का मूलकारणत्व रूपमें ज्ञान होता है। यदि यह प्रश्न करें की मकार का भी प्रणव प्रकृति में लीनत्व प्रतिपादित होता है। तो उत्तर है कि-मकार का प्रणव प्रकृतित्व प्रतिपादन नहीं किया जा सकता है। क्योंकि उसकी अवधि अल्प है। मकार को अनेक वाचक कहा गया है। इसलिये मूलकारणत्व है ऐसा तो नहीं कह सकते। क्योंकि 'राम' शब्द के द्वारा समस्त वेद समस्त मन्त्र आदि के जप से होने वाला पुण्य के अपेक्षा करोड़ करोड़ गुणा अधिक पुण्य उत्पन्न करना स्वरूप अधिक फल श्रवण के कारण ओम् इसका रेफ पर आरूढ स्वरूप होने के कारण तथा रुद्र के द्वारा षडक्षर तारक मन्त्र स्वरूप तारक ब्रह्म के व्याख्यान किये जाने के कारण। ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराम मन्त्र का सभी मन्त्रों के प्रकाशक होने के कारण श्रीराम मन्त्र में प्रणव कारणता है यह बोध होता है। यही विषय पहले कहा गया है कि जो वेदों के आदि में ॐकार स्वरूप स्वर प्रकृष्ट रूपसे कहा गया है, और जो प्रणव वेदान्त में भी प्रतिष्ठित है उस प्रकृति में विलीन रहने वाले के से जो पर है वह महेश्वर है सभी वेदों के आदि का स्वर ॐकार है क्योंकि सर्वत्र ॐकार का उच्चारण के वाद ही वेद पढा जाता है। उस ॐकार की प्रकृति

चकत्वेऽपि तत् समाभ्यधिकसन्निहितविशेषशब्देन पशुछागन्यायेन विशेष बोधकत्वं भवतीति पूर्वमेव निरूपितम् । तेन श्रीविष्णुहरिनरायणादयः तस्यैव पर्यायाः सन्तीत्यवधेयम् । यथा शंकुना सर्वाण्येव पर्णानि ग्रथ्यन्ते एवमेवोंकारेण सर्वोऽपिवाक् ग्रथ्यते । एवम् यः प्रणवमधीते स सर्वमधीते । इति उपनिषत्सु प्रयोगेन तत्तन्मन्त्रादौ दर्शनेन वाचकत्वेन सामान्यशब्दत्वसिद्धौ च तेनापि मूलकारणत्वं निश्चेतुं शक्यते । 'अकारो वै सर्वा वाक्' सैषा स्पर्शोष्मादिरूपेण बहुरूपा भवति । तस्य प्रणवादौ श्रवणात् सर्ववागात्मकत्वाच्च ।

यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः ।
तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः ॥

इति अकारस्यैव प्रणवप्रकृतित्वबोधात् । ननु मकारस्यापि प्रणव प्रकृतिलीनत्वम् । तस्याल्पावधित्वात् अनेकवाचकत्वस्मरणाच्चेतिचेन्न । श्रीरामशब्देन सर्ववेदमन्त्रजपजनितपुण्यापेक्षया कोटिगुणिताधिकपुण्यजनन-फलश्रवणेन ओमित्यस्य रेफारूढस्वरूपत्वस्य रुद्रेण तारकब्रह्मव्याख्यानात् । तस्य सर्वमन्त्रप्रकाशकत्वात् प्रणवकारणत्वबोधाच्च 'रामनाम्नः समुत्पन्नः प्रण अर्थात् कारण षडक्षर तारक नाम से प्रसिद्ध श्रीराम मन्त्र है । उस श्रीराम मन्त्र में विलीन के से भी जो पर है वह महेश्वर है अर्थात् ईश्वरों का भी ईश्वर है इसप्रकार का अर्थ पूर्व वचन का सिद्ध होने से श्रीरामचन्द्रजी का मूलकारणत्व ज्ञात होता है। इस वाक्य के द्वारा 'राम' मन्त्र का ही ॐकार कारणत्व सिद्ध होने से श्रीराम मन्त्र का सभी मन्त्रों के कारण होने से श्रीराम मन्त्र के वाच्यभूत अर्थ सभी मन्त्रों के वाच्य है यह विषय तर्क के आधार पर सिद्ध होता है । धनुष धारण धरनेवाले दो भुजाओं वाले आदि स्वरूप गुण से युक्त आकृति सम्पन्न सभी अवतारों के मूलकारण स्वरूप अवतारी समस्त जगत् का मूलकारण श्रीरामचन्द्रजी हैं यह अभिप्राय प्रतीत होता है।

यदि यह प्रश्न करें कि श्रीराम मन्त्र का अन्य देवता सम्बन्धि मन्त्रों के अपेक्षा अधिकता अथवा श्रेष्ठता भले ही हो लेकिन प्रणव ॐकार से अधिक श्रीराम मन्त्र को श्रेष्ठ होना कैसे संभव होगा ? ॐकार अविनाशी अक्षर ही सवकुछ है उसका उपव्याख्यान बना हुआ भूत, वर्तमान एवं भविष्यत् समस्त तत्त्व है इस कारण से सवकुछ ॐकार में ही समावेशित हो जाते हैं अर्थात् सवकुछ ॐकार ही है । भूत, वर्तमान, भविष्य इन तीनों कालों से अतीत जो कुछ है वह ॐकार ही है इत्यादि

वोमोक्षदायकः' इति श्रीमद्रामायणोक्तेः । तथैवोक्तम्-'यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तः वेदान्ते च प्रतिष्ठितः । तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः । वेदादिस्वरः ॐकारः तस्य प्रकृतिः कारणं श्रीराममन्त्रः षडक्षरतारकसंज्ञकः तत्रलीनस्य यः परः स महेश्वरः ईश्वराणामपीश्वरः इत्यर्थकत्वसिद्धेः । अनेन वाक्येन श्रीराममन्त्रस्यैवोंकारकारणसिद्धेः । श्रीराममन्त्रस्य सर्वमन्त्रहेतुत्वेन तद्वाच्यस्य सर्वमन्त्रवाच्यत्वोपपत्तेः । धनुर्धरद्विभुजाद्याकृतिमान् सर्वावतारीजगत् मूलकारणं श्रीरामचन्द्र इत्यवगम्यते । नन्वस्तु श्रीराममन्त्रस्य मन्त्रान्तरेभ्य आधिक्यं परन्तु प्रणवात् कथन्तस्याधिक्यम् । तदक्षरं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतंभव्यं भविष्यदिति सर्वमोंकार एव, त्रिकालातीतं तदप्योंकार एवेत्यादि भिस्तस्य सर्वोत्कृष्टत्वनिरूपणात् । काशीमृतप्रणवानुपदेशेन न तस्यापकृष्टत्वम् । प्रणवस्य वेदानां चाध्ययने त्रैवर्णिकानामेकाधिकारः, परं वेदानधिकारिणामपि 'जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्मव्याचष्टे' इतिजन्तुमात्रस्याधिकार दर्शनेनोभयगुणवत्वेन सर्वमन्त्रबीजात् षडक्षरस्योत्कृष्टत्वोपपत्तेः ॥१२॥

नच छान्दोग्योपनिषदि 'प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत् तेभ्यस्त्रयीविद्यासंप्रा स्त्रवत् तामभ्यतपत् तस्या अभितप्ताया एतान्यक्षराणि संप्रास्त्रवन् भूर्भुवः स्वरिति

श्रुति वचनों के द्वारा ॐकार का सभी के अपेक्षा उत्कृष्टत्व निरूपण किये जाने के कारण ॐकार से श्रेष्ठता श्रीराम मन्त्र की कैसे हो सकती है ? प्रणव रूप ॐकार का और वेदों के अध्ययन में ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य इन त्रैवर्णिकों का ही अधिकार है ऐसा शास्त्रों में कहा गया है लेकिन जो वेदाध्ययन के अधिकारी नहीं है ऐसे प्राणियों का भी 'जन्म ग्रहण करनेवाले समस्त प्राणियों के प्राणों का ऊर्ध्वगमन हो जाने पर भगवान् रुद्र उन प्राणियों को षडक्षर तारक ब्रह्म स्वरूप श्रीराममन्त्र का व्याख्यान किये' इत्यादि श्रुति वचनों के आधार पर जन्म ग्रहण करनेवाले प्राणि मात्र का श्रीराममन्त्र में अधिकार देखे जाने के कारण दोनों ही गुणों से सम्पन्न होने से श्रीराम मन्त्र का ही सभी मन्त्रों का बीजत्व (हेतुत्व) सिद्ध होने के कारण षडक्षर तारक ब्रह्म श्रीराममन्त्र की उत्कृष्टता शास्त्र एवं युक्ति के आधार पर सिद्ध होती है ॥१२॥

यदि यह कहें कि छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है कि प्रजापति ने सभी लोकों को पूर्णरूप से तपाया, उन अभितप्त लोक समूह से वेद विद्या सम्यक् रूपसे प्रस्त्रवित हुई । पुनः प्रजापति ने त्रयी विद्या को अभितप्त किया उस अभितप्त त्रयी विद्या

तान्यभ्यतपत् तेभ्योऽतप्तेभ्यः ॐ कारः संप्रास्त्रवत् यथा शंकुना सर्वाणि पर्णानि संन्तृणान्येवमोंकारेण सर्वा वाक् संतृणा ॐकार एवेदं सर्वमिति प्रणवस्य लोकवेदकारणत्वं श्रूयते, तत् कथं तद्विरुद्धं श्रीराममन्त्रस्य त्वया सर्वकारणत्व मुच्यते इतिवाच्यम् । तस्य प्रणवस्य वह्निवीजविवर्तत्वेन तयोर्नामतो मिथोभेदबोधावपि वस्तुतोऽभेदत्वस्वीकारात् । तथाऽपि हठवादिनां कृतेप्युच्यते अभितप्तेभ्य ॐकारः संप्रास्त्रवदित्यत्र व्यक्तरूपेणोत्पत्तिः श्रूयते, अत्र तु

से अविनाशी तत्व भूर्भुवः स्वः ये सम्प्रस्त्रवित हुए । पुनः भूर्भुवः स्वः इन अक्षरों को अभितप्त किया, इन अभितप्त भूर्भुवः स्वः से प्रणव स्वरूप ॐकार सम्प्रस्त्रवित हुआ । जिसप्रकार शंकु (कील) से सभी पत्ते संग्रथित हो जाते हैं । उसी प्रकार ॐकार के द्वारा समस्त वाणी संग्रथित हो जाती है । इसलिये जो कुछ दृश्य जगत् है सवकुछ ॐकार ही है । इसलिए प्रणव का समस्त लोक एवं वेद की कारणता श्रुतियों में सुनी जाती है । तो कैसे इस श्रुति वचनों के विपरीत आपके द्वारा श्रीराम मन्त्र की सर्वकारणता प्रतिपादित की जाती है ? यह नहीं कह सकते हैं क्योंकि उस प्रणव स्वरूप ॐकार का वह्नि बीज का विवर्त स्वरूप में निरूपण होने के कारण ॐकार एवं श्रीराम मन्त्र इन दोनों का नाम से अलग होने पर भी अर्थात् दोनों का परस्पर भेद बोध होने पर भी वास्तविक रूपमें परस्पर अभेदत्व स्वीकार किया गया होने से श्रीराम रूपमें सर्वकारणता प्रतिपादन वेद विरुद्ध नहीं है । ऐसा होने पर भी हठवादियों के मानसिक संतोष के लिये यह कहा जाता है । उन अभितप्त भूर्भुवः स्वः से ॐकार सम्यक् प्रस्त्रवित हुआ इस श्रुति कथन में सुस्पष्ट रूपसे यह कहा जाता है कि उत्पत्ति हुई, ॐकार की उत्पत्ति सुनी जाती है । और यहां तो वीज के स्वरूप में ॐ यस्य इस श्रुति वचन में सुस्पष्ट रूपसे वह्नि वीज से ॐकार की उत्पत्ति हुई, अर्थात् वह्नि-वीज में ॐकारोत्पत्ति की कारणता है । इस कथन से यह वात सन्देह रहित है । सन्देह रहित एवं सन्देह युक्त इन दोनों में सन्देह रहित की बलिष्ठता होती है । इस कारण से भूर्भुवः एवं स्वः इन तत्वों से ॐकार सम्यक् प्रस्त्रवित हुआ इसलिये ॐकार भूर्भुवः स्वः का कार्य है यह विषय समझा जाता है । सम्प्रास्त्रवत् इस शब्द का प्रादुर्भाव रूप अर्थ का बोधक होने के कारण उत्पत्ति हुई यह सुस्पष्ट है । और छान्दोग्य उपनिषद् की श्रुति भी ॐकार का अग्नि वीज कार्यत्व का बाधक नहीं है । जैसे पूर्ण रूपसे सन्तप्त प्रस्तर से लौह की उत्पत्ति बतायी जाती है । तो लौह में कार्यत्व होता

जीवत्वेनेदमोंयस्येत्यत्र स्फुटं वह्निवीजादुत्पत्तिः, इतीदमसन्दिग्धं सन्दिग्धा सन्दिग्धयोरसन्दिग्धस्य बलीयस्त्वात् भूर्भुवः स्वरितेभ्य ॐकारः संप्राश्रवदिति तत् कार्यत्वमवगम्यते । तस्य प्रादुर्भावार्थकत्वात् । छान्दोग्यश्रुतिरपि न तत् कार्यत्वबाधकम्, अभितप्ताश्मनोर्लोहोत्पत्तिरिव व्याहृतिभ्यस्तस्योत्पत्तेः कार्यत्वम् । यथा-काशीमरणान्मुक्तिः, ऋते ज्ञानान्नमुक्तिरित्यनयोः श्रुतिवाक्ययोः परस्परं विरुद्धार्थकत्वेन बोधेऽपि तयोरेकवाक्यतायां सत्यां काशीमरणोत्तरं ब्रह्मतारकषडक्षरश्रीराममहामन्त्रलाभजनितज्ञानान्मुक्तिरित्यर्थः पण्डितैः क्रियते तथैव अत्रापि व्याहृतिवीजात्तदुत्पत्तिः ।

है उसी तरह अग्नि वीज से उत्पन्न ॐकार में कार्यत्व है । यही कहते हैं व्याहृतियों से ॐकारोत्पत्ति का कार्यत्व है । जिस तरह कहा जाता है कि-काशी में मरण होने से मुक्ति होती है, तथा विना आत्म परमात्म ज्ञान से मुक्ति नहीं होती है, इन दोनों श्रुति वचनों में परस्पर विपरीतार्थ प्रतिपादकता होने के कारण इन दोनों के वाक्यार्थ बोध में भी दोनों श्रुति वचनों की एक वाक्यता करने पर यह ज्ञान होता है कि काशी में मृत्यु हो जाने के उत्तरवर्ती काल में या मरणासन्न काल में ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराम महामन्त्र के सदुपदेश से तात्विक ज्ञान होने से मोक्ष होता है यह निर्गलितार्थ सदसद् विवेकी विद्वानों के द्वारा किया जाता है । इसी प्रकार इस प्रकरण में भी यह निर्णीत होता है कि व्याहृति वीज से ॐकार की उत्पत्ति होती है ।

वास्तविक तो यह कि छान्दोग्य उपनिषद् का यह अभिप्राय है कि सारांश रूप में उसकी व्याप्ति का निर्देश करके समस्त वाङ् मय के तत्व के स्वरूप में सर्वरूपी के स्वरूप में सर्वकारणता का प्रकाशन होता है । अप्रधान उपसंहार न्याय से जीवात्मा के स्वरूप में यह ॐकार आदि जिसका इत्यादि उपनिषदों की एक वाक्यता के द्वारा सभी का कारण ॐकार है, ॐकार का रूपी होने के कारण अकार उकार सहित उसके विलय का कारण मकार स्वरूप प्रणव की कारणता के रूप में और उस ॐकार का वह्नि वीजात्मक होने से समस्त वाणी की आत्मात्व निरूपक श्रुति वचन के द्वारा सर्वकारणत्व सिद्ध होता है । उन अकार एवं मकार का आश्रय स्वरूप में रेफ के होने के कारण रेफ में सर्वकारणता है यह समझा जाता है । अक्षर स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी के नाम का जो सर्वथा प्रत्यक्ष है उसकी सर्वकारणता सर्वतोभावेन सिद्ध होती है । परिणाम स्वरूप अन्यान्य मन्त्रों से करोडों गुणा अधिक फल प्रदायकता सुने जाने से

वस्तुतः छान्दोग्ये सारांशत्वेन तस्य व्याप्तिं निर्दिश्य सर्ववागात्मकत्वेन सर्वरूपित्वेन सर्वकारणत्वं प्रकाश्यते । गुणोपसंहारन्यायेन जीवत्वेनेदमोंयस्येति समेषामुपनिषदां एकवाक्यतया सर्वस्य कारणमोंकारः ओंकाररूपितया अकारोकारसहिततल्लयहेतुमकारात्मकप्रणवकारणत्वेन तस्य वह्निवीजावयवतया च सर्ववागात्मकत्वश्रुत्या सर्वकारणत्वं सिध्यति तयोरकारमकारयोराश्रयत्वेन रेफस्य सर्वकारणत्वं बुध्यते । अक्षरात्मकस्य श्रीरामनाम्नः प्रत्यक्षस्य सर्वकारणत्वं निष्पद्यते । फलतः अन्यमन्त्रेभ्यः कोटिगुणाधिकफलश्रवणात् । तदुक्तम्-'जीवत्वेनेदमोंयस्य ब्रह्मादीनां वाचकोऽयं सर्ववाच्यस्य वाचकः एतदेवोपास्यं ज्ञेयं च य एतत्तारकं ब्रह्मणो नित्यमधीते । विष्णोर्नाम्नां सहस्राणां, अनन्ता भगवन्मन्त्राः, जपतः सर्ववेदांश्चेत्यादिभिः अकारमकारवाच्यानामपि प्रत्यक्षरनिर्णयेन रकारवाच्यस्य सर्वकारणत्वं रेफारूढमूर्तयः स्युः शक्तयस्तिस्र एवेति श्रुतेः च, चराचरवाचककारणानां सशक्तिकानां ब्रह्मविष्णुशिवादीनां रेफ-वाच्यस्यैव कारणत्वं सिध्यति ।

भी सिद्ध है । यही विषय वस्तु कही गयी है जीव स्वरूप में ओम् जिसका प्रतिपादक है यह सर्व वाच्य का वाचक है । यह ही उपासना करने योग्य एवं जानने योग्य है । जो यह ब्रह्माजी का भी उद्धार करने वाला तारक नामक षडक्षर श्रीराम मन्त्र का अध्ययन करता है । भगवान् विष्णु के हजारों नामों का इत्यादि अगणित भगवानों के मन्त्र है इत्यादि और सभी वेदों एवं जपों से अपेक्षाकृत अधिक श्रीराम मन्त्र हैं, इत्यादि प्रमाणों के आधार पर-और अकार मकार आदि प्रतिपाद्य अर्थों के निर्णय के द्वारा भी रकार इस अक्षर के वाच्यार्थ का सर्वकारणत्व रेफ इस अक्षर पर आरूढ होने वाली मूर्तियां तीन शक्तियां ही है इस श्रुति से भी चराचर अर्थ को प्रतिपादन करने वाले कारणों का जो अपने अपने शक्तियों के सहित हैं ऐसे ब्रह्मा विष्णु एवं शिव आदि तत्वों को रकार से प्रतिपाद्य अर्थ तत्व की ही कारणता सिद्ध होती है ।

उपपत्तियों के द्वारा श्रुति वचनों के द्वारा तथा युक्तियों के द्वारा प्रतिपाद्य अर्थ तत्व का वाचक की उत्कृष्टता प्रदर्शन करने से वाच्यत्व जाना जाता है । उपासनीय देवता के नाम का उच्चारण करने मात्र से ही उस संज्ञा वाचक शब्द से प्रतिपाद्यभूत अर्थ का अभिमुखी भवन के द्वारा पात्र आदि के समान अथवा घृत आदि के समान वाचक वाच्य का परस्पर तादात्म्य है इस तात्पर्य को सूचित करता है । लेकिन उस

उपपत्तिभिः श्रुतिभिर्युक्तिभिश्च वाचकोत्कृष्टत्वप्रदर्शनेन वाच्यत्वं ज्ञायते। नामोच्चारणमात्रेण तद्वाच्यस्याभिमुखीभवनम् पर्णादिवद् घृतादिवद् वा तादात्म्यं सूचयति। किन्तु नाकारो दृश्यते। नाधाराधेयभावो नवावयवावयविभावः नापिकृपादयाद्युच्चारसमकालतदाश्रयद्रव्यस्याभिमुखीभवनं दृश्यते। किन्तु नाम्नः स्ववाच्येन गुणगुणीभाव उपपद्यते। नाम्नः स्ववाच्यतः पृथक् सत्ताकत्वेऽपि यथा कृपादयादिशब्दानामुच्चारणकाले झटिति बोधोजायते, तथा नाम्नः स्वोच्चारणसमकाले वाच्यविशेषस्य झटिति बोधात् तादात्म्यभावो भवति। यथा भगवदवताराणां परस्परमभेदस्तथैव तन्मन्त्राणामपि मिथोऽभेदः। 'सीतारामौ तन्मयावत्र पूज्यौ' इतिश्रीरामोपनिषदि, माण्डूक्ये च वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टोजन्ये जन्ये पञ्चरूपो बभूव कृष्णस्तथैकोऽपि जगद्धितार्थं शब्देनासौ
उच्चारित उपास्य देवता की आकृति चर्मचक्षु से गोचर नहीं होती है। उन वाच्य वाचकों का परस्पर आधाराधेय भाव सम्बन्ध अथवा अवयव अवयवी भाव सम्बन्ध नहीं हो सकता है। और भी कृपा दया अनुकम्पा आदि शब्दों के उच्चारण करने पर उन-उन शब्दों के उच्चारण समकाल में उनके आश्रय भूत द्रव्य का अभिमुखी भवन नहीं होता है यह भी देखा जाता है। लेकिन संज्ञा वाचक नाम का अपने वाच्य भूत अर्थ के साथ परस्पर गुण गुणी भाव उपपत्ति युक्त होता है। नाम का अपने वाच्य भूत अर्थ से पृथक् सत्ता है जिसकी ऐसा होने पर भी जैसे कृपा दया आदि शब्दों के उच्चारण करने के समकाल में नाम के साथ कृपा आदि शब्द सम्बद्ध होने पर उच्चारण करने से अत्यन्त शीघ्र अर्थ बोध होता है। उसीप्रकार नाम का अपने उच्चारण समकाल में प्रतिपाद्य अर्थ विशेष का अत्यन्त शीघ्रता के साथ तत्काल अर्थ बोध होने के कारण नाम नामी का परस्पर तादात्म्य भाव सम्बन्ध होता है। जिसप्रकार भगवान् के अनेकानेक अवतारों का परस्पर अभेद सम्बन्ध होता है यह वस्तु निर्विवाद है। उसीप्रकार ही भगवान् के अनन्त मन्त्रों का भी आपस में परस्पर अभेद सम्बन्ध है यह तात्पर्य अभिव्यक्त होता है। 'परस्पर अभिन्न श्रीसीतारामजी इस श्रीसम्प्रदाय में पूजनीय हैं'। इसप्रकार श्रीरामोपनिषद् में और माण्डूक्य उपनिषद् में भी कहा है जिस प्रकार एक ही वायु भुवन में प्रविष्ट होकर उत्पन्न होने वाले प्रत्येक प्राणी में जाकर पांच स्वरूप वाला हो गया। उसी प्रकार एक ही श्रीकृष्ण इस चराचर जगत् का परम कल्याण करने के प्रयोजन से शब्द के द्वारा यह श्रीकृष्ण पांच पदों वाला

पञ्चपदीविभाति, इतिगोपालोपनिषदि, एकांगसङ्गिनीगङ्गापावयेदखिलं जगत्। अङ्गप्रत्यङ्गसुव्यापि नाम किं कर्तुमक्षमम् । अत्र अङ्गप्रत्यङ्गसंव्यापि इति पदं स्ववाच्याङ्गप्रत्यङ्गाभेदत्वेन व्याप्यव्यापकभावबोधात् नाम्नोव्यापकत्वेन वाच्याधिक्ययुक्त्या मूलकारणत्वे, वाच्येऽपि व्यापकत्वेन विनाशित्वादिप्राप्तौ 'रामत्वत्तोऽधिकं नाम यदुक्तैर्वपुमांस्तरेत् । विनाऽपि सेतुनिर्माणमपारम्भवसागरमिति वचोभिः नाम्न अधिक्यद्योतकत्वं, तदुच्चारणे सर्वाधिकारात् सर्वसुलभत्वम् तदेवहृदये निधाय भगवान् पार्वतीपतिः तेजोमयोरेफ इत्यादिना स्ववाच्यांगप्रत्यंगाभेदत्वं स्फुटयामास ॥१३॥

प्रतीत होता है ऐसा गोपालतापनीय उपनिषद् में कहा गया है । प्राणी के एक अङ्ग विशेष के साथ सम्पर्क प्राप्त करनेवाली गङ्गा सम्पूर्ण संसार को पावन बना देती है। प्रत्येक अङ्ग प्रत्यङ्ग के साथ सम्पर्क यदि प्राप्त हो जाय तो वह गङ्गा क्या क्या करने में सक्षम नहीं हो सकती है । अर्थात् सकल अभिमत कल्याणों को प्रदान करने में सर्वथा सक्षम है । पूर्व प्रतिपादित वचन में अङ्ग प्रत्यङ्ग संव्यापि यह पद अपने प्रतिपाद्य अवयव प्रत्यवयव के साथ सम्यक् व्यापन आदि अर्थों के साथ अभेद सम्बन्ध के द्वारा उन वाचक और वाच्यभूत अर्थों का परस्पर व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध रूप अर्थ का बोध होने से नाम का व्यापकत्व होने के कारण प्रतिपाद्य अर्थ से अधिकता की युक्ति के आधार के द्वारा मूलकारणता में और वाच्यभूत अर्थ में भी व्यापकता हो जाने के कारण विनाशित्व आदि दोष उपस्थित होने पर 'हे राम आप से कहीं अधिक आपका नाम माहात्म्य धारण करता है, जिस नाम का उच्चारण मात्र करलेने से शरीरधारी प्राणी इस संसार सागर से उद्धार प्राप्त करलेता है । विना सेतु आदि के निर्माणादि प्रयत्न के ही दुस्तर अपार संसार रूपी सागर को पार करलेता है, इन वचनों के द्वारा नामी के अपेक्षाकृत नाम की अधिकता का प्रकाशन होता है तथा श्रीरामजी के नाम का उच्चारण करने का समस्त प्राणी मात्र को अधिकार है यह विशेष गुण होने से श्रीरामचन्द्रजी में सर्वसुलभता स्वरूप गुण सिद्ध होता है । इन्हीं विषय वस्तु को अन्तःकरण में स्थापित कर भगवान् आशुतोष पार्वतीनाथ कहे हैं- तेजोमय रेफ का इत्यादि के द्वारा अपने प्रतिपाद्य के अङ्ग प्रत्यङ्ग के साथ परस्पर अभेद सम्बन्ध है इस अर्थ को सुस्पष्ट किये ॥१३॥

अत्र विषये स्मृतावुक्तम्-

'श्रीरामस्यकलांशाद्वै अवताराभवन्ति हि ।
कोटिकोटिश्च कार्यार्थे सिन्धौवीचीव वै मुने ?' ॥

'कलेशः' स्मृतेरस्य श्रुतिमूलकत्वबोधात् । तत् प्रतिपाद्यः श्रीरामचन्द्रः सर्व रूपी, तत्तत् काले तत्तद् रूपप्रदर्शनपुरस्सरमवतीर्य तानि तानि कार्याणि सम्पादयन् तांस्तांश्च गुणान् प्रकटयन् तत्तत् क्रियागुणनामभिः तासु तासूपनिषत्सु पुराणेषु स्मृतिषु च तेन तेन प्रकारेण तत्त्वविद्भिर्गीयते । इतिसकलश्रुतिस्मृति वचनानामेकवाक्यतयावगम्यते । इत्थं तत्तद् भगवद् विग्रहाणां तत्तदवतारित्व वचनाश्रवणात् । कुत्रचिच्छ्रुतस्यापि तथाविधस्य वचनस्य प्रबलश्रुत्यन्तरविरोधेन

श्रीरामचन्द्रजी के मूलकारणत्व एवं सर्वावतारित्वादि के विषय में स्मृति में कहा गया है। क्योंकि सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के कलांश से ही अनन्त अवतार होते हैं। श्रीब्रह्माजी के निर्णयानुसार श्रीरामजी ही कला के ईश हैं अतः जैसे समुद्र के अन्दर कार्य विशेष सिद्धि के लिये करोडों तरङ्ग उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार प्रयोजन विशेष का सम्पादन करने के लिये सर्वकलाओं के अधीश श्रीरामजी के कलांश से करोडों अवतार होते हैं। इस स्मृति का वेदमूलक ज्ञान होने के कारण, उससे प्रतिपाद्य श्रीरामचन्द्रजी सर्वरूपी हैं, उन उन समयों में उन-उन रूपों को प्रदर्शन करने के साथ साथ अवतार धारण कर उन उन कार्य विशेषों को सम्पादन करते हुए तथा तत्तत् प्रकार के गुणों को प्रकट करते हुए भिन्न भिन्न प्रकार के क्रियाओं गुणों एवं नामों के द्वारा भिन्न भिन्न नामों से प्रसिद्ध उपनिषदों में तत् तत् पुराणों में एवं स्मृति वचनों में भिन्न भिन्न प्रकार से ज्ञानी ऋषियों के द्वारा सुव्यक्त रूपसे कहा जाता है। इसतरह समस्त वेदवचन स्मृति वचनों के एक वाक्यता के द्वारा समझा जाता है। इस प्रकार उन-उन भगवान् के विग्रहों का उन-उन अवतारों के अवतारित्व सुने जाने के कारण कहीं कहीं पर सुने गये भी उसतरह के वचनों का उस के अपेक्षा शक्तिशाली अन्य श्रुतिवचन का विरोध के द्वारा यह वचन अन्यार्थ बोधन परक है ऐसा समझा जाता है। पुराण आदि में सुने गये उन-उन अवतारों के अवतारित्व वचन का वेदमूलक होने के कारण तथा शिष्ट महापुरुष का वचन होने के कारण अन्य अवतार बोधक अवतारित्व वचनों के द्वारा अनुमान किये गये मूलश्रुतियों का बहुत अधिकता होने के कारण बहुत अवतारित्व सिद्ध हो जाने पर एक वचन का दूसरे वचन के साथ विसम्बादिता (परस्पर विपरीत होना) हो जाने पर समस्त श्रुतियों का अप्रामाणिकत्व

अर्थान्तरपरत्वमवबुध्यते । पुराणादिषु श्रुतस्य तत्तदवतारित्ववचनस्य श्रुतिमूलकतया शिष्टवचनतयाचावतारान्तरपरावतारिवचनैरनुमितानां मूलश्रुतीनां बाहुल्यात् वह्ववतारित्वे विसंवादितायां सर्वासां तासामप्रामाणिकत्वापत्तेः । तदनुमापकपुराणवचनानां तु विसम्वादितायामशिष्टप्रणीतवाक्य इवाप्रामाणिकत्वे शिष्टप्रणीतवचनैः सर्वथा अप्रमाणीकर्तुमयोग्यतया, स्वरूपविशेषेरुचिजननाय अवतारित्वमुक्तम्, तद्विधानां वचनानामर्थान्तरपरत्वेन स्वीकरणीयतया, पुराणादिवर्णिततत्तदवताराणां श्रुतिमूलकत्वेन यथा श्रुतार्थनिष्पत्तौ, श्रीरामस्य स्वोपनिषदि सर्वरूपित्वसर्वशब्दवाच्यत्वादिश्रवणात्

होने लग जायगा। श्रुति तात्पर्य का अनुमान कराने वाले पुराणों के वचनों का तो परस्पर विपरीतार्थ बोधकता होने पर जैसे अशिष्ट पुरुष विरचित वचनों का अप्रामाणिक करने के लिये औचित्य नहीं होने पर स्वरूप विशेष में अभिरूचि पैदा कराने के लिये अवतारित्व प्रतिपादन यह मानते हैं। इस तरह के वचनों का अन्यार्थ प्रतिपादन परत्व है इस रूपमें स्वीकार करने योग्य होने से पुराण आदि ग्रन्थों में वर्णन किये गये उन-उन अवतारों का वेद पर आधारित वचन होने के कारण जैसा सुना गया है तदनुरूप अर्थबोध होने पर श्रीरामचन्द्रजी का श्रीरामोपनिषद् में सर्वरूपित्व सर्वशब्द वाच्यत्व आदि विशेषता सुने जाने से पुराणादि ग्रन्थों में सुने गये अवतार बोधक वचनों का यह कथन वेद पर आधारित है यह विषय वस्तु दिखाने के लिये इस सिद्धान्त को पक्ष बनाकर (जिसमें साध्य विषयक सन्देह होता है उसे पक्ष कहते हैं) अनुमान के द्वारा पूर्व निर्णीत एवं कल्पना द्वारा उपस्थापित दोनों की स्थिति होने पर क्लृप्त की वलिष्ठता होती है। इस कारण से यह रघुवंशावतीर्ण श्रीरामचन्द्रजी मनुष्य नहीं हैं। किन्तु भगवान् विष्णु हैं, नारायण आदि का अवतार होने के कारण परमेश्वर हैं। इत्यादि अवतारित्व सिद्धि के विपरीत एवं वेद सिद्धान्त के विपरीत अर्थ को स्वभावतः प्रतीत होने वाले मनुष्य देवतांशत्व आदि विषयक बुद्धि का निवारण करके और वे सभी वाक्य अन्यार्थ सिद्धि परक हैं यह अच्छी तरह युक्ति पूर्वक सिद्ध करके श्रीरामचन्द्रजी का सभी अवतारों के अवतारी के स्वरूप में तथा सर्वशब्द वाच्यत्व के स्वरूप में एवं अनन्त रूपी होने के स्वरूप में चरममन्त्रों में विष्णु नारायण वासुदेव परब्रह्म परमपुरुष मत्स्य कूर्म आदि के रूपित्व शिवरुद्र आदि के रूपित्व सुना जाता है। इसीलिये तत्तद् शब्दों के वाच्य वाचकत्व आदि कथन युक्ति संगत होता है। समस्त

पुराणादिश्रुतावतारवचनानां वेदमूलकत्वदर्शनाय पक्षीकृत्यानुमानेन क्लृप्त-कल्पितयोः क्लृप्तस्य बलीयस्त्वेन नायं राघवोमनुष्यः किन्तु विष्णुः नारायणाद्यवतारत्वेन परमेश्वरः, इत्याद्यवतारित्वविरुद्धं श्रुतिविरुद्धं चार्थं प्रातीतिकमनुष्यत्वदेवतांशत्वादिबुद्धिं निराकृत्य, तानि च वाक्यान्यर्थान्तर पराणीति साधुसंसाद्य तस्य सर्वावतारित्वेन सर्वशब्दवाच्यत्वेनानन्तरूपित्वेन च चरममन्त्रेषु विष्णुनारायणवासुदेवपरब्रह्मपरमपुरुषमत्स्यकूर्मादिरूपित्वं शिवादि-रूपित्वञ्चाकर्ण्यते । अतएव तद्वाच्यवाचकत्वं युज्यते । सर्वोपनिषत् प्रतिपाद्या-शेषकारणवाच्यनिरूपणीयत्वं च सम्यगुपपाद्यते ।

उपनिषदों के द्वारा निरूपण करने योग्य समस्त कारण वाच्यत्व आदि की निरूपणीयता सम्यक् प्रकार से उपपन्न होता है ।

ब्रह्म शब्द कहीं पर जीव अर्थ बोधन परक है तो अन्य जगह पर प्रकृति विषयक अर्थ बोधक है, कहीं पर तो नृसिंह होते हैं, कृष्ण परब्रह्म हैं नारायण परब्रह्म है इत्यादि में उन शब्दों का ब्रह्म शब्द विशेषण बनकर स्वाभाविक रूपसे बोध होनेवाला नृसिंहत्व मत्स्यत्व पानी में पैदा होनेवाला अन्य जीवत्व आदि विषयक बुद्धि को निराकृत करने के लिये प्रयोग किया है । और कहीं पर स्वतन्त्र रूपसे सर्वकारणत्व बोधक 'ब्रह्मणो रूप कल्पना' इत्यादि में व्यवहार किया है । भगवान् के शरीर रूपमें सुशोभित होनेवाला ब्रह्म है । उनके नखों का प्रकाश ब्रह्म है इत्यादि कथनों में ब्रह्म शब्द व्यापकता आदि अर्थों क़ा बोध जनक है ।

यह दृश्य समस्त चराचर जगत् ब्रह्मरूप है । ब्रह्म तत्व को जानने वाला ब्रह्म स्वरूपक होता है । ब्रह्म जैसा होकर ब्रह्मत्व को भी प्राप्त करता है । आनन्द स्वरूप ब्रह्म है । सृष्टि रचना की पूर्वावस्था में केवल सूक्ष्म ब्रह्म ही था । ब्रह्म तत्व ज्ञानी परम तत्व को प्राप्त करता है । सत्य ज्ञान एवं अनन्त स्वरूप वाला ब्रह्म है । जो अन्तःकरण की गुफा में स्थित ब्रह्म तत्व को जानता है, वह लोक परलोक की समस्त अभिलाषाओं का उपभोग करता है। वह उपभोग तत्त्व ज्ञान स्वरूप ब्रह्म के साथ करता है। उपासकों के अभिमत प्रयोजन की सिद्धि के लिये ब्रह्म की उप कल्पना की गयी है। इत्यादि उपनिषदों में कहे गये वचनों में ब्रह्म शब्द के द्वारा कहे गये श्रीहरि विष्णु नारायण आदि शब्द अपनी परिस्थिति आदि भेदों में नख के प्रकाशत्व ब्रह्म आदि की सिद्धि नहीं होने पर कारण वाक्य में प्रयोग होने वाला ब्रह्म शब्द सामान्य होने

ब्रह्मशब्दः क्वचिज्जीवपरः अन्यत्र प्रकृतिविषयकः क्वचित्तु नृसिंहोभवति कृष्णः परंब्रह्मनारायणः परंब्रह्मेत्यादौ तेषां शब्दानां विशेषणीभावेन प्रातीतिकनृसिंहत्वमत्स्यत्वजलजातजीवान्तरीयबुद्धिनिराकरणाय । क्वचित् स्वतन्त्ररूपेण सर्वकारणत्वबोधको ब्रह्मणोरूपकल्पनेत्यादौ-हरेस्तनु भाः ब्रह्म, तन्नखज्योतिर्ब्रह्म इत्यादिषु ब्रह्मशब्दोव्यापकादिबोधकः ।

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' 'ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति' 'आनन्दो ब्रह्म' 'ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्' 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' 'यो वेदनिहितं गुहायां सोश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणाविपश्चिता' 'उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणोरूप कल्पना' एवमाद्युपनिषद् वचनेषु ब्रह्मशब्देनोक्ता हरिविष्णुनारायणादयः स्वावस्थाविशेषेनखज्योतिष्ट्वासिद्धौ कारणवाक्यगतो ब्रह्मशब्दः सामान्यत्वात् श्रीरामशब्दमहत्ववत् पशुछागन्यायेन के कारण ब्रह्मत्व विशेष बोधक नहीं है। जैसे श्रीराम शब्द का सामान्य रूपसे महत्व निरूपण किया जाता है। लेकिन सभी ब्रह्म शब्द पशु छागन्याय से श्रीरामार्थ विशेष बोध परक हैं ऐसा अभिप्राय प्रतीत होता है। क्योंकि ब्रह्म शब्द सर्वरूपी श्रीरामचन्द्रजी का ही वाचक है, किसी अन्य के ब्रह्मत्व प्रतिपादक नहीं हैं। ऐसा नहीं स्वीकार कर ने पर मूलकारण की अनन्तता सिद्ध हो जायगी। इसी विषय वस्तु को श्रुति कहती है 'चैतन्यमय अद्वितीय का, चैतन्यमय परमेश्वर है, परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी चैतन्य स्वरूप हैं। इत्यादि श्रुति वचनों के द्वारा वार-वार कह कर परमज्योतिः स्वरूप जो सत् चित् आनन्द अद्वैत एकरसात्मक आदि कथन के द्वारा उपसंहार करने से भी मूल कारणता श्रीरामचन्द्रजी की ही सिद्ध होती है। श्रीरामचन्द्रजी के चिन्मयत्व व्यापकत्व आदि गुण चेतन अचेतन समस्त चराचर वस्तुओं में प्रवेश करके उन समस्त जडचेतनों का नियामकत्व आदि सर्व स्वामित्व प्राणी मात्र पर करुणा शीलता और वात्सल्य भाव से साधारण दुःख से लेकर अविद्या पर्यन्त समस्त दुःखों का निवारण कारित्व आदि, श्रेष्ठ पुरुष से लेकर चाण्डाल पर्यन्त प्राणियों के लिये सुलभ होने के कारण सर्वसुलभत्व, समस्त जीवों का उद्धार करने के लिये लीलाविभूति के स्वरूप में परम पवित्र श्रीमद् अयोध्या नामक नगर में चक्रवर्ती सम्राट् के घर में अवतार धारण कर सर्वाधिपत्य सर्व स्वामित्व आदि तत्वों का अनुमान कराते हुए रीछ बानर निषाद राक्षस आदि के साथ मैत्री के व्यवहार द्वारा समस्त दृश्य चराचर जगत् के शरणागति योग्य

श्रीरामपर इत्यवगम्यते । सर्वरूपिणः श्रीरामस्यैव वाचको नान्यस्य, अन्यथा मूलकारणस्यानन्त्यं स्यात् । तदाह श्रुतिः 'चिन्मयस्याद्वितीयस्य' 'चिन्मयः परमेश्वरः' 'परंब्रह्म रामचन्द्रश्चिदात्मकः' इत्यादिभिः पौनः पुन्येनोक्त्वा परंज्योतिः स्वरूपिणं यः सच्चिदानन्दाद्वैतैकरसात्म्येत्युपसंहाराच्च श्रीरामस्य चिन्मयत्वव्यापकत्वादयो गुणाः चिदचिद्वस्तुषु प्रविश्य तेषां नियमनेन सर्वस्वामित्वं कारुण्येन वात्सल्येन चाविद्यान्तसर्वदुःखहारित्वादिकं आ-पामरजन्तुसुलभत्वं निखिलजीवोद्धाराय लीलाविभूतौ श्रीमदयोध्यायां चक्रवर्ति भवनेऽवतीर्य सर्वाधिपत्यादिकमनुमापयन् ऋक्षवानरगुहराक्षसादिभिः सार्धं मित्रतया सकललोकशरण्यत्वं गमयन् स्वभक्तांश्च तोषयन् परमधामप्रयाणकाले सरय्ववगाहनपुरस्सरं परमधामप्रापणेन सर्वभूतदयालुतां प्रकाशयन् तदानीन्तनानां नीचानामपि स्वभक्तानां स्वपरधामाधिकारित्वं गमयति ।

समस्त शरणागत प्रतिपालकत्व आदि भावों का बोध कराते हुए, और अपने आश्रित भक्तजनों को अभिमत सुख प्रदान कर सन्तुष्ट करते हुए अपने परम दिव्य धाम श्रीसाकेत लोक के लिये प्रयाण करने के समय परम पावन सरयू नदीं में स्नान के साथ साथ अपने परम धाम पहुँचाने के कारण समस्त प्राणी मात्र पर दयालुता को प्रकाशित करते हुए, श्रीरामावतार के समकाल में होने वाले नीच से नीच भी अपने भक्तों को परमधाम श्रीसाकेत लोक उपलब्ध करने का अधिकारी बनाये इस अभिप्राय को प्रकाशित करता है ।

श्रीरामचन्द्रावतार के समकाल में भगवान् श्रीरामजी जीवात्माओं के अपने परधाम प्राप्ति के लिये ब्रह्म रुद्र आदि भेद से सम्प्रदायों को सम्यक् रूपसे प्रवर्तित करके अपने उस प्रदेश में उत्पन्न होनेवाले समस्त प्राणियों के साथ सदेह अथर्ववेद में वर्णित अयोध्या दिव्यधाम श्रीसाकेत नामक अपने परमधाम में गये । इस प्रकार श्रीरामतापनीय उपनिषद् के श्रुति वचन अभिव्यक्त करते हैं । चैतन्यमयत्व व्यापकत्व आदि गुण समूह से सुशोभित भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के महाराज दशरथ के घर में अवतार ग्रहण करने के पश्चात् श्रीवशिष्ठ वामदेव आदि मन्त्र द्रष्टा ऋषियों के द्वारा परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी के गुण कर्म आदि को समझाते हुए 'राम' ऐसा नामकरण प्रकट किया गया । पुराण आदि ग्रन्थों के कथाओं में प्रसिद्ध अवतार धारण करने के कारणों को प्रकट करते हुए अनादि काल से सिद्ध सत्य आनन्द एवं चैतन्य स्वरूप उनके

तदानीं सर्वेश्वरश्रीरामो जीवानां स्वपरधामोपलब्धये ब्रह्मरुद्रादिभेदेन सम्प्रदायं प्रवर्त्य स्वदेशीयैः सार्धं श्रीसाकेताख्यं स्वदिव्यधाम गतवान् । इति श्रीरामतापनीयः श्रुतयः चिन्मयत्वव्यापकत्वादिगुणगणमण्डितः श्रीरामः दशरथभवने आविर्भावात् परं श्रीवशिष्ठादिभिः ऋषिभिः तस्य गुणकर्मादिकं बोधयन् 'राम' इति नामकारणं कृतम् पुराणकथादिषु प्रसिद्धं 'सर्वेषामव ताराणामवतारीरघूत्तमः' इत्याद्यागमप्रसिद्धं सर्वेश्वरश्रीरामस्यावतारकारणं प्रकटयन् अनादिसिद्धं सत्यानन्दचिदात्मकं तत्स्वरूपं बोधयन् सर्वकारण स्यावतारिणश्चिन्मयस्येत्यादिना आरभ्य द्वैविध्यं स्फुटयन्त्यः श्रीरामतापनीयाः श्रुतयः कल्पितस्य देहस्य सेनादिकल्पनान्ता अर्थाः प्रकाशयन्ति ॥१४॥

वास्तविक स्वरूप को बोध कराते हुए सभी के कारण का एवं सभी अवतारों के अवतारी का चैतन्यमय का इत्यादि कथनों के द्वारा प्रारम्भ करके दो प्रकार का सुस्पष्टता के साथ ज्ञात कराते हुए श्रीरामतापनीय उपनिषद् की श्रुतियां कल्पना द्वारा उपस्थापित शरीर का सेना आदि की कल्पना पर्यन्त अर्थ तत्त्व प्रकाशित करते हैं ॥१४॥

चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दशरथे हरौ ।
रघुकुलेऽखिलंराति राजते यो महीस्थितः ।
स राम इति लोकेषु विद्विद्भिः प्रकटीकृतः ॥१॥

महाराज रघु के वंश में दशरथ के घरमें महान् व्यापकत्व आदि गुणगण मण्डित चैतन्यमय परम तत्त्व श्रीराम नामक ब्रह्म का प्रादुर्भाव होने पर अर्थात् भक्तों पर अनुग्रहार्थ श्रीरामावतार होने पर जो पृथिवी पर रहकर भक्तों के समस्त मनोऽभिलषित वस्तु प्रदान करते हुए सुशोभित होते हैं वे विद्वानों के द्वारा 'राम' कहे जाते हैं ॥१॥

'रामचन्द्रश्चिदात्मकः चिन्मयः परमेश्वरः, चिन्मयस्याद्वितीयस्येत्याद्युप निषत्सु पौनः पुन्येन पाठात् चिन्मयं ज्योतिर्मयम् स्वप्रकाशम् परं तत्वमेवोपनिषत् प्रतिपाद्यं श्रीराम एव, नेतरे, श्रीहरिविष्णुप्रभृतिपदेषु तथाभ्यासानवलोकनात् ।

श्रीरामचन्द्रजी चैतन्य स्वरूप ज्योतिर्मय हैं । दिव्य प्रकाशमय परमेश्वर हैं, ज्योतिर्मय अद्वितीय के, इत्यादि उपनिषद् ग्रन्थों में भूयो भूयः चिन्मय शब्द के पठन द्वारा चैतन्यमय दिव्य ज्योतिस्वरूप, स्वयं प्रकाश एवं सर्वोत्कृष्ट ब्रह्म तत्व ही उप

एकत्रवाक्ये अनेकपदानां विशेष्यत्वस्यायुक्तत्वात्, तयोर्व्यापकत्वादिगुणपरतया विशेषणत्वेन सार्थक्यम् । ननु चिन्मयपदं श्रीविष्णुहरिपर इति चेत् तन्न । 'सर्वेषामवतारामवतारीरघूत्तमः' इत्यागमोक्त्या सर्वेश्वरश्रीरामस्यैवावतारिणो भुव्यवतीर्यदाशरथित्वं प्राप्तस्य गुणकर्मनिमित्ततापि 'रामाख्याभुविस्यादित्यर्थि कायाः श्रुतेर्विरोधात् ।

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्देचिदात्मनि । इति रामपदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते ॥

इतिमुख्यनामपरोत्तरश्रुतिविरोधात् च बहूनां मुख्यनामत्वानुपपत्तेः । यदप्युच्यते बहुषु गुणनामसु मुख्यत्वसूचकमिदमिति, तदप्यसङ्गतम् । वैष्णवमन्त्रेषु श्रीराममन्त्रस्य फलाधिक्यात्, लौकिकवैदिकशब्देषु श्रीरामचन्द्रनाम्नः सहस्र

निषदों के प्रतिपादनीय तत्व श्रीरामचन्द्रजी ही हैं दूसरे नहीं । श्रीहरि महाविष्णु आदि पदों में जिस तरह श्रीरामजी के लिये कहा गया है उसी तरह पौनः पुन्येन अन्यों को नहीं कहे जाने के कारण प्रकृत वर्ण्य श्रीरामजी ही हैं । एक वाक्य में अनेक विशेष्य बोधक पदों का होना युक्ति संगत नहीं कहा जा सकता है, इसलिये महाविष्णु और हरि पदों में व्यापकत्व आदि गुणार्थ बोधपरकता के कारण विशेषण स्वरूप में समन्वय करने से सार्थकता होती है ।

यदि यह प्रश्न करें कि चिन्मय पद श्रीहरि महाविष्णु परक है न कि श्रीराम परक तो ऐसा नहीं कह सकते । अवतारी श्रीरामचन्द्रजी का ही इस मण्डल पर अवतार धारणकर महाराज दशरथ के पुत्रत्व प्राप्त करके गुण कर्म निमित्तक होने पर भी 'रामाख्या भुवि स्यात्' इस अर्थ वाली श्रुति के साथ विरोध होने से महाविष्णु हरि परक नहीं है ।

सत्य आनन्द एवं ज्योतिर्मय स्वरूप अनन्त परम तत्व में योगिजन समाधि जनित सुखानुभूति करते हुए विहार करते हैं इसलिये वह परब्रह्म 'राम' पद से कहे जाते हैं । इसप्रकार प्रतिपादित मुख्यनाम प्रतिपादक उत्तरवर्ती श्रुति वचन के साथ विरोध होने से हरि महाविष्णु परक नहीं है । तथा बहुतों का मुख्य नामत्व जनित दोष होने लगेगा । और जो यह भी कहा जाता है कि बहुत अप्रधान नामों में प्रधानता का सूचक यह पद है यह भी कथन उचित नहीं समस्त विष्णु देवता सम्बन्धित मन्त्रों में श्रीराम मन्त्र का अधिक फल प्रदायकत्व कहा गया है । लौकिक एवं वैदिक समस्त शब्दों में श्रीरामचन्द्रजी के नाम का हजार गुणा अधिकता कहे जाने से तथा

गुणाधिककथनात् सहस्रनामतुल्यत्वात् तत्फलदत्वात् सर्वाभीष्टप्रदायकत्वाच्च श्रीरामपरमेव। किञ्च मुख्यगौणभेदेन श्रीरामपदस्य द्विविधा निरुक्तिरवलोक्यते। प्रथमनिर्वचनेन तन्नामप्रकाशनमन्तरैव दशरथविषये आविर्भावो बोध्यते। शिष्टैरपि तदुपबृंहणे विशेषनामप्रकाशनं विनैव तस्याविर्भावो ज्ञाप्यते। तद्यथा-

सूच्चस्थे ग्रहपञ्चके सुरगुरौ सेन्दौ नवम्यां तिथौ,
लग्ने कर्कटके पुनर्वसुयुते मेषं गते पूषणि।
निर्दग्धं निखिलाः पलाशसमिधो मेध्यादयोध्यारणे,
आविर्भूतमभूदपूर्वविभवं यत् किञ्चिदेकं महः ॥१॥

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे इति च।

सासितूणधनुर्वणपाणिं नक्तञ्चरान्तकम्।
स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम्॥

चैत्रे मासि नवम्यां तु शुक्लपक्षे रघूद्वहः।
प्रादुरासीत् परंब्रह्म परंब्रह्मैव केवलम्॥

विष्णु सहस्रनाम के तुल्य एक श्रीराम नाम के होने के कारण, तथा सहस्रनाम पाठ जनित पुण्य फल प्रदान क्षमता श्रीराम नाम में ही होने के कारण और समस्त भक्तजनों को अभिमत फल प्रदानकारी होने के कारण श्रीराम परक ही है। और भी वेदादि शास्त्रों में श्रीराम पद का मुख्य गौण भेद से दो प्रकार का निर्वचन देखा जाता है। प्रथम निर्वचन के द्वारा श्रीराम नाम के प्रकाशन के विना ही महाराजजी श्रीदशरथजी के घर में आविर्भाव का बोध कराया जाता है। शिष्ट पुरुषों के द्वारा भी श्रीराम नाम के विस्तारिकरण में विशेष नाम का प्रकाश किये विना ही श्रीरामचन्द्रजी का आविर्भाव ज्ञात कराया जाता है। वह जैसे कि-चन्द्रमा तथा बृहस्पति सहित पांच शुभ ग्रहों के उच्च राशि स्थान पर थे शुक्लपक्ष की नवमी तिथि में कर्क नामक लग्न में पुनर्वसु नक्षत्र में भगवान् सूर्य के मेष राशि में स्थित होने पर अयोध्या नामक स्थान पर यागीय समस्त पलाश आदि काष्ठ पूर्ण प्रज्वलित हुआ, जिनका पूर्व से ही अनन्त ऐश्वर्य प्रकट हो चुका था ऐसा कोई अनिर्वचनीय विलक्षण तेजःपुञ्ज अवतार ग्रहण किया। और- वेदों के द्वारा जानने योग्य परम पुरुष दशरथ तनय श्रीरामचन्द्रजी के जन्म लेने पर तलवार तूणीर सहित धनुष वाण है हाथ में जिनके ऐसे निशाचरों के विनाशकारी अपने लीला विलास से समस्त चराचर जगत् का संरक्षण करने के लिये अजन्मा परम

इत्यादि वचनेषु एकं महः, परं पुंसः, अजविश्वादिभिः सामान्यशब्दैः, महाविष्णुहरिपदेषु चिन्मयपदं विशेषणम् तेन महाविष्णुपदं चिन्मयस्य सर्वव्यापकत्वेन अशेषचिदचिन्नियामकत्वेन सर्वस्वामित्वं गमयति । अर्थात् चिद चितोस्तच्छेषत्वं सूचयित्वा, स्वगतमहदिति विशेषणेन विष्ण्वादिभ्यो व्यावर्त्य तस्य मूलकारणत्वं गमयति । आकाशादीनां तु जडत्वात् चिन्मयत्वेनैव व्यावर्तनं भवति । महाविष्णुपदस्य तु तद्व्यापकत्वगुणद्वारा परमेश्वरत्वं, स्वमहिम्ना सर्वान् लोकान् व्याप्नोति व्यापयतीत्यादिना नृसिंहतापनीये उक्तम्, तद् विश्वव्यापकत्वं 'विश्वव्यापीराघवो यस्तदानीमित्यादिना श्रीराघवस्यैवात्र श्रूयते । अविद्यापर्यन्तं स्वभक्तदुःख हरत्वात् हरिः । महाविष्णुपदेन च सर्वव्यापकत्वेन सर्वनियन्तृतया सर्वस्वामित्वम् । अत आश्रयार्हता । किन्तु चिन्मयपदेन प्राकृतशरीरराहित्यं 'रघुकुलेदशरथे चिन्मयेजाते, इतिश्रुतेः । स्वनित्यविग्रहेणैवात्राविर्भावस्तेनाव-तारिणोऽवतारः इतिज्ञाप्यते ।

व्यापक अवतीर्ण श्रीरामजी को। रघुकुल नायक श्रीरामचन्द्रजी चैत्र मास के शुक्लपक्ष नवमी तिथि को प्रादुर्भूत हुए, जो श्रीरामजी परब्रह्म केवल साक्षात् परब्रह्म ही थे। इत्यादि वचनों में 'एकं महः परं पुंसः अजं विभुम्' इत्यादि पदों एवं इन सामान्य शब्दों के द्वारा, तथा महाविष्णु हरि पद में तो चिन्मय पद विशेषण होने के कारण, इसलिये महाविष्णु पद तो चिन्मय का सर्वव्यापकत्व के स्वरूप में समस्त चेतनाचेतन का नियामकत्व के द्वारा सर्व स्वामित्व रूप अर्थ का बोध कराता है। अर्थात् चेतन अचेतन को श्रीरामचन्द्रजी का शेषत्व रूप अर्थ को सूचित कर, अपने में स्थित महत् इस विशेषण के द्वारा विष्णु आदि अर्थों से पृथक् करण करके श्रीरामचन्द्रजी का मूलकारणत्व रूप अर्थ को बोध कराता है। आकाश आदि का तो जडता के कारण चिन्मयत्व पद के द्वारा ही व्यावर्तन हो जाता है। और महाविष्णु पद का तो व्यापकता गुण के द्वारा परमेश्वरत्व सिद्ध है, एतावता गौण परमेश्वरत्व है। 'अपनी महिमाओं के द्वारा समस्त ब्रह्माण्डवर्ती लोकों को व्याप्त करता या व्याप्त कराता है' इत्यादि नृसिंह तापनीय उपनिषद् के कथन द्वारा ज्ञात होता है। और वह विश्व व्यापकत्व, जो उस समय पर विश्वव्यापी रघुवंश में प्रादुर्भूत श्रीरामचन्द्रजी, इत्यादि कथन के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी का ही यहां पर श्रवण होता है। 'अविद्या पर्यन्त अपने समस्त भक्तों के दुःख हरण कारी हो' के कारण हरि कहे जाते हैं। और महाविष्णु पद में सर्व

ननु महाविष्णुरेव राघवत्वेनावतीर्ण इति चेन्न । 'अवताराह्यसंख्येया हरेः सत्वनिर्धेद्विजाः, इत्युक्तेः हरिरेवावतीर्णः, द्वौमिलित्वा श्रीरामरूपत्वं गतौ इत्यपि न चिन्मयेऽस्मिन्निति कारणपरकैकवचनविरोधात् । पर्यायवाचिनां तेषामेक एव वाच्य इत्यपि नोचितम् । पदान्तरोपादानं व्यर्थं स्यात् । उपनिषदः पूर्वापरवचनविवेचनेनापि चिन्मयस्येत्यनूद्य परंब्रह्माभिधीयते इति परब्रह्मवाचक श्रीरामपदस्योपादानात् । किं च श्रीरामस्य 'रामाख्या भुवि स्यात्' इति एकस्यैव चिन्मयतत्त्वस्यावतारीदशायामवतारदशायाञ्च श्रीरामनामत्वबोधकं श्रुति वचनम् श्रीरामनिष्ठपरंब्रह्मत्वबोधकम् । महाविष्णवादीनां तु व्यापकत्वादिगुण योगात् गुणनामत्वम्, एकनिष्ठस्य मूलकारणत्वस्यौचित्यात् । सच्चिदानन्दार्थकस्य श्रीरामस्य परब्रह्माभिधायकत्वश्रुतेः, ततश्च यत् परंब्रह्म रामपदेनाधीयते तस्यैव रामाख्यस्य चिन्मयस्याद्वितीयस्य ब्रह्मणः उपासकानां कार्यार्थमुपकल्पनेति द्वयोश्रुत्योरन्वयः । तदेव 'विश्वरूपस्य ते राम विश्वे शब्दा हि वाचकाः । तथाऽपि रामनामेदं विश्वेषां वीजमक्षयमित्यादिभिः स्फुटीभवति । यदि तु महाविष्णु व्यापकत्व सर्व नियामकत्व आदि गुण होने के कारण सर्व स्वामित्व है । इन्हीं कारणों से आश्रयार्हता है । लेकिन चिन्मय इस पद के द्वारा प्रकृति जनित शरीर धारण शून्यता बोध होता है । 'रघुकुल में महाराज दशरथ के राज्य में चिन्मय दिव्य ज्योतिः स्वरूप तत्व के अवतार धारण करने पर' इस श्रुति वचन के आधार पर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का अपने नित्य परम जयोतिर्मय शरीर के द्वारा ही अयोध्या में अवतार हुआ इस कथन से अवतारी श्रीरामचन्द्रजी का ही अवतार हुआ यह अभिप्राय बोध कराया जाता है।

यदि यह कहें कि महाविष्णु ही दशरथ तनय के स्वरूप में अवतीर्ण हुए, तो यह नहीं कह सकते हैं । 'हे ब्राह्मणों सत्व गुण के आगार समस्त स्वभक्त दुःख निवारक भगवान् के संख्यातीत अवतार कहे गये हैं' इस कथन के कारण महाविष्णु अवतीर्ण हुए यह नहीं कह सकते । हरि ही श्रीराम रूप में अवतार ग्रहण किये, अथवा हरि तथा महाविष्णु दोनों मिलकर अवतार धारण किये यह भी नहीं कह सकते हैं। 'चिन्मयेऽस्मिन्' इस कारण बोधन परक एक वचन के साथ विरोध के कारण ऐसा नहीं कह सकते हैं । अथवा पर्यायार्थ वाचक उन सभी का एक एक ही वाच्यार्थ है यह भी नहीं कह सकते हैं । यदि ऐसा होता तो अन्य पदों का ग्रहण करना निष्फल हो जायगा । उपनिषद् के पूर्वापर वचनों का विवेचन करने पर भी 'चिन्मयस्य' इस

हरिशब्दादिषु चिन्मयपरतत्वमुख्यवाचकत्वमभिमतं स्यात् तदा 'वेवेष्टि सकलं यस्माच्चिदचिदात्मकं जगत् । तस्माद् विष्णुपदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते' इत्युक्तं स्यात् । नतु-

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्देचिदात्मनि ।
इति रामपदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते इति ॥

नचावतारपरश्रीरामशब्दनिर्वचनार्थमिति चेन्न । रघुकुलेऽखिलंरातीत्यारभ्य रामस्य रामाख्या भुवि स्यादित्यन्तानि वाक्यानि श्रूयन्ते । तस्माद् राघव गौणमुख्यनामबोधकं वचनं उत्तरवाक्यबोधितस्य श्रीरामशब्दस्य चिन्मयपरतत्वमुख्यवाचकत्वम् प्रतिपाद्य पूर्ववाक्यबोधितस्य श्रीरामशब्दस्य तद् गुण कथन के द्वारा उद्देश्य करके परब्रह्म कहे जाते हैं इस पर ब्रह्म वाचक पद का ग्रहण करने के कारण महाविष्णु हरि परकत्व नहीं होता है। और भी श्रीरामजी का 'रामाख्या भुवि स्यात्' इससे एक का ही चिन्मय तत्व का अवतारी अवस्था में तथा अवतार अवस्था में श्रीराम नामत्व का बोध कराने वाले श्रुति वचन श्रीराम में स्थित रहनेवाला परब्रह्मत्व का बोध कराने वाला है। महाविष्णु आदि का तो व्यापकत्व आदि गुणों का सम्बन्ध होने के कारण अप्रधान (गौण) नामत्व है। एक में ही रहनेवाला मूलकारणत्व का औचित्य होने के कारण। सत् चित् आनन्द अर्थ है जिसका ऐसे श्रीराम का परब्रह्मत्व प्रतिपादक श्रुति वचन होने से श्रीरामजी का ही मूलकारणत्व है। तथा इसके पश्चात् जो परब्रह्म श्रीराम पद के द्वारा कहे जाते हैं उन्हीं परब्रह्म का ही जो श्रीराम नाम से प्रसिद्ध है उनका चिन्मय अद्वितीय ब्रह्म का उपासकों के अभिमत प्रयोजन की सफलता के लिये उपकल्पना की गयी है यह दोनों श्रुति वचनों का परस्पर सम्बन्ध होता है। वही हे श्रीरामचन्द्रजी समस्त विश्व ही रूप है जिसका ऐसे आपका संसार के सभी शब्दकलाप वाचक हैं। फिर भी यह श्रीरामचन्द्र नाम सभी का अविनाशी वीज है, इत्यादि वचनों के द्वारा अभिव्यक्त होता है। यदि तो महाविष्णु हरि आदि शब्दों में चिन्मय परतत्व का मुख्य वाचकत्व श्रुति वचनों को अभिमत होता तो जिससे समस्त जगत् बँधता है अर्थात् जिससे जडचेतनात्मक सकल जगत् बँधता है, इसलिये वह विष्णु इस पद के द्वारा परब्रह्म कहा जाता है ऐसा कहा जाता न कि 'रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते' ऐसा कहते। यह भी नहीं कह सकते कि अवतार परक 'राम' शब्द का निर्वचन करने

क्रियादिभिः तद् गौणनामसूचनवत् नामान्तराणामपि गौणत्वं सूचयित्वा महाविष्णुहरिपदयोरपि व्यापकत्वादिगुणबोधकत्वेन गुणनामत्वं प्रकाशयतीति बुध्यते ।

ननु रघुकुलेऽखिलं रातीत्यादिश्रुतिभिः तद्गुणक्रियादिभिः श्रीरामशब्दस्य दाशरथिपरत्वं ज्ञापनवत् 'परंब्रह्माभिधीयते' इतिवाक्यस्यापि दाशरथिपरत्व ज्ञापनेनापि चिन्मयब्रह्मपरत्वं प्रकाशयति नत्ववतारित्वादिकमिति यथानारायण कृष्णादिशब्दा महाविष्णुहरिशब्दयोः ब्रह्मपरत्वं वारयन्ति तथैवेति चेन्न अत्र

के लिये यह कहा गया है । 'रघुकुल में रहकर समस्त वस्तु प्रदान करते हैं' यहां से प्रारम्भ करके 'राम की रामनाम से प्रसिद्धि पृथिवि में हो' इत्यादि पर्यन्त के वाक्य सुने जाते हैं । इसलिये 'राघव' यह अप्रधान प्रधान नाम को बोध कराने वाला वचन उत्तर वाक्य के द्वारा बोध कराया गया 'राम' शब्द का चिन्मय इस शब्द के द्वारा कथन परतत्व रूप अर्थ का मुख्य वाचकत्व है । इस विषय वस्तु का निरूपण करके पूर्ववर्ती वाक्य के द्वारा ज्ञात कराया गया 'राम' शब्द का 'राम' में होने वाले गुण और क्रिया आदि के द्वारा जिसप्रकार श्रीरामचन्द्रजी के अप्रधान नाम का कथन किया जाता है उसी प्रकार अन्य हरि कृष्ण नृसिंह आदि नामों का भी अप्रधानत्व है इस तात्पर्य को सूचित करके महाविष्णु और हरि पदों का भी व्यापकत्व नियामकत्व स्वभक्त सर्वदुःख हारित्व आदि गुणों के बोधक के स्वरूप द्वारा गुण नामत्व को प्रकाशित करता है यह अभिप्राय समझ में आता है अर्थात् श्रुति का यही तात्पर्य है ।

यदि यह प्रश्न करें कि 'रघुकुल में समस्त वस्तुओं को परिपूर्ण करते हैं ।' इत्यादि श्रुति वचनों के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी के गुण क्रिया आदि के माध्यम से 'राम' शब्द के दशरथ तनय परत्व जिस तरह बोध कराया जाता है उसी तरह परब्रह्म अर्थ कहा जाता है इस परब्रह्म बोधक वाक्य का भी दशरथ तनयत्व रूप अर्थ परकत्व बोधन कराने के द्वारा भी चिन्मय ब्रह्म परत्व स्वरूप अर्थ का प्रकाशन करता है उसी तरह ऐसा यदि कहें तो ऐसा नहीं कह सकते हैं क्योंकि जिस तरह नारायण कृष्ण आदि शब्द महाविष्णु हरि इन शब्दों का ब्रह्मत्व परकत्व का निषेध करता है, उसीप्रकार यहां पर भी ब्रह्मत्व परत्व का बाध नहीं करता है यह कहें तो नहीं कह सकते । क्योंकि यहां पर हरि महाविष्णु आदि शब्दों का मुझ से ब्रह्मत्व परत्व का खण्डन नहीं किया जा रहा है, लेकिन 'सत्य ज्ञान एवं अनन्त स्वरूप वाला ब्रह्म तत्त्व

महाविष्णवादिशब्दानां ब्रह्मपरत्वखण्डनं न विधीयते, किन्तु सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेति निरूप्यमाणं सच्चिदादिसमस्तवाचकत्वाश्रवणेन तेषां साक्षान्न ब्रह्मतादात्म्ये मुख्यवाचकत्वमिति तन्निवारणं विधीयके ॥१॥

नारायणादीनां व्यापकत्वादिगुणद्वारा ब्रह्मपरत्वं तु न वार्यते । तद्द्वारा तत् तत् परत्वस्येष्टापत्तेः । 'रमन्ते योगिनः' जीवत्वेनेदमोंयस्येत्याद्याः श्रुतयः सर्ववाचकत्वेन ब्रह्मतादात्म्योपगतेन सर्वशब्दकारणप्रणवकारणत्वेन च श्रीराम शब्दस्य तन्मुख्यवाचकत्वम् । अस्मात् गुणकर्मार्थवाचकत्वेन तद् व्यापकत्वादि
है, इस श्रुति वचन के द्वारा निरूपित किया जा रहा, सत् चित् आदि समस्त तत्वों के वाचकत्व इन शब्दों में नहीं सुने जाने के कारण उन शब्दों का साक्षात् ब्रह्म के साथ तादात्म्य अर्थ में वाचकता नहीं है। इस विषय वस्तु का निवारण मुझसे प्रकृत प्राकरणिक श्रुति द्वारा प्रतिपादन किया जाता है ॥१॥

श्रीनारायण हरि आदि का व्यापकत्व आदि गुणों से सम्बन्ध होने के कारण ब्रह्मपर का तो खण्डन नहीं कर रहे हैं। क्योंकि व्यापकत्वादि गुण सम्बन्ध द्वारा यदि ब्रह्म परकत्व है, तो यह आपत्ति अभीष्ट ही है। 'रमन्ते योगिनो यस्मिन्' 'जीवत्वेन इदमों यस्य' इत्यादि श्रुतियां सर्व वाचकता होने से और ब्रह्म के साथ तादात्म्य रूपता को प्राप्त होने से और सभी के कारण प्रणव का कारण होने के कारण श्रीराम शब्द का ब्रह्म के साथ मुख्यत्व वाचकत्व अक्षुण्ण है। श्रीरामजी का मुख्यरूप से ब्रह्म वाचकत्व के द्वारा उनमें होनेवाले व्यापकत्व आदि सम्बन्ध होने से महाविष्णु हरि आदि पदों में अवतारित्व का खण्डन करके 'सर्ववाच्यस्य वाचकः' इत्यादि श्रुतियों के आधार पर श्रीराम शब्द का रघुकुल में जन्म धारण करना चिन्मयत्व आदि गुण कर्मार्थकत्व आदि धर्म सूचन के द्वारा तथा श्रीराम शब्दार्थ वाच्यत्व होने के कारण अवतारत्व रूप अर्थ को प्रकाशित करते हैं। लेकिन उसके उत्तरवर्ती वाक्य के द्वारा अनादिकाल से स्वभाव सिद्ध सच्चिदानन्दत्व स्वरूपवाचक श्रीराम शब्द का ही अवतारित्व सिद्ध होता है यह कह कर अन्य नारायणादि शब्दों के द्वारा वाच्य का अवतारित्व निवारण करते हैं। वास्तविक में तो 'चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ' इस श्रुति वचन में 'महाविष्णौ चिन्मये हरौ' इत्यादि पदों के द्वारा दशरथ पुत्र श्रीरामचन्द्रजी में केवल मनुष्य का निवारण करके परतत्व का अवतारत्व स्वरूप अर्थ को प्रकाशित करता है। 'रामाख्या भुवि स्यात्' इस कथन के द्वारा उस दशरथ तनय श्रीरामचन्द्रजी

गुणयोगेन महाविष्णुहरिपदादिष्ववतारित्वं निरस्य, 'सर्ववाच्यस्य वाचकः' इतिश्रुतेः श्रीरामशब्दस्यावतारित्वमुपपादितम् । श्रीरामशब्दस्य रघुकुलजातत्व चिन्मयत्वादिगुणकर्मार्थकत्वादिसूचनेन तद् वाच्यत्वेन दाशरथेरवतारित्वं सूचयन्ति, तदुत्तरवाक्येन अनादिसिद्धसच्चिदानन्दस्वरूपवाचकस्य श्रीराम-शब्दवाच्यस्यैवावतारित्वं कथयित्वा शब्दान्तरवाच्यस्यावतारित्वं निवारयति । वस्तुतस्तु 'चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ' इतिश्रुतिः 'महाविष्णौ हरौ चिन्मये' इति पदैः दाशरथेः केवलमनुष्यत्वं वारयित्वा परतत्त्वावतारत्वं गमयति । 'रामाख्या भुवि स्या' दितिकथनेन तस्यैव दाशरथेः परस्वरूपत्वं सर्वावतारित्वं सर्वनिदानत्वादिकं ज्ञापयति ।

में सर्वोत्कृष्ट स्वरूपत्व एवं सर्वावतारित्व रूप और सर्व कारण कारणत्व आदि धर्मों का प्रकाश करता है ।

और इसीप्रकार अन्य उपनिषद् गण श्रीनारायण शिव आदि का संसार के उत्पत्ति स्थिति आदि की कारणता प्रतिपादन करते हैं । लेकिन श्रीनारायण शिव आदि का तो अवतारित्व एवं परत्व आदि का प्रतिपादन नहीं करते हैं । लेकिन श्रीरामतापनीय उपनिषद् प्रतिपादन करता है कि 'रमन्ते योगिनोऽनन्ते' स्वयं प्रकट होनेवाला दिव्य तेज पुञ्ज स्वरूप अगणित रूपधारी अपने ही दिव्य ज्योतिर्मय प्रकाश से प्रकाशमान होते हैं । जीव स्वरूपता के द्वारा ओम् जिनका रकार अक्षरादि मूर्तियां हों, सर्ववाच्य का वाचक और ओम् इति च 'ब्रह्मात्मका सच्चिदानन्दाख्या इत्युपासितव्यम्' इत्यादि मन्त्रों के द्वारा एक मात्र ये ही उपासना करने योग्य हैं यह तात्विक अभिप्राय समझना चाहिये । उपर्युक्त इन कारण प्रतिपादक वचनों के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी का स्वतः सिद्धत्व स्वयं प्रकाशमानत्व प्रणव ॐकार की कारणता सत् चित् एवं आनन्द स्वरूप ब्रह्मात्मकत्व आदि को प्रतिपादित कर श्रीरामचन्द्रजी को एक मात्र उपासनीय जानने योग्य आदि विशेषताओं का निरूपण कर के 'सर्ववाच्यस्य वाचकः' यह कहकर, पुनः इसप्रकार के श्रीनारायण शिवादि में भी सर्वकारण कारणत्व आदि की भावना न जाय इसका निवारण करने के लिये चरममन्त्रों के द्वारा श्रीरामजी में ही सर्वावतारित्व है इस अभिप्राय का प्रकाशन किया गया 'चिन्मयेऽस्मिन्' इत्यादि श्रुति वचनों के द्वारा दशरथ तनय श्रीरामचन्द्रजी का ब्रह्मपर स्वरूप अत्यन्त सुस्पष्ट किया गया है ।

यदि इस विषय में यह प्रश्न करें कि-विवेचनीय उपनिषद् इस श्रीरामतापनीय

तथा चोपनिषदन्तराणि नारायणशिवादीनां जगदुत्पत्यादिहेतुत्वं निरूपयन्ति, नतु सर्वावतारित्वादिकम् तत्तु 'सर्वेषामवताराणामवतारीरघूत्तमः' परान्नारायणाच्चैव कृष्णात्परतरादपि । यो वै परतमः श्रीमान् रामोदाशरथि स्वराट्'' इत्याद्यागमोक्त्या परत्वावतारित्वे श्रीरामस्यैवेति तत्त्वम् । श्रीरामतापनीयोपनिषन्निरूपयति-'रमन्ते योगिनोऽनन्ते' 'स्वभूज्योतिर्मयोऽनन्त रूपीस्वेनैव भासते जीवत्वेनेदमोंयस्य' 'रेफारूढामूर्तयः स्युः' 'सर्ववाच्यस्य वाचक' इत्यादि च ब्रह्मात्मकाः सच्चिदानन्दाख्या इत्युपासितव्यम्, एतदेवो पास्यमिति ज्ञेयमिति चेत्यादिकारणवचनैः श्रीरामचन्द्रस्य स्वतः सिद्धत्वं स्वप्रकाशत्वं प्रणवकारणत्वं सच्चिदानन्दब्रह्मत्वादिकञ्च प्रतिपाद्य तदेकोपाश्य ज्ञेयत्वादिनिरूपणं विधाय सर्ववाच्यस्य वाचक इत्युक्त्वा पुनस्तद्विध सन्देहनिवृत्तये चरममन्त्रैः सर्वावतारित्वं प्रकाशितम् । चिन्मयेऽस्मिन्नित्यादिना दशरथात्मजस्य सर्वावतारिपरब्रह्मत्वं स्फुटीकृतम् ।

में ही 'चिन्मयेऽस्मिन्' इत्यादि मन्त्रों के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी के अवतारित्व स्वरूप का उपक्रम करने से तथा 'ब्रह्मणोरूपकल्पना' इस मन्त्र के द्वारा इस अभिप्राय का स्पष्टीकरण करने से वही सत्य है वही परब्रह्म है इस मन्त्र के द्वारा उक्त अभिप्राय का पौनः पुन्येन कथन द्वारा 'विश्वाधारं...ब्रह्मा तुष्टाव' समस्त ब्रह्माण्डों के आधार श्रीरामचन्द्रजी की ब्रह्माजी स्तुति किये इस उपसंहार के द्वारा यह प्रतीत होता है कि चरममन्त्रों की श्रीरामचन्द्रजी की प्रशंसा परकता है। इसलिये महाविष्णु अथवा श्रीहरि का श्रीरामचन्द्रजी का अवतारित्व है ऐसा अर्थ समझ में आता है। 'जाते दशरथे हरौ' इत्यादि उपक्रम से 'रघुकुलेऽखिलं राति' इसके द्वारा भूयोभूयः कथन के द्वारा कल्पित शरीर की सेना आदि की कल्पना की गयी है। तथा शङ्ख चक्र गदा आदि का अन्तर्धान होने आदि के वर्णन करने के कारण श्रीरामचन्द्रजी अवतारित्व हैं यह आशय समझ में आता है। यदि इसप्रकार कहते हैं तो ऐसा नहीं कह सकते हैं। इसी श्रीरामतापनीय उपनिषद् का ही 'रामाख्या भुवि' 'परंब्रह्माभिधीयते' इत्यादि इन दोनों श्रुतिवचनों के द्वारा महाविष्णु और हरि का अवतारित्व दाशरथि श्रीरामचन्द्रजी की है इस आशय को अच्छी तरह समझा करके सत् चित् आनन्द स्वरूप अर्थ है जिसका ऐसे चिन्मय श्रीरामचन्द्रजी का अवतारित्व प्रतिपादन किया जाता है। और यदि श्रुति वचन का श्रीनारायण हरि आदि में अवतारित्व निरूपण अभिमत होता तब 'हरि का अथवा

नन्वत्रैव श्रीरामतापनीये चिन्मये इत्यादिना श्रीरामस्यावतारित्वोपक्रमेण ब्रह्मणोरूकल्पनेति स्फुटीकरणात् तत् सत्यं तत् परंब्रह्मेत्यभ्यासात् विश्वाधारं ब्रह्मातुष्टावेत्युपसंहाराच्च चरममन्त्राणां तत् प्रशंसा परत्वं ज्ञायते । तेन महाविष्णोर्हरेर्वा श्रीराघवावतारित्वं बुध्यते 'जाते दशरथे' इत्युपक्रमात् 'रघुकुलेऽखिलं रातीत्यभ्यासात्' कल्पितस्य शरीरस्य सेनादिकल्पनया, शङ्खचक्रगदाद्यन्तर्धानवर्णनाच्चावतारत्वं बुध्यते इति चेन्न । अस्या एवोपनिषदः 'रामाख्या भुवि' 'परंब्रह्माभिधीयते' इतिश्रुतिभ्यां महाविष्णोर्हरेश्च दाशरथेर वतारित्वं बोधयित्वा सच्चिदानन्दार्थकस्य चिन्मयस्य श्रीरामस्यावतारित्वं निरूप्यते । यदि च श्रुतेः हर्यादीनामवतारित्वमभिमतं स्यात्तदा, हरेर्विष्णोर्वा रामाख्या भुवि स्यात्, 'इति विष्णुपदेनासौ' 'इति हरिपदेनासौ' वा परंब्रह्माभिधीयते इति च वदेत् । तच्च नोक्तमिति श्रीरामाख्यस्य परब्रह्मणो दाशरथ्यवतारित्वम् । तथैवान्येषामपि श्रुतीनां समन्वयोविधेयः ।

ननु श्रुतेरुपबृंहणात्मके श्रीमद्वाल्मीकीयेऽपि-

तमब्रुवन् सुराः सर्वे समभिष्टूय सन्नताः ।
त्वां नियोत्स्यामहे विष्णो लोकानां हितकाम्यया ॥

विष्णु का रामाख्या भुवि स्यात्' और भी-'इति विष्णुपदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते' ऐसा कहती। ऐसा श्रुति नहीं कहती है। इन कारणों से जिनका श्रीराम नाम है ऐसे परब्रह्म स्वरूप दाशरथी का अवतारित्व है यह सिद्धान्त निर्विवाद प्रतीत होता है और इसीतरह अन्यान्य श्रुति वचनों का भी परस्पर समन्वय कर लेना चाहिये।

प्रश्न करते हैं कि वेदका तात्पर्य विस्तारीकरण स्वरूप विशिष्ट ग्रन्थ श्रीमद् वाल्मीकीय श्रीमद्रामायण में प्रतिपादन किया गया है कि-वे महान् तेजःपुञ्ज सम्पन्न समस्त देवता भगवान् विष्णु की सम्यक् प्रकार से पूर्ण विनम्रता एवं सावधानी के साथ स्तुति करके निवेदन किये कि-हे विष्णु आपको समस्त चराचर जगत् एवं अन्य लोकों के कल्याण की अभिलाषा से हम नियोजित करेंगे। हे विभो आप अयोध्या नगरी के राजाधिराज धर्मतत्व वेत्ता याचकों की इच्छा से अधिक दान देने के कारण वदान्य महर्षियो के समान महान् तेजस्वी राजा दशरथजी के श्री ह्री एवं कीर्ति के सदृश गुणगण सम्पन्न तीन महरानियों में हे विष्णु आप स्वयं को चार भागों में विभाजित करके चार प्रकार पुत्रत्व को प्राप्त करें। अर्थात् स्वयं को चार भाग में विभक्त

राज्ञो दशरथस्य त्वमयोध्याधिपतेर्विभो ।
धर्मज्ञस्य वदान्यस्य महर्षिसमतेजसः ॥
तस्य भार्यासु तिसृषु श्रीर्ह्रीः कीर्त्युपमासु च ।
विष्णो पुत्रत्वमागच्छ कृत्वात्मानं चतुर्विधम् ॥
तत्र त्वं मानुषो भूत्वा प्रबृद्धं लोककण्टकम् ।
अवध्यं दैवतैर्विष्णो समरे जहि रावणम् ॥
एवं दत्वावरं देवो देवानां विष्णुरात्मवान् ।
मानुषे चिन्तयामास जन्मभूमिमथात्मनः ॥

करके राम लक्ष्मण भरत एवं शत्रुघ्न इन चार रूपों में राजा दशरथ के तीन रानियों में पुत्रत्व को प्राप्त करें। और महाराज दशरथ के घर में उत्कर्ष प्राप्त लोक को कांटे के समान कष्टदायक, देवताओं के द्वारा नहीं मारने के योग्य रावण नामक राक्षस को हे विष्णु आप संग्राम में मारें, इसप्रकार भगवान् विष्णु जो अपने स्वरूप गुण धर्मादि के तत्वज्ञ थे वे देवताओं को अभिमत वर प्रदान कर इसके पश्चात् मनुष्यलोक में अपनी जन्मभूमि के विषय में चिन्तन किये। इसप्रकार की भूमिका द्वारा उपक्रम करके सनातन भगवान् विष्णु यज्ञ में शत्रुओं के स्वाभिमान का खण्डन करनेवाले हे विष्णु आप आइये आप का मङ्गल हो सौभाग्यवश आप प्राप्त हुए हैं। इसके पश्चात् महान् तेजोराशि परिपूर्ण भगवान् विष्णु लोक पितामह ब्रह्माजी को कहे कि-इत्यादि वचनों के द्वारा विष्णु शब्द का पौनः पुन्येन प्रयोग के द्वारा तत्पश्चात् जिसप्रकार पूर्वकाल में भगवान् विष्णु स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित थे, उसीप्रकार स्वर्ग लोक में पुनः प्रतिष्ठित हुए। इत्यादि कथन से विष्णु शब्द के द्वारा उपसंहार करने से भी श्रीरामचन्द्रजी का भगवान् विष्णु का अवतारत्व प्रतीत होता है। इसलिये विष्ण्वतारत्व निरूपण कामना से पुनः, आप अपने सनातन विष्णुत्व के भाव से लोक शत्रुओं के लिये दुर्धर्ष है। प्राणी मात्र की रक्षा विधान करेंगे इसलिये पुनः विष्णुत्व को प्राप्त किये। इत्यादि वचनों का श्रीरामजी के कारण भूत विष्णु के साथ अभेद सम्बन्ध प्रतिपादन करने की भावना से प्रशंसा परक वचन होने के कारण श्रीरामजी में विष्णु का अवतारत्व सिद्ध होता है। विष्णु का ही अवतार श्रीरामजी के होने के कारण जनक नन्दिनी श्रीसीताजी का आप श्री के श्रीत्व हो, आपकीर्ति में रहनेवाला धर्म कीर्तित्व हो, आप पृथिवी में

इत्युपक्रम्य-यज्ञे विष्णुः सनातनः, आगच्छ विष्णो भद्रन्ते दृष्ट्या प्राप्तो सिमानद । अथ विष्णुर्महातेजाः पितामहमुवाचह । इत्यभ्यासात्ततःप्रतिष्ठितो विष्णुः स्वर्गे लोके यथा पुरा, इत्युपसंहाराच्च श्रीरामस्य विष्ववतारत्वमवगम्यते तदनुरोधेन च 'ततस्त्वमसि दुर्धर्षः तस्माद्भावात् सनातनात् । रक्षां विधास्यन् भूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान् ॥ इत्यादीनां तत्कारणाभेदधिया स्तुतिपरत्वात् । अतएव श्रीजानक्याः श्रियः श्रीत्वं कीर्तेः कीर्तिः क्षितेः क्षमा इत्यादिना पृथिव्या जडत्वादधिकक्षमावतीत्वमुक्तम् । श्रीजानकीजगदीश्वरीत्वेन सर्वं कर्तुमकर्तु मन्यथा कर्तुं क्षमापि श्रीहनुमता प्रार्थितापि राक्षसीः न ताडितवती, तथा च श्रीरामः शिवस्य प्रभुः नतु विष्णुः, इत्यादीनां विवेचनेन पूर्वापरवाक्ययोर्न विरोध इति चेन्न । 'रमन्ते' 'चिन्मयस्येत्यादि' श्रुतिविरोधेन कल्पितस्य शरीरस्य तस्य सेनादिकल्पनेत्यादिश्रुतिविरोधेन च तस्यावतारित्वमेव । इत्थं यदि श्रुत्यभिमतं न स्यात्तदा सामान्यावतारान्तरवत्तस्य द्व्यादिसहस्रान्तभुजत्वबोधकं श्रुतिवचनं च निरर्थकं स्यात् । बलाबलविचारेश्रुतेरेवबलीयस्त्वाच्च ॥२॥

रहनेवाला धर्म पृथिवी क्षमा (सहनशीलता) हो, इत्यादि श्रीसीताजी विषयक प्रशंसा वचनों के द्वारा पृथिवी का जडत्व के कारण उससे अधिक क्षमा शालिनीत्व कहा गया है।

जनकतनया श्रीसीताजी सर्वलोक स्वामिनी है इसिलिए सब कुछ करने के लिए नहीं करने के लिए अथवा दोनों के विपरीत करने के लिए सक्षम होने पर भी तथा श्रीहनुमानजी के द्वारा प्रार्थना करने पर भी राक्षसियों को नहीं आघात पहुँचाई इससे श्रीजानकीजी का पृथिवी के अपेक्षा अधिक क्षमाशीलता बोध होता है, और इसीप्रकार श्रीरामजी श्रीशिवजी के प्रभु हैं न कि विष्णु शिवजी के प्रभु हैं इत्यादि विषय वस्तु का विवेचन के द्वारा पूर्व वाक्य एवं परवाक्यों में किसी प्रकार का विरोध नहीं है, इसलिए श्रीरामजी विष्णु का अवतार हैं ऐसा कहें तो नहीं कह सकते हैं। क्योंकि 'रमन्ते योगिनः, चिन्मयस्य' इत्यादि श्रुतिवचनों के साथ विरोध होने के कारण एवं कल्पित शरीर का उसकी सेना आदि की कल्पना इत्यादि वचनों से और भी श्रुति तथा स्मृति वचनों के विरोध के कारण श्रीरामचन्द्रजी का अवतारित्व ही है ऐसा यदि श्रुति वचन का अभिमत तात्पर्य नहीं होता तो सामान्य रूपसे अन्य अवतारों के समान श्रीरामचन्द्रजी का दो से लेकर सहस्र भुजा पर्यन्त का बोध कराने वाला श्रुति वचन निरर्थक हो जाता इसिलिए श्रीरामजी में अवतारित्व ही है अवतारत्व नहीं ॥२॥

तत् पृथग् वाक्यमवतारान्तरपरमित्यपि दाशरथिं विहायान्यत्र न युज्यते इत्यपि न वक्तव्यम्। 'स्वेनैव भासते' इति 'स्वभूः' इति विरोधात्। श्रीरामस्य विष्णवाद्यवतारत्वे स्वभवनत्वं न युज्यते। 'जीवत्वेनेदमों यस्य' श्रीरामनामनिष्ठ प्रणवकारणपरकश्रुतिविरोधाच्च नोपपद्यते। कार्यविग्रहबोधकवचनस्य कारणविग्रहपरशब्दकारणपरत्वबोधनं न संगतम्। अस्यामन्यासुचोपनिषत्सु भगवत् स्वरूपनाम्नोस्तादात्म्यबोधात् सर्वकारणप्रणवकारणश्रीरामशब्दवाच्य

वह अलग से जो वाक्य कहा है वह अन्य अवतार बोधक है। यह भी दाशरथी श्रीरामजी को छोड़कर अन्यत्र संगत नहीं होता है यह भी नहीं कहना चाहिये। 'स्वयं से ही जो देदीप्यमान होता है वह स्वभू है' इस वचन से विरोध होने के कारण। श्रीरामचन्द्रजी का विष्णु आदि का अवतारत्व स्वीकार करने पर स्वभवनत्व कथन युक्ति संगत नहीं होता है। 'जीवत्वेनेदमों यस्य' इत्यादि श्रीराम निष्ठ प्रणव कारणत्व बोध परक श्रुति वचन के साथ भी विरोध होने से, तर्कसंगत नहीं होता है। व्यावहारिक शरीर बोध करानेवाला वचन का कारण शरीर बोध परक शब्द का कारण परक होना कहना युक्ति युक्त नहीं है। इस श्रीरामतापनीयोपनिषद् एवं अन्यान्य उपनिषदों में भगवान् का स्वरूप एवं भगवान् के नाम का परस्पर तादात्म्य सम्बन्ध बोध कराये जाने के कारण समस्त ब्रह्माण्ड का कारण स्वरूप प्रणव का कारण श्रीरामचन्द्र शब्द से प्रतिपाद्य तथा सर्वशब्द वाच्यता सिद्ध होने के कारण कार्य विग्रह बोधक का कारण परत्व कथन संगत नहीं है। ॐ जो श्रीरामचन्द्रजी हैं, वे भगवान् हैं जो परब्रह्म हैं जो विष्णु हैं जो महाविष्णु हैं इत्यादि के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी में होनेवाला सर्वरूपित्व अर्थ को प्रकाशित करनेवाला उपसंहार मन्त्रों के साथ विरोध होने के कारण श्रीरामचन्द्रजी में सर्वकारणत्व होना विवाद रहित है। 'श्रीब्रह्माजी ने स्तुति किया' आदि अर्थ को प्रकाशित करनेवाली 'तुष्टाव' इत्यादि मन्त्र का वहां श्रवण होने से उपसंहार वाक्य के अपेक्षा उपक्रम वाक्य के बलवान् होने के कारण उपसंहार वाक्य का प्रशंसा अर्थ वाचक परत्व है यह कथन तो सन्देह रहित उपक्रम वाक्य के लिये ही नियामक है क्योंकि सन्देह युक्त उपक्रम वाक्यार्थ का तो वाक्य शेष के द्वारा ही निर्णय किया जा सकता है। इसतरह का भगवान् मीमांसा सूत्रकार जैमिनि का मत है। जिस तरह (आक्ताः शर्कराः उपदधात्) सनी शर्करा को उपस्थापित करता है। इस वचन का अभिप्राय निर्णय करने के लिये प्रश्न उठता है कि किस द्रव्य से

स्य सर्वशब्दवाच्यतोपपत्तेः । 'ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् यः परंब्रह्म यो विष्णुः यो महाविष्णुः ...' इतिश्रीरामनिष्ठसर्वरूपित्वप्रकाशकोपसंहारमन्त्रैर्विरोधात् सर्वकारणत्वं निर्विवादम् । तुष्टावेति तत्र श्रवणात् उपसंहारादुपक्रमस्य बलीयस्त्वेनोपसंहारवाक्यस्य प्रशंसापरत्वमिति तु असन्दिग्धोपक्रमस्यैव, सन्दिग्धोपक्रमार्थस्य तु वाक्यशेषादेव निर्णय इति भगवान् जैमिनिः । यथा सनी हुई घृत से तेल से अथवा चर्वी से इस अवस्था में सन्देह होने पर 'आयुर्वैघृतम्' घृत ही आयुष्य का कारण है इस वाक्य शेष के द्वारा निर्णय होता है कि घृत से सनी हुई शर्करा को उपस्थापित करता है। यह निर्णय जिस तरह वाक्य शेष से होता है। और जिस तरह इस अमृत की जिह्वा को ग्रहण किये, इस श्रुति वाक्य में घोड़ा और गदहा इन दोनों में से किस की जिह्वा को धारण इस तरह का सन्देह होने पर यह कहकर अश्व शब्द से अभिहित होनेवाले प्राणी की जिह्वा को पकडता है इस वाक्य शेष के द्वारा श्रुति वचन तात्पर्य का निर्णय होता है। इसी प्रकार इस सन्दर्भ में भी उपक्रम वाक्यार्थ को सन्देह युक्त होने की स्थिति में वाक्य शेष के द्वारा निर्णय किया जाना चाहिये। श्रुति वचनों के द्वारा ब्रह्म हरि विष्णु आदि शब्दों के भगवान् के समस्त विग्रहों में होनेवाले साधारण धर्मत्व दुःख निवारकत्व, महाव्यापकत्व आदि अर्थों का बोध जनकत्व होने पर भी उच्चारण श्रवण समकाल में ही शीघ्रातिशीघ्र किसी भी सामान्य शरीराकृति वाली भगवान् के आकृति की उपस्थिति नहीं होने के कारण सामान्य भगवत् तत्व का बोध होता है। और यह भी जो आपके द्वारा कहा जाता है कि ब्रह्म एवं हरि शब्दों का सामान्यत्व होने के वाबजूद विष्णु विष्णु महाविष्णु में विष्णु महाविष्णु शब्दों का पर्यायार्थ वाचकता होने के कारण स्मरण किये जाने से तत्पश्चात् इन विष्णु एवं महाविष्णु शब्दों का पशु छागन्याय के द्वारा विष्णु अर्थ में ही सम्पन्नता होती है इसलिये ये विष्णु और महाविष्णु उस श्रीरामजी के ही अवतारी पुरुष हैं इस आशय को ज्ञात कराते हैं। ऐसा यदि कहते हैं तो यह भी नहीं कह सकते हैं। क्योंकि चरम मन्त्र में विष्णु एवं महाविष्णु इन दोनों में पृथकता होने के कारण इन दोनों में एक शरीरत्व नहीं है यह ज्ञात होता है। वैदिक साहित्य व्यवहार प्रयुक्त विष्णु का संसार का पालन करनेवाला चार भुजाओं वाला विष्णु अर्थ परक है। संसार की रचना, परिपालन तथा संहार करने ब्रह्मा विष्णु एवं शंकर का एक साथ पाठ होने से चतुर्भुज विष्णु ही वैदिक देव हैं। महाव्यापक महाविष्णु शब्द

'आक्ता शर्करा उपदधाति' इत्यत्र घृतेन तैलेन वशया वा केनेति सन्देहे 'आयुर्वैघृतमिति वाक्यशेषेणाक्तत्वनिर्णयो यथा भवति । यथा च-इमामगृभ्ण रशनामृतस्येत्यत्राश्वगर्दभयोर्मध्ये कस्य रशनामगृह्णन्निति सन्देहे इत्यश्वाभिधानीमादत्ते इतिवाक्यशेषान्निश्चयो भवति । तथात्राप्युपक्रमस्य सन्दिग्धत्वे निश्चयोविधेयः, श्रुतिभिः ब्रह्महरिमहाविष्णुशब्दानां भगवत् सर्वविग्रहसाधारणधर्मत्वदुःखहरत्वमहाव्यापकत्वाद्यर्थबोधकत्वेऽपि झटिति कस्यचिद् भगवद् विग्रहस्यानुपस्थितेः । यत्त्वुच्यते ब्रह्महरिशब्दयोः सामान्यत्वेऽपि विष्णुर्विष्णुर्महा चिन्मय परतत्व में स्थित रहने वाला तत्त्व विशेष में विष्णु की कारणता है यह आशय सिद्ध होता है । और स्मृति शास्त्र व्यवहार में प्रयुक्त विष्णु शब्द का तो आकाश आदि अर्थों का प्रतिषेधक के स्वरूप द्वारा विष्णु शब्द का पर्याय वाचकत्व है । श्रीरामचन्द्रजी परक होना तो इन दोनों विष्णु एवं महाविष्णु शब्दों का तथा अन्यान्य अवतार बोधक विशेष शब्दों का श्रीरामचन्द्रजी के अनेक शरीर वाचकता के द्वारा श्रीरामजी में समावेश हो जाने से तत्तद् विग्रह वाचकत्व होता है । 'चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ' इस श्रीरामतापनीयोपनिषद् वाक्य में महत् शब्द का व्यवहार आकाश आदि अर्थ का निषेध करने के लिये नहीं किया गया है । क्योंकि आकाशादि जडपदार्थ का निषेध तो 'चिन्मय' इस विशेषण के द्वारा स्वतः हो जाता है । इसके लिये महत् पद विशेषण आवश्यक नहीं है न ही वद्ध जीवों का निषेध करने के लिये महत् शब्द का प्रयोग है क्योंकि 'जाते' इस कथन के द्वारा ही निराकरण हो जाता है तथा जीवों के चिद्रूपी होने पर भी अचित् शरीर के साथ जन्म देखे जाने के कारण भी निराकरण होता है, नहीं मुक्तात्माओं का व्यावर्तन के लिए महत् विशेषण है क्योंकि मुक्तात्माओं का श्रीरामचन्द्रजी के विग्रह से पृथक् विग्रह सुना जाता है 'सीतारामौ तन्मयौ अत्र' इत्यादि के द्वारा चिन्मय दाशरथी श्रीरामचन्द्रजी का संसार का मूलकारण के स्वरूप में शास्त्रों में सुने जाने के कारण एवं मूल जीवात्माओं का 'जगद्व्यापारवर्जम्' इस ब्रह्मसूत्र के द्वारा संसार की अथवा सृष्टि की कारणता का निषेध करने के लिए भी सिद्धान्त होने से महत् विशेषण उपयुक्त नहीं होता है । तब महाविष्णु पद में महत् विशेषण क्यों दिया गया है इसप्रकार की जिज्ञासा होने पर उत्तर कहा जाता है कि परब्रह्म का महाव्यापकत्व सूचित करने के द्वारा सर्व व्यापक भगवान् विष्णु का भी कारणत्व बोध कराने के लिए महत् शब्द का प्रयोग किया गया है । ॐ 'जो ये श्रीरामचन्द्रजी हैं

विष्णुरित्यनयोः पर्यायत्वेन स्मरणात् ततः तयोः पशुछागन्यायेन विष्णौ पर्यवसानात्तौ तस्यैवावतारित्वं बोधयतः इति चेत् तदपि न । चरममन्त्रे विष्णु महाविष्णुशब्दयोः प्रयोगेऽपि पार्थक्यात् नैकविग्रहत्वम् । श्रौतस्य विष्णोः जगत् पालकचतुर्भुजविष्णुपरत्वम्, सृष्टिस्थितिलयकर्तृणां ब्रह्मविष्णुरुद्राणां साहचर्येण पाठात् । महाव्यापको महाविष्णुशब्दः चिन्मयपरतत्वनिष्ठविष्णुकारणत्वं निष्पद्यते । स्मार्तस्य तु विष्णुशब्दस्याकाशादिप्रतिषेधकत्वेन विष्णुपर्यायत्वम्

वे समस्त ऐश्वर्य सम्पन्न भगवान् हैं जो ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर हैं' इत्यादि उपसंहार वचन में श्रीरामचन्द्रजी को विष्णुरूपित्व श्रुति के द्वारा प्रतिपादन होने से विष्णु कारणत्व का बोध होता है । प्राणियों की रक्षा करने की इच्छा करते हुये भगवान् श्रीरामचन्द्रजी विष्णुत्व स्वरूप को उपलब्ध-धारण किये ऐसा श्रीमद्रामायण में देखे एवं सुने जाने के कारण श्रीरामजी में विष्णु कारणत्व प्रतीत होता है । ॐ जो श्रीरामचन्द्रजी हैं वे समस्त ऐश्वर्य सम्पन्न भगवान् हैं जो इस ब्रह्माण्ड के अन्दर एवं बाहर सभी को व्याप्त करते हैं, वे नारायण हैं यह श्रुति कहती है 'ॐ' भगवान् वासुदेव के लिये नमस्कार है जो वासुदेव महाविष्णु हैं इस मन्त्र में श्रुति ने वासुदेव का और महाविष्णु का श्रीरामरूपत्व निरूपण किया है इसीप्रकार नारायण का भी श्रीरामरूपत्व प्रतिपादन करना श्रुति का अभिमत है ।

श्रुति के अपेक्षा स्मृति वचन का दुर्बलता के रूपमें शास्त्रों में व्यवहार देखा जाता है तो भी स्मृति का पर्याप्त प्रयोग वस्तु निर्णय प्रसङ्ग में उपलब्ध होता है अतः स्मृति वचन से भी श्रीवासुदेव महाविष्णु नारायण आदि का श्रीरामचन्द्रजी कारण हैं यह अभिव्यक्त होता है वेद वचन के अनुकूल अर्थात् वेदाविरुद्ध स्मृति शास्त्र प्रतिपादित वचन का भी 'महत्' इस विशेषण का आकाश आदि जड तत्त्व में अतिव्याप्तिदोष निवारण करने के लिए महत् शब्द की सार्थकता होती है इसप्रकार उपसंहार वाक्य में प्रयोग किया गया महाविष्णु शब्द का श्रीरामचन्द्रजी के कार्यरूपता होने के कारण महाविष्णुगत महत् शब्द महाव्यापकत्व अर्थ बोधन परक है इस तरह का समन्वय करना चाहिये । इसप्रकार चरम मन्त्रों में विद्यमान महाविष्णु शब्द सन्देह युक्त उपक्रम वाक्य से अर्थ निर्णय को वाक्य शेष की अधीनता के कारण-जिसमें योगिजन समाधि आदि अवस्था में रमण करते हैं, स्वयं आविर्भूत होनेवाले दिव्य ज्योति परिपूर्ण, भगवान् रुद्र तारक ब्रह्म का व्याख्यान किये ब्रह्मा आदि समस्त

श्रीरामपरत्वं तु तयोरन्येषां च विशेषशब्दानां तदनेकशरीरवाचकत्वेन श्रीरामे पर्यवसानात् तद्वाचकत्वं भवति । 'चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णोरित्यत्र महत्शब्दो नाकाशनिषेधार्थं चिन्मयपदेनैव तन्निषेधात् । नापि बद्धजीवनिषेधाय 'जाते' इत्यनेनैव व्यावृत्तिः, जीवानां चिद् रूपित्वेऽपि अचित् शरीरेण सहजन्मदर्शनात् । नापि मुक्तानां तेषां श्रीरामविग्रहात् पृथक् श्रवणात् । 'सीतारामौ तन्मयावत्रेत्या दिना चिन्मयस्य दाशरथेर्जगत् कारणत्वश्रवणात् । 'जगद् व्यापारवर्जमिति' ब्रह्मसूत्रेण मुक्तजीवानां जगद्धेतुत्वनिषेधात् च । तत् किमर्थमिति जिज्ञासा-
देवताओं का भी उद्धार करने दीर्घानल को...। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के ब्रह्म तारक मन्त्र को वृषभ है वाहन जिनका ऐसे शङ्कर वाराणसी नगरी में निवास करते हुए जप किये, इसतरह के अन्यान्य वचनों के द्वारा चिन्मय परम तत्व आदि अर्थों को प्रकाशित करने वाले वचनों के द्वारा उपक्रम वाक्य में सुना गया महाविष्णु शब्द का परिशेष वचनों से महाव्यापकत्व आदि धर्मों का प्रकाशन करनेवाला महत् शब्द है यह ज्ञात होता है। क्योंकि जिसप्रकार 'हरि' शब्द अपने उच्चारण के समकाल में किसी आकृति विशेष को शीघ्र प्रकाशित नहीं करता है, किन्तु अपना स्वार्थ मात्र बोध कराता है। उसी तरह 'महाविष्णु' शब्द भी अपने उच्चारण समकाल में झट से किसी भी अर्थ विशेष की आकृति को उपस्थित नहीं करता है इसलिये हरि शब्द के समान महाविष्णु शब्द का भी सामान्य ही अर्थ है यह अभिप्राय जानना चाहिये। 'रमन्ते योगिनः' इत्यादि श्रुति वचनों में श्रीराम शब्द की शब्द व्युत्पत्ति के अनुरूप सार्थक होने का श्रुति वचन होने से यह सिद्ध होता है कि श्रीरामजी की यह संज्ञा अनादि सिद्ध है उस अभिप्राय को श्रुति वचन के द्वारा प्रकाशन होता है। यही 'रमन्ते योगिनः' इस श्रुति वचन का अभिप्राय समझा जाता है यानी यही नियत अर्थ है।

इस तरह श्रीराम शब्द के साथ उच्चारण किया गया ही परम ज्योतिर्मय महान् व्यापकत्व आदि धर्म वाला दो से आरम्भ कर हजार पर्यन्त भुजाओं के समान श्रीरामजी में अशेष अवतारों का मूलकारणत्व है यह समझे जाने से पुनः पुनः कथन रूप अभ्यास भी श्रीराम शब्द के द्वारा कहा गया है यह सिद्ध हुआ। इसप्रकार उपक्रम वाक्य में सुना गया महाविष्णु शब्द सभी जगत् का आधार महाविष्णु को इत्यादि कथन के द्वारा उपसंहार से सुना गया और चरम मन्त्रों में सुना गया महाविष्णु शब्द भी श्रीरामजी का ही सूचक है यह युक्ति युक्त कथन सिद्ध होता है।

यामुच्यते । परब्रह्मणो महाव्यापकत्वसूचनद्वारा सर्वव्यापकस्य विष्णोरपि कारणत्वबोधनार्थम् । 'ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् यो ब्रह्माविष्णुरीश्वरः' इत्युपसंहारवचनेविष्णुरूपित्वश्रुतेः । 'रक्षां विधास्यन् भूतानां विष्णुत्वमुप जग्मिवान्' इतिश्रीमद्रामायणोक्तेश्च । 'ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्, यो ब्रह्माण्डस्यान्तर्बहिर्व्याप्नोति स नारायणः' इत्याहश्रुतिः । 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय यो महाविष्णुरित्यत्र वासुदेवस्य महाविष्णोश्च श्रीरामरूपत्वम् नारायणस्यापि तथा, श्रुतेरपेक्षयास्मृतेर्दुर्बलतया शास्त्रेव्यवहारेऽपि श्रुत्यनुकूलस्य स्मार्तस्य महदिति विशेषणस्याकाशादावतिव्याप्तिनिरासार्थकत्वेन सार्थक्यम् । एवमुपसंहारवाक्यगतमहाविष्णुशब्दस्य श्रीरामकार्यत्वेन महाव्यापकत्वादिपरत्वेन नेयः । इत्थं चरममन्त्रगतो महाविष्णुशब्दः सन्दिग्धोपक्रमार्थनिर्णयस्थवाक्य-शेषाधीनत्वात् 'रमन्ते योगिनः' 'स्वभू जोतिर्मयः' 'रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे तारकं दीर्घानलं' 'श्रीरामस्य मनुंकाश्यां जजाप वृषभध्वजः' एवमादिवचनैः चिन्मयपरतत्वादिप्रकाशकैरुपक्रमश्रुतमहाविष्णुशब्दस्य परिशेषात् महाव्याप कत्वादिधर्मप्रकाशकत्वम्, यतो हि हरिशब्द इव महाविष्णुशब्दस्याप्युच्चा-रणकाले झटितिकस्यापि विग्रहस्यानुपस्थितेः सामान्यत्वमेवज्ञेयम् । 'रमन्ते योगिनः' इत्यादिषु श्रीरामशब्दस्यान्वर्थकत्वश्रुतेरनादिसिद्धाया रामेति संज्ञायाः प्रकाशनं श्रुतेरभिप्रायोबुध्यते ।

इसप्रकार उपक्रम उपसंहार आदि हेतुओं के द्वारा सत् चित् और आनन्दमय अर्थ का प्रतिपादन करनेवाला अनादि काल से सिद्ध श्रीराम शब्द के द्वारा कहा गया अर्थ को ही 'राम' जिनका नाम है ऐसे परब्रह्म का ही सभी भगवद् विग्रहों का अवतारित्व है यह तात्पर्य निष्पन्न होता है। पूर्व वर्णित कारणों से अवतारी दो भुजाओं को ही धारण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी का नित्य आकृति के स्वभाव से ही श्रीमान् महाराज दशरथ के भवन में अवतार हुआ यह तात्पर्य भी सिद्ध होता है। जो किसी पुरुष विशेष के द्वारा प्रवर्तित नहीं है ऐसे वेद वचन के अपेक्षया किसी पुरुष के द्वारा प्रवर्तित वचन की दुर्बलता के कारण 'विष्णु' 'नारायण' आदि भगवद् विग्रहों के अवतारित्व साधक इतिहास पुराण आदि ग्रन्थों के वचनों का तात्पर्य श्रीरामचन्द्रजी परत्व ही हैं यह शास्त्र का आशय प्रतीत होता है। यदि इतिहास पुराण आदि मुख्यार्थता हो तो उन श्रुति वचनों का विपरीत अर्थ बोधकता के कारण प्रामाणिकता नहीं होगी।

इत्थं श्रीरामशब्दोच्चारितस्यैव चिन्मयस्य महाव्यापकत्वधर्मवतोद्वयादि-सहस्रान्तकरवदशेषावतारनिदानत्वबोधात् अभ्यासोऽपि श्रीरामशब्दाभिहितस्यैवोपपन्नः । एवमुपक्रमश्रुतो महाविष्णुः 'विश्वाधारं महाविष्णुमित्युपसंहारश्रुतश्च चरमोपश्रुतमहाविष्णुश्च श्रीरामरूपत्वोपपन्नो भवति । इत्थमुपक्रमोपसंहारादिभिः सच्चिदानन्दार्थकानादिसिद्धश्रीरामशब्दाभिहितस्यैव श्रीरामाख्यस्य परब्रह्मणः सर्वावतारित्वं निष्पन्नं भवति । तेनावतारिणो द्विभुजस्यैव श्रीरामस्य नित्याकृतिस्वभावादेव श्रीमतोदशरथस्य भवनेऽवतारः सिध्यति । अपौरुषेय-वचनापेक्षया पौरुषेयवचनस्य दुर्बलतया श्रीविष्णुनारायणाद्यवतारिपरेतिहास पुराणादिवचसां श्रीरामपरत्वमेव गम्यते । मुख्यार्थत्वे तु तेषां श्रुतीनां विपरीतार्थकत्वेनाप्रामाण्यं स्यात् । श्रुतिवचनमिव स्मृतिरपि श्रीरामस्यैवा-वतारित्वमाह-

'पूर्णः पूर्णावतारश्च श्यामो रामो रघूद्वहः ।
अंशा नृसिंह कृष्णाद्या राघवो भगवान् स्वयम् ।
श्रीरामस्य कलांशाद् वै अवताराभवन्ति हि ।
कोटिकोटिश्च कार्यार्थे सिन्धौ वीचीव वै मुने ?' इति ॥३॥

मन्त्रभागादर्थवादभागस्य पृथगङ्गीकारात् 'तुष्टाव' इति श्रुतेः चरममन्त्राणां प्रशंसामात्रत्वकथनमनुचितम् । यथा लोके गुणगणोत्कृष्टस्य पुरुषस्य गुणान्

जिसतरह श्रुति वचन श्रीरामजी के अवतारित्व को प्रतिपादन करती है उसी तरह स्मृति भी श्रीरामचन्द्रजी को ही अवतारी कहती है जैसे कि-सभी तरह से पूर्ण एवं पूर्णावतार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं जो श्याम वर्ण के हैं एवं रघुकुल नायक हैं । और उन रघुकुल नायक श्रीरामचन्द्रजी के आंशिक अवतार श्रीनृसिंह श्रीकृष्ण आदि हैं राघव श्रीरामचन्द्रजी तो साक्षात् स्वयं सर्वेश्वर सर्वावतारी भगवान् हैं । क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी के कला अंश से अनन्त अवतार हुआ करते हैं । जो करोडों करोडों की संख्या में कार्य विशेष सम्पादन हेतु अवतार होते हैं जैसे महा समुद्र के अन्दर अगणित तरंग हुआ करते हैं इत्यादि ॥३॥

सभी मनीषीगण मन्त्र भाग से अर्थ भाग को अलग स्वीकार किये हैं इसलिये 'तुष्टाव' ब्रह्माजी स्तुति किये इस श्रुति वचन के कारण चरम मन्त्रों का प्रशंसा मात्र बोधकता है यह जो कहते हैं, उनका कहना समुचित नहीं है । जिस तरह लोक व्यवहार

पुरुषान्तरस्य स्तुतिर्विधीयते, यथा स्वरूपान्तरस्थस्य परब्रह्मादिरूपित्वस्य श्रीरामचन्द्रे आरोप्यते इति तु न युज्यते । सर्वशब्दवाच्यवाचकत्वेन प्रणवहेतुत्वेन रुद्रोपदिष्टत्वेन विष्णवादिसहस्रनामतुल्यत्वेन च स्मृतस्य श्रीरामनाम्नः वाच्यान्तरापकृष्टत्वकथनमनुचितम् । यथा 'आदित्यो यूपः' इत्यत्र गुण-वादादर्थवादत्वम् । तथा 'अग्निर्हिमस्य भेषज' मित्यत्र प्रत्यक्षप्रमाणज्ञातस्य नार्थवादत्वमेवं ब्रह्मादिरूपित्वबोधकमन्त्राणां प्रमाणान्तरज्ञातानां च नानु-वादाख्यमर्थवादत्वम् । तस्मादेव 'वायव्यं श्वेतमालभेत' इतिविधेः सान्निध्यात् 'वायुर्वैक्षेपिष्ठादेवता' इतिविधिशेषात् अर्थवादत्वं युज्यते तेन प्रमाणान्तराव गतस्य ज्ञापकत्वात् पूर्वार्थस्य अर्थवादत्वं भवति । अनादिसिद्धः स्वाभाविकः श्रीरामस्तत्परब्रह्मपरंपुरुषादिसामान्यशब्दवाच्यः श्रीविष्णुनारायणादीनां रूपीति में अनेकानेक गुण समुदाय के कारण प्रशंसनीय पुरुष के गुणों को जिनमें वे गुण वास्तविक में नहीं है ऐसे अन्य पुरुषों में आरोप करके उस पुरुष की प्रशंसा की जाती है । उती तरह अन्यान्य भगवद् विग्रहों में होने वाले गुणों का परब्रह्म परमेश्वरादि रूपित्व का गुणगण श्रीरामचन्द्रजी में आरोप किया जाता है । यह कहना तो युक्ति संगत नहीं होगा । सर्व शब्द वाच्य का वाचकत्व धर्म होने के कारण तथा प्रणव स्वरूप ॐकार की कारणता होने के कारण रुद्र के द्वारा तारक ब्रह्म के स्वरूप में उपदिष्ट होने के कारण एवं विष्णु आदि भगवद् विग्रहों के सहस्रनामों के समानता श्रीराम नाम में होने से और शास्त्रकारों द्वारा कथित श्रीराम नाम का अन्य वाच्य भगवद् विग्रहों की तुलना में न्यूनता निरूपण 'सहस्रनामतातुल्यम्' इस शास्त्रीय प्रामाणानुसार अनुचित होता है । जिस प्रकार 'यह यूप आहित्य' है इसमें यूप आदित्य नहीं है यह प्रत्यक्ष रूपसे देखा जाता है, किन्तु उसमें आदित्य का आरोप है इसलिये गौण में प्रधान का आरोप होने से गुणवाद के कारण अर्थवादत्व होता है, उसी प्रकार अग्नि हिम की औषधि है इस वाक्य में प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा जाना गया होने के कारण अर्थवादत्व नहीं है, इसी तरह ब्रह्म आदि के रूपित्व का बोध कराने वाले मन्त्रों का अन्य प्रमाणों के द्वारा ज्ञात किये गये विषयों का अनुवाद नामक अर्थवादत्व नहीं कहा जा सकता है । इसीलिये ही 'वायु देवता सम्बन्धित श्वेत पशु का आलम्भन करे' इस विधि वाक्य का सान्निध्य होने के कारण वायु ही अत्यन्त तीव्र गामी देवता हैं । इस विधि शेष वाक्य से जैसे अर्थवादत्व होता है उसी तरह, विधान करने वाले अन्य वाक्यों के

एषामर्थानां स्वतन्त्रप्रमाणत्वं सिद्ध्यति । चरममन्त्राणां श्रीरामनिष्ठपरब्रह्मश्रुत्या तदनुकूलानां चार्थानां स्मृत्या प्रकाशनात् श्रीनारायणादिरूपित्वस्य बाधाभावेन सर्वावतारित्वं श्रीरामस्य निष्पन्नं भवति । इत्थं चरममन्त्रप्रदर्शितन्यायेनैव 'स्वभूर्ज्योतिर्मयः' 'जीवत्वेनेदमों यस्य' इत्यादिस्वपि श्रीरामनामपरत्वबोधक उपनिषद् वचनविरोधेन एषामर्थान्तरपरत्वकल्पनं युक्तमिति चेन्न । उपसंहारेण श्रीरामशब्दकार्यत्वपूर्वकं प्रणवस्य सर्वरूपित्वसिद्धेः । ॐ इत्येतदक्षरं सर्वं रामनामपरत्वं ॐ इति अनयोः परस्परं विपरीतार्थपरत्वेन अन्योपनिषद् वचनसहकृतस्य एतदुपनिषत् प्रणवपरवचनस्य प्राबल्यमितिविज्ञाय प्रणव कार्यत्वाङ्गीकारेण दोषपरिहारः । 'अग्निषोमीयं पशुमालभेत' इतिवाक्यस्य 'न हिंस्यात् सर्वाभूतानि' इत्यर्थस्य विरोधेन एकांशे संकोच इव 'ॐ इत्यक्षरं सर्वम्'
सन्निकटता के कारण अर्थवादत्व कहना तर्कसंगत माना जाता है। इससे प्रतीत होता है कि किसी दूसरे प्रमाण के द्वारा जाने गये अर्थ का बोध कराने वाला दूसरा प्रमाण होने के कारण पूर्व अर्थ का अर्थवादत्व होता है। अनादि काल से सिद्ध अपने स्वभाव से ही होनेवाला अर्थात् जिनका कोई कारण या प्रेरक दूसरा नहीं है ऐसे श्रीरामचन्द्रजी हैं वही परंब्रह्म एवं सर्वेश्वर तथा सर्वावतारी हैं। एवं परमपुरुष पुरुषोत्तम आदि सामान्य शब्द प्रतिपाद्य हैं। तथा विष्णु महाविष्णु नारायण आदि भगवद् विग्रहों के रूपी हैं। इन समस्त अर्थों का इस आधार पर स्वतन्त्र प्रमाणता सिद्ध होती है।

चरममन्त्र गण श्रीरामचन्द्रजी में पूर्ण रूपसे स्थित परब्रह्मत्व का निरूपण करने वाली श्रुति के अनुसार और उन श्रुतियों के अनुकूल अर्थों को प्रकाशित करनेवाली स्मृति के द्वारा अभिव्यक्त करने के कारण नारायण आदि के रूपित्व का निरूपण में किसी तरह की बाधा नहीं होने से श्रीरामचन्द्रजी का सर्वावतारित्व सभी प्रकार से सिद्ध होता है। इसप्रकार चरममन्त्र में दिखाये गये न्याय से ही 'स्वभूर्ज्योतिमयः' 'जीवत्वेनेदमों यस्य' इत्यादि मन्त्रों में भी श्रीराम नाम परत्व का बोध कराने वाले उपनिषदों के साथ इन वचनों का परस्पर विरोध होने के कारण इन शब्दों का अन्यार्थ प्रतिपादन परक होने की कल्पना संगत ही है ऐसा कहें तो यों नहीं कह सकते। क्योंकि उपसंहार वचनों के द्वारा श्रीराम शब्द का कार्यत्व निरूपण पूर्वक प्रणव स्वरूप ॐ कार का सर्वरूपित्व होने की सिद्धि होने से।

ॐस्वरूप यह अक्षर (अविनाशी तत्व) सवकुछ है यह वचन एवं श्रीराम नाम

इत्यादिना प्रणवनिष्ठं सर्वरूपित्वमुक्तेऽपि अस्योपनिषदः एकवाक्यतया श्रीरामपदवाच्यस्य महाव्यापकस्य सर्वावतारित्वनिश्चयात् मूलकारणस्य द्विनिष्ठत्वानुपपत्तेश्च उपनिषदन्तरकारणपरशब्दानामपि श्रीरामपरत्वं सिद्ध्यति । इतिहास पुराणादयोऽपि इममर्थं स्फुटयति । श्रीरामस्य कलांशादेव तेऽवतारा भवन्ति इत्यादिना । श्रीमद्वाल्मीकीये श्रीरामस्योपक्रमादिहेतुभिरवतारत्वमवगम्यते इति

प्रतिपादन परक ॐ इन दोनों ॐकार का आपस में विपरीत अर्थ का बोधन परक होने के कारण दूसरे उपनिषदों के निरूपित वचनों के सहकार से निरूपित इस श्रीरामतापनीय उपनिषद् के प्रणव स्वरूपार्थ बोधन परक वचन की प्रबलता सिद्ध होती है। यह अच्छी तरह समझ कर श्रीरामजी का प्रणव कार्य है यह सिद्धान्त स्वीकार करने पर ही दोष का समाधान होने से परस्पर समन्वय होता है । अग्नि तथा सोम देवता है जिसका ऐसे तत्सम्बन्धी पशु का आलम्भन करे, इस वधि वाक्य का किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिये, इस अर्थ का विरोध होने के कारण विधि के एक अंश में जैसे संकोच होता है उसीप्रकार ॐ यह अक्षर ही सव कुछ है इत्यादि उपनिषद् मन्त्र के द्वारा प्रणव में स्थित सर्वरूपित्व को कहे जाने पर भी इस श्रीरामतापनीय उपनिषद् की एक वाक्यता के द्वारा श्रीराम पद के द्वारा प्रतिपाद्य महाव्यापकत्व अर्थ का सर्वावतारित्व स्वरूप में निश्चय होने के कारण और मूलकारणता के दो में स्थित होना युक्ति संगत नहीं होने के कारण अन्य उपनिषदों में कारण परक शब्दों का भी श्रीरामचन्द्रजी परत्व ही है यह सिद्ध होता है। इतिहास पुराण धर्मशास्त्र आदि भी इसी अभिप्राय को प्रस्फुटित कराते हैं । जैसे कि 'श्रीरामचन्द्रजी के कलांश से ही अनन्त अवतार हुआ करते हैं' इत्यादि वचनों के द्वारा श्रीरामजी को सर्वावतारी बोध स्फुट रूपसे कराते हैं। श्रीवाल्मीकीय श्रीमद्रामायण में भी उपक्रम उपसंहार आदि हेतुओं के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी का अवतारत्व प्रतीत होता है ऐसा तो नहीं कहना चाहिये । क्योंकि उपक्रम उपसंहार आदि वाक्यों का प्रकृत सन्दर्भ के साथ विरोध होने के कारण और श्रीवाल्मीकीय श्रीमद्रामायण में ही प्रतिपादित पूर्वापर वाक्य के साथ परस्पर विरोध के द्वारा श्रीराम नाम से प्रतिपाद्य अर्थ विशेष का व्यापकत्व आदि गुण के द्वारा प्रभु (सर्व समर्थ का) का प्रभुत्व विदित होता है ।

चार मुखों वाला स्वयम्भू श्रीब्रह्माजी अथवा समस्त देवगण का नायक इन्द्र

तु न वक्तव्यम् उपनिषदुपक्रमादिवाक्यसंदर्भविरोधेन तत्रत्य पूर्वापरवाक्य विरोधेन च श्रीरामनामवाच्यस्य व्यापकत्वादिगुणद्वारा प्रभोः प्रभुत्वं बुद्ध्यते ।

ब्रह्मास्वयंभूश्चतुराननो वा, इन्द्रोमहेन्द्रः सुरनायको वा ।
रुद्रस्त्रिनेत्रः त्रिपुरान्तको वा, त्रातुं न शक्ता युधि रामवध्यम् ॥१॥

'न कालस्य न रुद्रस्य न विष्णोर्वित्तपस्य च ।
कर्माणि तानि श्रूयन्ते यानि युद्धे हनुमतः'

इत्यत्र श्रीहनुमत् कर्मणो विष्णुकर्माधिक्योक्तेः तत् स्वामिनः कथं न विष्णो राधिक्यम् ? उपसंहारेऽपि

या महेन्द्र अथवा त्रिपुरासुर का संहार करने वाला एवं तीन आँखों वाला रुद्र देवता, ये सभी देवगण संग्राम के अन्दर श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा वध करने योग्य व्यक्ति की रक्षा करने में समर्थ नहीं हो सकते हैं। न यमराज का, नहीं रुद्र का, न विष्णु का और नहीं कुवेर का श्रीरामचन्द्रजी के जैसे लोक प्रसिद्ध क्रिया कलाप सुने जाते हैं जिसप्रकार के संग्राम के अन्दर क्रिया कलाप श्रीहनुमानजी के सुने जाते हैं। इस सन्दर्भ में श्रीहनुमानजी के क्रिया कलाप का भगवान् विष्णु की अपेक्षा अधिकता कहे जाने के कारण-इन सभी से समधिक महत्व श्रीहनुमानजी का हैं। तब श्रीहनुमानजी के जो परम प्रभु हैं उनका सामर्थ्य कितना अधिक होगा यह अनुमान किया जा सकता है। इससे श्रीरामजी में अधिकता है यह कैमुतिक न्याय से स्वतः सिद्ध है। उपसंहार वचन में भी-क्योंकि प्राचीन काल में सभी लोकों को समेटकर स्वयं ही अपनी माया शक्ति के द्वारा सभी को समेट कर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी महासागर के जल मध्य में शयन करते हुए आप जल में पूर्व काल में मुझे उत्पन्न किये थे। जिसको महासागर के जल में आपने जन्म दिया वह मैं सम्प्रति भार मुक्त हो कर सकल चराचर श्रेष्ठ स्वामी आपकी उपासना करना चाहुता हूँ। आप मेरे प्रभाव को उत्पन्न करनेवाले हैं अतः आप ही समस्त प्राणियों की रक्षा करें। पूर्वकालीन उस सनातन भाव के होने के कारण आप जिस किसी से धर्षित नहीं किये जा सके ऐसे अतुल पराक्रम सम्पन्न हो, समस्त चराचर की रक्षा करने की कामना करते हुए श्रीरामजी ही विष्णुत्व स्वरूप को धारण किये। इसतरह उपक्रम अभ्यास तथा उपसंहार वचनों के द्वारा जो श्रीरामचन्द्रजी का विष्णु नारायण आदि भगवद् विग्रहों का कारणत्व प्रकाशित किया गया-इन उपक्रम अभ्यास एवं उपसंहार के द्वारा महाविष्णु आदि शब्दों का जिसप्रकार

संक्षिप्य हि पुरा लोकान् मायया स्वयमेव हि ।
महार्णवेशयानोप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः ॥
सोऽहं सन्यस्तभारो हि त्वामुपास्ये जगद्गुरुम् ।
रक्षां विधत्स्व भूतेषु मम तेजस्करो भवान् ॥
ततस्त्वमसिदुर्धर्षस्तस्माद् भावात् सनातनात् ।
रक्षां विधास्यन् भूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान् ॥

अन्यार्थ परकत्व का बोध किया जाता है। उसी तरह विष्णु आदि शब्दों का भी यथा पूर्व अन्यार्थ परकत्व समझना चाहिये।

इस प्रकरण में 'अपने आप को चार तरह से विभाजित करके' ऐसा कहकर, इसप्रकार वे देवाधिदेव देवताओं के लिये वर प्रदान किये वे आत्मवान् विष्णु हैं' ऐसा कहा गया है। इस प्रासङ्गिक वचन में आत्मन् शब्द का प्रयोग किया गया है। अब यह प्रश्न उठता है कि उस आत्मन् शब्द का क्या अर्थ है। और किस प्रकार अर्थ विशेष का निर्णय होगा, इस तरह तात्विक निर्णय जानने की इच्छा होने पर, समाधानार्थ कहा जाता है। आत्मन् शब्द का प्रयोग देह, धैर्य, जीवात्मा, स्वभाव तथा परमात्मा अर्थों में होता है। इस कोश वचन के अनुसार आत्मन् शब्द की अनेकार्थता है। इस परिस्थिति में विष्णु को प्रत्यक्ष रूपसे उपस्थित होने के कारण विष्णु अर्थ नहीं हो सकता है। संग्राम आदि का प्रकरण नहीं होने के कारण आत्मन् का धीरता अर्थ भी नहीं हो सकता है, किसी प्रयोजन विशेष को दृष्टिगत करके शब्द प्रयोग किया जाता है। ऐसा कोई प्रयोजन नहीं होने से जीवात्मा अर्थ भी नहीं हो सकता है। तब अन्य कोई उपाय नहीं होने से परिशेषात् आत्मन् शब्द का इस प्रकरण में परमात्मा अर्थ है। और उस परमात्मा अर्थ से उपलक्षित कारण परत्व बोध होता है। इस तरह रावण नामक दुःसाहसी पराक्रमी राक्षस का वधकी आकांक्षा रखने वाले इत्यादि श्रीब्रह्माजी के वचन का उपसंहार वचन के द्वारा, मनुष्ययोनि सम्बन्धित शरीर में अपना मन सुस्थिर किये, इत्यादि ब्रह्माजी के वचन का उपसंहार वचन के साथ मनुष्य योनि सम्ब्रन्धित शरीर में लगाया, इस सन्देह रहित वचन के अनुरोध से भगवान् विष्णु अपने स्वरूप अर्थ अपना कारण स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी की जन्मभूमि को मनुष्य लोक विचार किया, यह अभिप्राय प्रकाशित होता है। श्रीवाल्मीकीय श्रीमद्रामायण के वालकाण्ड में कहा गया चार प्रकार में स्वयं को विभाजित कर, इस तरह से भगवान्

इतिव्यक्तीकृतं यत् सर्वेश्वरश्रीरामस्य श्रीविष्णुनारायणादिकारणत्वम् । इत्युपक्रमाभ्यासोपसंहारैर्महाविष्ण्वादिशब्दानां यथार्थान्तरपरत्वं तथा विष्ण्वादीनामपि ज्ञेयम् । अत्र कृत्वात्मानं चतुर्विधमित्युक्त्वा, एवं दत्वावरं देवो देवानां विष्णुरात्मवामित्युक्तम्, तत्रात्मन् शब्दस्य प्रयोगः तस्य कोऽर्थः कथञ्च विशेषार्थनिश्चय इतिजिज्ञासायां सत्याम्मुच्यते→आत्मा देहे धृतौ जीवे स्वभावे परमात्मनि' इत्यनेकार्थत्वम् । तत्र प्रत्यक्षत्वात् न विष्णुः, युद्धादिप्रकरणाभावात् धृतिश्च न, प्रयोजनाभावान्न जीवः, तदेवं परिशेषात् परमात्मार्थस्तदुपलक्षितं कारणपरत्वम् । इत्थं रावणस्य बधाकांक्षीत्यादिब्रह्मणोवचनस्योपसंहारवचनेन 'मानुषेषु मनोदधे' इत्यसन्दिग्धवचनानुरोधेन विष्णुः स्वात्मनः स्वकारणस्य श्रीरामस्य जन्मभूमिं मानुषे लोके चिन्तयामास इत्यर्थः । बालकाण्डोक्तस्य चतुर्विधमित्यस्य विष्णुप्रतिदेवकृतायाः प्रार्थनायाः→

विष्णु के प्रति देवताओं की द्वारा की गयी प्रार्थना का-इन चारों भाइयों में श्रेष्ठ महान् प्रभाव शाली अपने पिता दशरथजी को महान् आनन्द प्रदान करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी प्राणियों में स्वयम्भू ब्रह्मा के समान अतिशय श्रेष्ठ गुणवान् हुए । वे श्रीरामचन्द्रजी देवताओं के द्वारा उन्मत्त किया गया रावण का वध चाहने वाले देवताओं के प्रार्थना किये जाने पर मनुष्य लोक में सनातन विष्णु प्रादुर्भूत हुये । इसका आशय यह है कि सर्वव्यापक विष्णु जो अनादि अजन्मा आदि गुणों से युक्त हैं वे देवताओं के द्वारा यज्ञ में प्रार्थित हुए, इसप्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के प्रति की गयी देवकृत प्रार्थना का इस तात्पर्यार्थ के द्वारा विरोध का परिहार होता है । और यहां पर 'विष्णुत्व को उपलब्ध किया' यह वचन ही प्रमाण स्वरूप है । दोनों ही स्थानों पर देवताओं के द्वारा की गयी प्रार्थना के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी को परत्व समझा जाता है । अखण्ड परब्रह्म परमात्मा का खण्डन नहीं करने योग्य धर्म के होने पर भी चार भागों में विभाजन, उन विभाजन में भी न्यूनता अधिकता, स्वामित्व और सेवकत्व भाव का सम्बन्ध ये सभी वातें युक्ति युक्त संगति को नहीं प्रास करती है । 'वैशेष्यात् तद्वादस्तद्वादः' इस ब्रह्मसूत्र के कथनानुसार प्रमाण के आधार पर जैसे पांच महाभूतों से युक्त भौतिक शरीर के होने पर भी अधिक अंश होने के कारण यह पार्थिव शरीर है यह व्यवहार किया जाता है । क्योंकि शरीर में पृथिवी की प्रधानता है इसलिये, स्वामी और सेवक सम्बन्ध होने पर विष्णु का एवं विष्णु के कारण स्वरूप श्रीराम

तेषामपि महातेजाः रामोरतिकरः पितुः।
स्वयम्भूरिव भूतानां बभूव गुणवत्तरः ॥
स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः ।
अर्थितोमानुषे लोके यज्ञे विष्णुः सनातनः ॥

सर्वव्यापकोऽनादिः विष्णुः देवैः यज्ञे अर्थितः, इति श्रीरामं प्रतिकृतायाः देवकृतप्रार्थनायाः परस्परविरोधपरिहारः, अत्र च विष्णुत्वमुपजग्मिवानिति प्रमाणम् । उभयत्र देवप्रार्थनया श्रीरामपरत्वं बुध्यते । परमात्मनोऽखण्डस्य ब्रह्मणः केनाऽपि भेदकेन खण्डनानर्हतया, चतुर्धाविभाजनं तत्रापि न्यूनाधिक्यम्, स्वाम्यनुचराभावश्चनोपपद्यते । 'वैशेष्यात्तद्वादस्तद्वादः' इतिब्रह्मसूत्रप्रमाणेन यथा पञ्चभूतात्मकेऽपि शरीरे पार्थिवं शरीरमित्युच्यते, तत्र पृथिव्यां प्राधान्यात्, तथा स्वाम्यनुचरेषु विष्णोः तत्कारणस्य च विष्णुपदस्य तदात्मपदस्य वा तत्तदनुचरलक्षकत्वात् चतुर्विधत्वम् । तेन कृत्वात्मानं चतुर्विधमित्यस्यानुचरैः सहितमात्मानं विधायेत्यर्थः श्रीरामनिष्ठविष्ण्वाद्यवतारित्वबोधकतदनुचरलक्ष्मणादीनाञ्च शेषाद्यवतारित्वपरवचनानुरोधात् । विष्णुत्वमुपजग्मिवान् इत्यस्य-

'स त्वं वित्रास्य मानासु प्रजासु जगतां वर ।
रावणस्य वधाकांक्षी मानुषेषु मनोदधा'

चन्द्रजी का विष्णु पद का तथा विष्णु के आत्मा पद का या परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी के अनुचर अर्थ को लक्षित करने वाला होने के कारण 'कृत्वा आत्मानम् चतुर्विधम्' में चतुर्विधत्व सिद्ध होता है। इससे कृत्वा आत्मानम् चतुर्विधम्, इस वाक्य का सेवकों के सहित अपने स्वरूप को बना कर यह अभिप्राय होता है। श्रीरामचन्द्रजी में स्थित होने वाला विष्णु आदि भगवद् विग्रहों के अवतारित्व का बोध कराने वाले और श्रीरामजी के अनुचर लक्ष्मण आदि का शेष के अवतारित्व सूचक वचनों के अनुरोध से यह विभाजन है। और 'विष्णुत्वमुपजग्मिवान्' इस वचन का हे सभी लोकों में श्रेष्ठ भगवान् श्रीराम ? इसप्रकार के गुणगण सम्पन्न आप समस्त प्रजाजन को विशेष रूपसे उद्विग्न किये जाते हुए होने पर उस रावण का वध करने का अभिलाषुक होकर मानव शरीर में अपने मनको लगायें। और इस वचन के साथ जो विष्णु स्वरूपता को प्राप्त किये श्रीरामजी जिनका नाम है वे विष्णु के कारणरूप का ही महाराज दशरथजी के घर में प्रादुर्भाव हुआ यह तात्पर्य सुस्पष्ट किया जाता है। जो आप

इतिवचनेन च यो विष्णुरूपत्वं प्राप्तवान् श्रीरामाख्यस्तत्कारणस्यैव राज्ञो दशरथस्य भवने प्रादुर्भाव इतिस्फुटीक्रियते । यस्त्वं विष्णुत्वमुपजग्मिवान् स त्व मित्यन्वयः । तेन कारणाभेदबुद्ध्या प्रयोग इत्यवगम्यते ॥४॥

श्रुत्यनुगामित्वमन्तरा लौकिकवाक्यस्य पुरुषवाङ्मनसातीतस्य केवल शब्दप्रमाणवेद्यस्य परब्रह्मणो बोधाय नहि प्रामाण्यं भवति । श्रुत्युपसंहारापेक्षया स्मृत्युपसंहारस्य दुर्बलत्वात्, ब्रह्मणोदूतमुखेन श्रीरामस्य स्वर्गारोहणाय प्रार्थना,

विष्णुत्व को उपलब्ध किये थे वे आप श्रीरामचन्द्रजी हैं इस प्रकार समन्वय होता है। इसलिये कार्य कारण में अभेद की भावना से व्यवहार किया गया है यह प्रतीत होता है ॥४॥

यदि लौकिक प्रमाण वाक्य वेद वचन का अनुगामी होता है तो प्रामाणिक होता है । वेदानुसारित्व के विना लोक द्वारा प्रयुक्त वाक्य का मानव के वाणी तथा मन के अतीत सभी अन्य प्रमाणों को छोड़कर केवल शब्द प्रमाण मात्र से जानने योग्य परब्रह्म परमेश्वर का ज्ञान करने के लिये प्रामाणिकता नहीं होती है । वेद वचन के उपसंहार वाक्यों की तुलना में स्मृति वचनों के उपसंहार की दुर्बलता के कारण, श्रीब्रह्माजी के दूत के मुख से श्रीरामचन्द्रजी के स्वर्गारोहण के लिये प्रार्थना किया जाना तथा श्रीब्रह्माजी के माध्यम से श्रीरामजी का चरित्र का अभिप्राय प्रकाशन के लिये 'समुद्र जल के मध्य में शयन करते हुए आपने पूर्व काल में मुझे जल में जन्म दिया' इत्यादि कथन, व्यापक तथा अनादि काल से परम व्यापक श्रीरामचन्द्रजी मानव रूपमें जन्म लिये । आदि निरूपण भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के विषय में होने वाली प्रतीति जनित साधारण बुद्धि का निराकरण करने के लिये ही है । जो 'विश्व व्यापी राघव' इत्यादि कथन के द्वारा 'ॐकार कारणस्वरूप जो श्रीरामचन्द्रजी हैं जो विष्णु हैं, महाविष्णु हैं' इत्यादि श्रीरामतापनीयोपनिषद् के चरममन्त्रों के द्वारा इस उपनिषद् में श्रीरामचन्द्रजी में होनेवाली विश्व व्यापनशीलता आदि श्रुति वचनों से ज्ञात होता है कि श्रीरामचन्द्रजी श्रीविष्णु नारायण महाविष्णु आदि स्वरूपधारी होने के कारण सर्वावतारी हैं यह जानना चाहिये । तत्पश्चात् व्यापक श्रीरामचन्द्रजी जैसे पूर्वकाल में स्वर्ग में प्रतिष्ठित थे उसीप्रकार पुनः प्रतिष्ठित हो गये । जिन श्रीरामचन्द्रजी से यह सबकुछ चराचर सहित तीनों लोक व्याप्त है । यहां पर साधारण जीव के समान श्रीरामचन्द्रजी की भी स्वर्ग की प्राप्ति हुई । इस विषय का निराकरण करने के लिये-'जैसे पूर्व काल'

तच्चरितप्रकाशनाय 'अप्सु मां त्वमजीजनः' इत्यादिकथनं 'जज्ञे विष्णुः सनातनः' इति च श्रीरामविषयकप्रातीतिकबुद्धिनिरासायैव 'विश्वव्यापी राघवो यः' इत्यादिना 'यो वै श्रीरामचन्द्रः यो विष्णुः यो महाविष्णुः' इत्यादिचरममन्त्रैश्च रामतापनीये श्रीरामनिष्ठविश्वव्यापकत्वादिश्रुतेः श्रीरामोविष्णुनारायणादिरूप धारित्वेन सर्वावतारीति ज्ञेयम् ।

ततः प्रतिष्ठितो विष्णुः स्वर्गे लोके यथा पुरा ।
येन व्याप्तमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥

इस शब्द का व्यवहार किया गया है। श्रीरामचन्द्रजी मनुष्य नहीं थे, इस मनुष्यत्व बुद्धि का खण्डन करने के लिये विष्णु शब्द का प्रयोग किया गया है।

साधारणतया मुक्त जीवात्मा का भी शास्त्रों में धर्मभूत ज्ञान द्वारा व्यापकत्व सुना गया है इसलिये 'येन व्याप्तम्' जिससे यह चराचर सहित तीनों लोक व्याप्त है, ऐसा कहा गया। श्रीमद्रामचन्द्रजी में सदैव अपनी मानवीय वंश परम्परा का प्रभाव होने के कारण मनुष्यत्व की भावना है-'मैं अपने आपको मानव कुलोत्पन्न मानता हूँ। दशरथ महाराज का आत्मज रामचन्द्र को' इत्यादि श्रीरामजी के द्वारा अपने कण्ठ से कहे जाने से मनुष्यत्व बुद्धि प्रमाणित होती है। महर्षि श्रीवशिष्ठजी के द्वारा विभिन्न प्रकार से, वत्स, राघव, रघुनन्दन, दशरथ तनय आदि शब्दों के द्वारा नाम का उच्चारण किया जाना भी मानवीय भावना का परिचायक है। 'हा सीते हा जानकी' इत्यादि शब्दों के माध्यम से साधारण मानव जिसप्रकार प्रिय वियोग में विलाप करता है उस तरह शोकाकुल मनुष्य के आचरण के समान चरित्र दिखाने से साधारण मनुष्य के समान जनक तनया श्रीसीताजी में आसक्ति प्रदर्शन भी मनुष्यत्व बुद्धि का परिचायक है। राक्षसराज रावण की भी श्रीरामजी के प्रति मनुष्य भावना थी। हिरण्य कशिपु नामक दैत्य की भी भगवान् नृसिंहजी के प्रति नृसिंहत्व भावना थी, यह भगवान् के द्वारपाल को दिया गया ब्राह्मण शाप का निर्वाह के लिये हुई। और शिशुपाल को देहावसान के समय में अमानुषत्व बुद्धि हुई अर्थात् सकल चराचर नायक भगवान् हैं यह भावना हुई। और भगवद् बुद्धि के कारण ही जय विजय को मोक्ष लाभ हुआ। इसी विषय को विष्णुपुराण में मैत्रेय के प्रश्न का उत्तर देते समय कहा गया है। इसके वाद यह शिशुपाल श्रीकृष्णजी के द्वारा मारे जाने पर जिन भोगों को देवताओं के द्वारा भी नहीं प्राप्त किया जा सकता है, इस संसार में और परलोक में भगवत् सायुज्य

अत्र साधारणजीववत् श्रीरामस्यापि स्वर्गप्राप्तिनिरासाय 'यथा पुरा' इति मनुष्यत्वनिरासाय 'विष्णुरिति' जीवात्मन अपि स्वधर्मभूतज्ञानेन व्यापकत्व श्रवणात् अतो 'येन व्याप्तमित्युक्तम् । श्रीरामचन्द्रे मनुष्यत्वबुद्धिः सदास्वकुलाचारावेशात् 'आत्मानं मानुषं मन्ये' 'रामं दशरथात्मजमिति स्वकण्ठत उक्तेः । महर्षिणा श्रीवशिष्ठेनापि बहुधा वत्स, राघव, रघुनन्दन दशरथात्मजेत्यादिना नामोच्चारणम्, 'हा सीतेत्यादिना शोकाकुलमानववत् चरित्रप्रकाशनम् सामान्य जन इव जानक्यामासक्तिः, रावणस्य मनुष्यबुद्धिः, हिरण्यकशिपोरपि नृसिंहत्वबुद्धिः ब्राह्मणशापनिर्वाहाय, शिशुपालस्य चान्तकाले अमानुषत्व बुद्धिस्तेनैव च जयविजययोर्मुक्तिः स्तदुक्तं विष्णुपुराणे मैत्रेय प्रश्ने 'अथायं निहतो भोगानप्राप्यानमरैरपि । नालभत्तत्र चैवेह सायुज्यं स कथं पुनः ॥ संप्राप्तः शिशुपालत्वे सायुज्यं शाश्वते हरौ । तदुक्तं श्रीपाराशरेण नृसिंहाख्यमपूर्वशरीरा स्वरूप मोक्ष को किस कारण से प्राप्त किया जब रावण हिरण्य कशिपु का देह था तब प्राप्त न कर सका और शिशुपालत्व प्राप्त करने पर भगवान् विष्णु में शाश्वत सायुज्य मुक्ति को कैसे प्राप्त किया ।

यही विषय पराशर पुत्र भगवान् वेदव्यासजी के द्वारा भी कहा गया है कि मनुष्य और सिंह का मिला जुला नृसिंह नाम का अपूर्व शरीर के आविर्भूत करने पर भी हिरण्य कशिपु की यह भावना नहीं हुई कि यह भगवान् विष्णु हैं, अपितु नृसिंह हैं यही बुद्धि हुई। दशमुख धारी रावण जन्म धारण की अवस्था में भी तीनों लोकों से अधिक भोग योग्य साधन सम्पत्ति ऐश्वर्य को उपलब्ध करने पर भी, जिनका कभी आरम्भ जन्मादि निधन मृत्यु नहीं होता है ब्रह्मस्वरूप नित्य श्रीरामजी में कामातुर होने के कारण जनकनन्दिनी श्रीसीताजी में आसक्ति होने से दशरथ का पुत्र मनुष्य है यही बुद्धि रही, न कि ब्रह्म बुद्धि हुई। लेकिन जब शिशुपाल शरीर धारण किया उस समय पर तो शयन भोजन ग्रहण बिहार आदि समस्त क्रिया कलापों में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी के नाम का ही भूयोभूयः स्मरण होने के कारण जिसका अनेक जन्म सञ्चित समस्त पापों के दूर हो जाने से चित्त निर्मलता वश सुदर्शन चक्र के प्रकाश पुञ्ज से रमणीय तथा रेशमी पिताम्बर धारी भगवान् परमेश्वर को देखा इसलिये उसी समय भगवद् विग्रह विज्ञानवशगत शिशुपाल उसी समय श्रीकृष्ण द्वारा सुदर्शन चक्र से मार दिया गया। मृत्यु काल में समस्त जन्म जन्मार्जित पापपुञ्ज को भस्मसात् हो

विर्भावेऽपि विष्णुरयमिति तात्त्विकबुद्धिर्नाभूत । दशाननत्वेऽपि त्रैलोक्याधिकभोगसम्पदाप्तेरनादिनिधने श्रीरामे कामपरवशतया श्रीजानक्यामासक्त्या च दाशरथित्वबुद्धिरेवाभूत् । शिशुपालत्वे तु शयनाशनाटनविहरणादिषु तन्नाम्न एव स्मरणात् अपगताखिलमलत्वात्, चक्रांशुमालोज्वलं पीतकौशेयवाससं भगवन्तमद्राक्षीत् तदैवाशु व्यापादितः । तदानीं दग्धाखिलसञ्चितमलत्वात्तस्मिन्नेवलयमुपययौ । इत्थं विप्रशापवशाद् जन्मद्वये नृसिंहत्वमानुषत्वदृष्टेः मोक्षाभावः शापावसाने च तत् स्वरूपज्ञानपूर्वकं परब्रह्मणोज्ञानात् तस्मिन्लयः ।

जोने से उन परमात्मा श्रीकृष्ण में ही विलय को प्राप्त किया। इसप्रकार ब्राह्मण के शाप के कारण हिरण्य कशिपु एवं रावण इन दोनों जन्मों में नृसिंहत्व एवं मनुष्यत्व दृष्टि होने से तत्व ज्ञान के अभाव में उनकी मुक्ति नहीं हुई। लेकिन ब्राह्मण शाप का अन्तकाल होने पर, भगवान् के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होने के पश्चात् तत्व ज्ञान पुरस्सर परब्रह्म का ज्ञान होने पर सायुज्य मुक्ति स्वरूप परब्रह्म में विलय हो गया। मृत्यु से पूर्व कालीन अवस्थाओं में श्रीकृष्ण मनुष्य है भगवान् नहीं इस मानवीय भावना वश रागद्वेष था, विशिष्ट प्रकार के द्वेष से अनुवद्ध मानस होने से मनमें पुनः पुनः विशेष प्रकार से निन्दा करना, सम्यक् रीति से डराना धमकाना आदि क्रियाओं में पुनः पुनः कृष्ण का संस्मरण होने से मानसिक निर्मलता का समुदय होने पर भगवान् श्रीकृष्ण को तात्विक रूपसे दर्शन किया 'समस्त चराचर में व्याप्त सर्वात्मा ईश्वर कृष्ण में अपत्य (पुत्र) की भावना नहीं करना' इत्यादि वचनों के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि वसुदेव देवकी आदि की भी भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति पुत्र आदि की भावना थी। भगवान् कृष्ण आदि के शरीर में तो जनसाधारण को परमेश्वरत्व की भावना नहीं थी, सामान्य गोपाल कृष्ण पुत्र सखा शत्रु आदि की ही बुद्धि थी। इसीलिए गीता में अर्जुन के प्रति भगवान् श्रीकृष्णजी के द्वारा कहा गया है कि-'हे अर्जुन तुम इस लौकिक चर्मचक्षु के द्वारा सर्वभूतात्मा जगदीश्वर श्रीकृष्ण को अपनी आँखों से नहीं देख सकते हो, मैं दिव्य (अलौकिका) चक्षु (नेत्र) तुम्हारे लिये प्रदान करता हूँ। तुम मेरे ईश्वर सम्बन्धी योग को दिव्य दृष्टि से देखो' ऐसा कहा है। वह लोक शास्त्र प्रसिद्ध तथ्य प्रतीति कारिणी बुद्धि मोक्ष प्रदान करनेवाली हुआ करती है। इसीलिए शिशुपाल आदि के प्रति भस्मसात् हो चुका है समस्त जन्म जन्मान्तर सञ्चित पाप संग्रह जिसका ऐसा कहा गया है। जब जय विजय

पूर्वस्मिन् काले तु श्रीकृष्णोमनुष्य इत्येव बुद्धिः, विद्वेषानुबद्धचित्ते भूयो भूयोविनिन्दनसन्तजादिषु स्मरणेन नैर्मल्यात् परब्रह्मभूतं भगवन्तमद्राक्षीत् 'मापत्यबुद्धिमकृथाः कृष्णे सर्वात्मनीश्वरे' इत्यादिभिरनुमातुं शक्यते यद् वसुदेवादीनामपि पुत्रादिबुद्धिरासीत् । कृष्णादिशरीरे तु सामान्यलोकस्य न परमेश्वरत्वबुद्धिः । अतएवोक्तम्-'न च मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा । दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्' इति । सा प्रातीतिकीबुद्धिर्मुक्तिसाधिका, 'दग्धाखिलाघसञ्चयः' इतिशिशुपालादिपरः, पार्षदत्वे पापाभावात् । 'एकशृङ्ग वराहस्त्वम्' 'श्रीमान् चक्रायुधः प्रभुः' इत्याद्यौपनिषद्वाक्यैः परब्रह्मत्वादि सर्वरूपित्वप्रकाशनात् । केवलमानुषबुद्धिर्मुक्तिवाधिका 'प्रकृतेर्विकृतेर्वापि यत्रोक्तिः स्याद् द्वयोरपि । वाचकः प्रकृतेः संज्ञा गृह्णाति विकृतेर्नतु' इति वचनेन वाच्यस्य श्रीरामस्यैव प्रकृतित्वोपपत्तिः । एकशृंगवराहादिकथनेन शौभरिवत् युगपत् क्रमेण वा श्रीरामस्य बहुरूपधारित्वं सर्वरूपित्वं मुख्यत्वं चोपपद्यते ।

स्वरूप में भगवान् का नित्य पार्षद था, उस स्थिति में पाप होने की बात ही कहां। 'आप एक शृङ्गधारी भगवान् वराह हो, आप समग्र शोभा सम्पन्न सुदर्शन चक्रधारी कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थ परमेश्वर हो' इत्यादि उपनिषद् सम्बन्धी वाक्यों के द्वारा परब्रह्मत्व परमेश्वरत्व सर्वरूपित्व आदि धर्मों का प्रकाशन होने से सकल जगन्नियन्ता परमात्मा में साधारण मनुष्य होने की भावना मोक्ष प्राप्ति में बाधा उपस्थित करने वाली है। प्रकृति (मूलकारण) अथवा विकृति (कार्य) का इन दोनों का ही जहां एक साथ कथन होता है वहां पर वाचक शब्द प्रकृत्यर्थ का सम्यग् बोधक होता है न कि विकृति वाचक अर्थ का। अर्थात् प्रकृति विकृति वाचक दोनों शब्दों का एक साथ प्रयोग होने की दशा में प्रकृत्यर्थ बोध ही होता है। इस वचन के द्वारा प्रकृत्यर्थ प्रतिपाद्य श्रीरामचन्द्रजी की ही संज्ञा होगी इसलिये मूलकारण स्वरूप अर्थ की युक्ति के आधार पर सिद्धि होती है। एक मात्र शृङ्ग धारण करने वाला वराह आदि कथन से, जिसप्रकार पौराणिक कथा में है कि जीव कोटि के ऋषि श्रीशौभरी ने अनन्त शरीर धारण कर जन्म जन्मान्तर सञ्चित पुण्य पाप को एक साथ भोग कर लिया था । तव सर्वेश्वर श्रीरामजी का एक कालावच्छेदेन अथवा क्रमशः भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का अनन्त स्वरूप धारण शालिता अथवा सर्वरूप धारण शीलता और सर्वदेव प्रभुखता आदि सिद्ध होने में कौनसी आश्चर्य की वात है।

प्रणवस्य श्रीरामकार्यत्वश्रुतेः श्रीरामनाम्नः विष्णुसहस्त्रनामतुल्यश्रुतेश्च कारणापेक्षया कार्यस्य दुर्बलत्वाच्च विष्णुनारायणवासुदेवनृसिंहगोपालशिव दुर्गागणेशादिबहुदेवतामन्त्रादीनामवयवत्वं प्रणवस्य । तेन च साधारण्यम् । यथा षडक्षरतारकनाम्नः श्रीराममन्त्रस्य बीजमन्त्रशेषयोः विवर्ण्यविवरणसारूप्यं भवति, माहात्म्यतश्चैकरूपता दृश्यते न तथाऽन्यत्र । यद्यपि मन्त्रेषु श्रेष्ठताविषये तारतम्यमवलोक्यते, यथा गाणपत्यादिमन्त्रापेक्षया वैष्णवमन्त्रस्य श्रेष्ठत्वम्, किन्तु युक्तिसिद्धोऽयं पक्षः श्रुत्यपेक्षया दुर्बलः । उपनिषत्सु वाच्यश्रेष्ठत्वमश्रेष्ठत्वञ्चाश्रित्य वाचकस्य श्रेष्ठत्वमश्रेष्ठत्वं वाबगम्यते । 'सीतारामौ तन्मयावत्रपूज्याविति वाचकवाच्ययोस्तादात्म्यबोधात् । 'ओमित्येतदक्षरं सर्वमित्यादिना

प्रणव स्वरूप ओंकार का भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का कार्यत्व प्रतिपादक श्रुति वचनानुसार और भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के नाम का श्रीविष्णुके हजारों नामें के तुल्यत्व प्रतिपादक श्रुति के अनुसार, कारण के अपेक्षा कृत कार्य की दुर्बलता के कारण श्री विष्णु नारायण वासुदेव नृसिंह गोपाल शिव दुर्गा गणेश आदि बहुत से देवताओं के मन्त्रों के प्रारम्भ में उच्चारण होने के कारण सभी देवताओं के मन्त्रों का आदि अङ्ग ॐकार स्वरूप प्रणव है । और इससे सिद्ध होता है कि सभी मन्त्रों में समान रूपसे ॐकार का प्रयोग होने से सामान्यता है । जिसप्रकार षडक्षर ब्रह्म तारक नामक श्रीराम महामन्त्र के बीज स्वरूप मन्त्र एवं मन्त्र शेष चतुर्थ्यन्त नमः पदान्त मन्त्रों का अर्थात् बीज मन्त्र एवं मन्त्र शेष का विवरण करने योग्य एवं विवरण इन दोनों में एकरूपता देखी जाती है । वैसे इस श्रीराम महामन्त्र के महत्व निरूपण में भी समान रूपता देखी जाती है । उसप्रकार अन्य देवता श्रीविष्णु नारायण आदि मन्त्रों में एवं उन मन्त्रों के माहात्म्य निरूपण में समान रूपता नहीं देखी जाती है । यद्यपि मन्त्रों के विषय में यह देखा जाता है कि किसी मन्त्र का कम महत्व है उसकी अपेक्षा अन्य की अधिकता उससे भी इतर की अधिकता इसतरह न्यूनाधिक महत्व देखा जाता है । ऐसा श्रेष्ठता विषयक तारतम्य है, जैसे गाणपत्य आदि मन्त्रों की तुलना में उसकी अपेक्षा वैष्णव मन्त्र की श्रेष्ठता है, लेकिन तर्क के आधार पर सिद्ध यह पक्ष है । अतः श्रुति वचन की तुलना में यह पक्ष कमजोर है, उपनिषदों में प्रतिपाद्य अर्थ की श्रेष्ठता है। या श्रेष्ठता नहीं है इस विषय को आधार मान कर वाचक शब्द की श्रेष्ठता अथवा अश्रेष्ठता का निर्धारण समझा जाता है । अर्थात् वाच्य अर्थ की श्रेष्ठता होने पर ही

श्रुतिवचनेन प्रणवार्थप्रकाशनेन विवरणं श्रूयते । विष्ण्वादि मन्त्राक्षराणां प्रणवार्थसारूप्यं न दृश्यते । श्रीरामोपनिषदि तु श्रीराममन्त्रकृत्स्नार्थप्रकाशकत्वं मूलविवरणयोरक्षरसारूप्यं महत्वसाम्यमर्थसाम्यञ्च दृश्यते, वह्निवीजाकृतेः इव मन्त्रशेषाकृतेश्च दर्शनं भवति, विष्ण्वादिनाम्नो मन्त्राणां चापेक्षयोत्कृष्टत्वश्रवणात्। अत्रोपनिषदि जीवेश्वरयोः शेषशेषिभावः सम्बन्धादिः 'रेफारूढामूर्तयः स्युः' 'क्रियाकर्मेज्यकर्तृणामर्थमन्त्रोवदति' स्मृतिवाक्यान्यवलम्ब्य ब्राह्मणत्वसम्पादिनीं परमेश्वरनामात्मिकां गायत्रीमुपदिशन्ति आचार्याः, ध्यानादिकं तु पश्चात् । जपात्तेनैव देवतादर्शनं करोति, कलौ तु-

वाचक की श्रेष्ठता निर्धारित होती है। 'सीतारामौ तन्मयावत्र पूज्यौ' इस उपनिषद् वचन में यह देखा जाता है कि वाचक और वाच्य दोमों में ही तादात्म्य सम्बन्ध होने से एकरूपता है, यह उपनिषद् के आधार पर समझा जाता है। ॐ यह अक्षर ही सवकुछ है, सभी की कारणता होने से दोनों अर्थात् कारण कार्य में तादात्म्य मानकर सर्वत्व निरूपण है। इत्यादि श्रुति वचन के द्वारा ॐकार स्वरूप प्रणव का अर्थ स्फुटीकरण के द्वारा मन्त्रार्थ विवरण सुना जाता है। और विष्णु आदि देवता सम्बन्धित मन्त्रों के अक्षरों का अर्थ तथा उसके सहोच्चारित प्रणव का अर्थ इन दोनों में एकरूपता नहीं देखी जाती है । प्रणवार्थ एवं मन्त्राक्षरार्थ में भेद होता है । लेकिन श्रीरामतापनीय उपनिषद् में तो ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराम मन्त्र का तात्विक अर्थ प्रकाशन करने में समग्र अर्थों की प्रकाशनशीलता, मन्त्र का मूल अर्थ तथा विवरणार्थ इन दोनों में समान अक्षर होने से समरूपता, और सभी के महत्व के विषय में भी समानता देखी जाती है और सभी के अर्थ में भी समानता है ऐसा देखा जाता है। जैसी वह्नि वीज रकार की आकृति है उसीप्रकार मन्त्र शेष की आकृति का भी दर्शन होता है। किन्तु अन्य भी विशेषता है कि विष्णु आदि नाम के मन्त्रों की अपेक्षा शास्त्रों में उत्कृष्टता भी सुनी गयी है इसलिये इस श्रीरामतापनीय उपनिषद् में जीवात्मा एवं परमात्मा का परस्पर सम्बन्ध शेष शेषी भाव आदि है। परमात्मा शेषी है एवं जीवात्मा शेष है इनका उपास्य उपासकभाव आदि सम्बन्ध है। रेफ पर आरूढ मूर्तियां हैं। क्रिया कर्म एवं उपासना कर्ताओं का अर्थ को मन्त्र स्फुट करता है। स्मृति वचनों को आधार बनाकर ब्रह्मत्व का प्रतिपादन करनेवाली परमेश्वर के नामात्मक गायत्री का आचार्यगण उपदेश अपने शिष्यों को करते हैं। लेकिन मन्त्र की दृढता हो जाने के पश्चात् ध्यान आदि का उपदेश

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥
रामेतिवर्णद्वयमादरेण सदाजपन् जन्तुरुपैति मुक्तिम् ।
कलौयुगेकल्मषमानसानामन्यत्र धर्मे खलुनाधिकारः ॥

इत्यादिरूपेण श्रुतिस्मृतिभिः कलौयुगे मुमुक्षून् प्रत्युपायान्तरपरित्यागेन श्रीरामनामैकोपायत्वं शिक्षितम् । श्रुतिप्रमाणावगतस्य नाममहत्वस्य निर्बाधात् वाच्यस्य निर्वाधत्वं सर्वोत्कृष्टत्वं च सूचितं भवति । सम्प्रदायतत्वज्ञैरिदमवधेयं यद् 'जज्ञे विष्णुसनातनः' इत्यस्यार्थः→कथम्भूतो रामः विष्णुः व्यापकगुणः सनातनः अनादिव्यापकः इति । ये तु निर्णीतमपीममभिप्रायं न जायन्ति, ज्ञात्वापि न धा-

देते हैं। जप करने के पश्चात् उसी के द्वारा देवता का साक्षात्कार करता है ऐसी पूर्वकाल की स्थिति है । किन्तु कलियुग में तो सभी प्रकार से पाप हारक हरि-श्रीरामजी का नाम ही मेरा जीवन है, नाम शब्द का तीन वार प्रयोग कर इसके साथ ही नास्त्येव का तीन वार प्रयोग कर यह अभिप्राय किया जाना कि कलियुग में श्रीहरि सर्व पाप ताप हारक श्रीराम नाम के सिवाय आत्मोद्धार का दूसरा कोई भी उपाय नहीं है। प्राणी मात्र आदरता पूर्वक 'राम' इस दो अक्षरों वाला नाम को अहर्निश जप करता हुआ मोक्ष को प्राप्त करता है। इस कलियुग में पापपुञ्ज का विनाश करने के लिये श्रीराम नाम जपको छोड़कर अन्य धर्म में अधिकार नहीं है। श्रीराम नाम ही ऐसा प्रभाव शाली मन्त्र है जो सभी पापों से प्राणी का उद्धार कर सकता है। वेद एवं स्मृति शास्त्रों के द्वारा इस कलियुग में मोक्ष प्राप्त करने के अभिलाषी व्यक्ति के प्रति कहा जाता है कि अन्य कोई भी कल्पित उपाय का परित्याग के साथ एक मात्र श्रीराम नाम स्मरण ही उपाय है यह शिक्षा दी जाती है। वेद के प्रमाणानुसार ज्ञात किया गया भगवान् के नाम के माहात्म्य का बाधा रहित होने के कारण प्रतिपाद्य अर्थ की भी निर्बाधता और सर्वोत्कृष्टता सूचित होती है। साम्प्रदायिक परम्परा के रहस्यभूत तत्वों के जानकार महानुभावों को यह ध्यान पूर्वक समझना चाहिये कि 'जज्ञे विष्णुः सनातनः' का यह अभिप्राय है कि किस प्रकार के श्रीरामचन्द्रजी विष्णु अर्थात् व्यापक गुणों वाला सनातन अर्थात् अनादि काल से व्यापक है और जो विद्वान् तो सुस्पष्टता एवं प्रमाण दिग्दर्शन पूर्वक निश्चित इस अभिप्राय को समझते ही नहीं। अथवा समझ करके भी स्थिरता पूर्वक अपने मनमें धारण नहीं करते हैं अथवा जानबूझ कर भी इस तात्विक

रयन्ति नवा उपदिशन्ति स्वशिष्यान् ते परोपदिष्टार्थाच्छादितपरतत्वाज्ञानचक्षुषोनादरणीयाः । यतः श्रीमद्वाल्मीकीये 'प्रभोः प्रभुरित्यादिभिः श्रीविष्ण्वादिकारणत्वं तं प्रति प्रभुत्वं सर्वेशश्रीरामस्योपपद्यते ॥५॥

यदि कश्चिद्वदेद् श्रीरामशब्दस्य परतत्वाभिधायकत्वे तस्यैव प्रातीतिकबुद्धि निवर्तकत्वसिद्धेः 'विष्णोः पुत्रत्वमागच्छ' 'आगच्छ विष्णो भद्रन्ते 'अथ विष्णुर्महातेजाः' 'जज्ञे विष्णुः सनातनः' 'ततः प्रतिष्ठितो विष्णुरित्यादिषु 'भवान्

ज्ञान को दुराग्रहवश अपने शिष्यों को उपदेश नहीं करते हैं, वे दूसरे द्वारा उपदेश दिये गये अर्थों से आच्छादित परम तत्व ज्ञान रहित नयनो वाले लोक से आदर योग्य नहीं है क्योंकि श्रीवाल्मीकीय श्रीमद्रामायण से 'प्रभु के भी प्रभु' इत्यादि वचनों के द्वारा श्रीविष्णु आदि का कारणत्व एवं उनके प्रति श्रीरामचन्द्रजी का स्वामित्व का ही प्रतिपादन होता है ॥५॥

यदि कोई इस प्रकार कहे कि श्रीराम शब्द का परतत्त्व वाचकता में श्रीराम शब्द की ही प्रतीति मात्र से उत्पन्न होने वाली बुद्धि का निवर्तक सिद्ध होने के कारण से-'आप विष्णु को पुत्र के रूपमें प्राप्त करें' 'हे विष्णु आइये आपका मङ्गल हो' इसके पश्चात् महाप्रभाव शाली विष्णु, सनातन विष्णु आविर्भूत हुए, इसके पश्चात् विष्णु स्वर्ग में प्रतिष्ठित हुए, इत्यादि प्रयोगों में तथा 'भगवान् नारायण देव' इत्यादि वचनों में भी विष्णु नारायण आदि पदों के स्थान पर 'राम' शब्द का ही व्यवहार शास्त्रकारों के द्वारा क्यों नहीं किया गया ? इस विषय में समाधान किया जाता है कि स्वाधीन निरपेक्ष ध्वनि स्वरूप वेद के होने के कारण वेदका एवं देवताओं की परोक्ष प्रियता होने के कारण उन-उन स्थानों पर श्रुति स्मृति के द्वारा विष्णु नारायण आदि शब्दों के स्थान पर श्रीराम शब्द का प्रयोग नहीं किया गया । जैसे श्रुति में कहा गया है 'तदिदं सन्तमित्याचक्षते परोक्ष प्रिय इव हि देवा' इत्यादि श्रुति वचनों से देवताओं का परोक्ष प्रियत्व व्यक्त होता है । स्मृति में भी कहा है कि यह वेद परोक्ष विषय को प्रतिपादित करनेवाले और परोक्ष मेरा प्रिय है । कोई विशिष्ट प्रकार का अधिकारी ही इस विषय को समझे, अन्य साधारण जनसमूह नहीं समझे यह विचार कर वेद में श्रीराम शब्द का मुख्य वाचकत्व छिपाया गया है ।

रावण नामक राक्षसराज का वध चाहने वाले देवों एवं मानवों के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर सभी स्थानों पर व्यापक रूपसे विराजमान सनातन अर्थात् अनादि सत्

नारायणोदेव' इत्यादिषु च विष्णवादिपदस्थाने श्रीरामशब्दस्यैव प्रयोगः किं न कृतः ? अत्रोच्यते स्वतन्त्रकार्यव्यापारपरकश्रुतेः नियोज्यानुयोज्यविषयत्वात् वेदस्य देवानाञ्च परोक्षप्रियत्वात् तथानोक्तम्, तदिदं सन्तमिन्द्रमित्याचक्षते 'परोक्षप्रिया इव हि देवा' इत्यादिश्रुतिभ्यः प्रतिपादितम् । 'परोक्षवादो वेदोऽयं परोक्षं च मम प्रिय' इतिस्मृतेश्च । कश्चिद् विशिष्टाधिकारी जानातु नान्य इतिवेदेन श्रीरामशब्दस्य मुख्यवाचकत्वं गोपितम् । रावणस्य वधाकांक्षिभिः लोकैः देवैश्चार्थितः सर्वत्रव्यापकः सनातनः अनादिः सच्चिदानन्दः अपरिच्छिन्नात्मकः

चित् आनन्द स्वरूप असीमित स्वरूपधारी श्रीरामचन्द्रजी इस भूमण्डल पर आविर्भूत हुए । यह 'जज्ञे विष्णुः सनातनः' का निर्गलितार्थ है । इस प्रकरण में श्रीराम पदका क्रियान्वयी होने के कारण अर्थात् क्रिया के साथ साक्षात् सम्बन्ध होने के कारण वाक्य में विशेष्यता है एवं श्रीविष्णु पद की विशेषणता है । श्रीराम शब्द में होने वाला समस्त सत् चित् आनन्द स्वरूप परब्रह्म का साक्षात् प्रतिपादक है । और भी कहा गया है कि स्वयं प्रकाशमान जिनका कोई अन्य प्रकाशक नहीं है, दिव्य ज्योति स्वरूप अगणित स्वरूपों को धारण करनेवाले स्वयं अपने तेज से ही प्रकाशित होते हैं । सत् चित् आनन्द जिनका नामकरण है इनकी उपासना करनी चाहिये । जिनके नामाक्षर के रेफ पर आरूढ मूर्तियां हैं । इत्यादि श्रुतियों के द्वारा दिव्य चैतन्य स्वरूप में श्रीराम शब्द का परब्रह्म वाचकत्व है । और श्रीरामचन्द्रजी में ब्रह्मा विष्णु शिव आदि को आश्रय प्रदायकत्व है । इसप्रकार श्रुति स्मृति वचनों से अवगत होता है । उस श्रीरामचन्द्रजी नामक परब्रह्म परमेश्वर जो परात्पर हैं ''परान्नारायणाच्चैव कृष्णात्परतरादपि । यो वै परतमः श्रीमान् रामोदाशरथिस्वराट्'' इत्यादि रूपसे आगम ने श्रीनारायण से परतर श्रीकृष्णजी से भी परतम यानी परात्पर स्वरूप है एवं दो भुजाओं को धारण किये हैं, इसप्रकार की जिनकी नित्य आकृति है, वे अपने नित्य आकृति से ही अयोध्या नामक प्रदेश विशेष में आविर्भूत हुए, ऐसा अभिप्राय समझना चाहिये ।

यदि तो 'चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ' 'जज्ञे विष्णुः सनातनः' 'विष्णोपुत्रत्व मागच्छ' इत्यादि श्रुति स्मृति के वचनों में विष्णु शब्द मात्र का श्रवण के कारण विष्णु को श्रीरामचन्द्रजी का कारणत्व स्वीकार कर लेते हैं तब 'अहं ब्रह्मास्मि' मैं ब्रह्म हूँ इत्यादि श्रुति वचनों का भी केवल श्रवण मात्र से ही द्वैतार्थ बोधकता है ऐसा सिद्धान्त

श्रीरामः जज्ञे आविर्भूव इति 'जज्ञे विष्णुः सनातनः' इत्यस्यार्थः । अत्र श्रीराम पदस्य क्रियान्वयित्वेन विशेष्यत्वं विष्णुपदस्य च विशेषणत्वम् । श्रीराम शब्दनिष्ठाशेषसच्चिदानन्दस्वरूपपरब्रह्मसाक्षात् प्रतिपादकत्वम् तथा च- 'स्वभूर्ज्योतिर्मयोऽनन्तस्वरूपीस्वेनैव भासते' 'सच्चिदानन्दाख्या इत्युपासितव्यम्' 'रेफारूढा मूर्तयः स्युः' इत्यादिश्रुतिभिः चित् स्वरूपत्वेन परब्रह्मवाचकत्वं ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्रयत्वं चावगम्यते । तस्य परब्रह्मणः श्रीरामाख्यस्य परात्परस्य द्विभुजादिनित्याकृत्यैवात्रायोध्यायामाविर्भाव इतिबोध्यम् ।

यदि तु 'चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ' 'जज्ञे विष्णुं सनातनः' 'विष्णो पुत्रत्व मागच्छ' इत्यादिषु विष्णुमात्रश्रुतेः विष्णोः कारणत्वमङ्गीक्रियते तदा 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्यादीनामपि श्रुतिमात्रेण द्वैतार्थकत्वं स्वीकर्तव्यं स्यात् । तेन श्रीरामपरत्वहानिरिवद्वैतस्य विशिष्टाद्वैतस्य च हानिः, अद्वैतवादिभिरपि 'भोक्ता स्वीकार करना पड़ जायगा । द्वैतार्थ बोधन परकता स्वीकार कर लेने पर जिसप्रकार श्रीरामचन्द्रजी के परत्त्व की हानि होगी उसी तरह द्वैत सिद्धान्त अद्वैत सिद्धान्त एवं विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त की भी हानि होगी । अद्वैत सिद्धान्त प्रतिपादक मनीषियों के द्वारा भी-भोग करने वाला, भोग करने योग्य एवं प्रेरणा प्रादन करनेवाला समझ कर जानकार चित, नहीं जानने वाला जड, अजन्मा ईश्वर शासन कर्ता, पराधीन (ईश्वर के अधीन रहनेवाला) इत्यादि श्रुतिवचनों का सुस्पष्ट रूपसे द्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादक होने से अद्वैतमत की सुस्पष्ट रूपसे हानि होगी । इसलिये जैसा न्यायोचित है उस सिद्धान्त को मानकर, ब्रह्म शब्द की ब्रह्मात्मकता अर्थ में समन्वय करके श्रौतविशिष्टाद्वैत मत में ही समस्त श्रुतियां अविरोध रूपसे समन्वित होती हैं इस आशय को जानना चाहिये । इस तरह समन्वय करने पर द्वैतार्थ बोधन परत्व एवं विशिष्टाद्वैतार्थ बोधन परत्व युक्ति एवं तर्क के आधार पर उपपन्न होता है । ऐसा श्रीवैष्णवों के द्वारा स्वीकार किया जाता है । सभी श्रुतियों का अविरोध समन्वय प्रकार को जगद्गुरु श्रीश्रुतानन्दाचार्य प्रणीत सर्वश्रुतिसमन्वय में देखना चाहिये ।

इसप्रकार श्रुति स्मृति वचनों के अनुरोध से अप्रधान अर्थ बोधक होने के कारण श्रीरामजी का कारण श्रीविष्णु हैं इस कारणतावाद का निराकरण करके श्रीरामचन्द्रजी निष्ठ कारण परकता का सिद्धान्त वारम्वार प्रतिपादन किया जा चुका है। यह सिद्धान्त स्फुट रूपसे समझ में आवे इसलिये श्रीरामनिष्ठ कारणता का मणी

भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा' 'ज्ञाज्ञावजावीशानीशौ' इत्यादिश्रुतीनां स्फुटं द्वैतार्थबोधकत्वेनाद्वैतस्य हानिः । तस्माद् यथान्यायं ब्रह्मशब्दस्य ब्रह्मात्मके लक्षणया 'अहं ब्रह्मात्मकोऽस्मि' इतिद्वैतार्थपरत्वं श्रौतविशिष्टार्थपरत्वं चोपपाद्यते श्रीवैष्णवैः । एवम् श्रुतिस्मृतिवचनानुरोधेन गौणार्थकतया श्रीविष्णुकारणपरत्वं निरस्य श्रीरामनिष्ठकारणपरत्वमसकृदुपपादितमस्माभिः । तत्त्वविद्भिः सर्वेषां श्रुतिस्मृतिवचनानां बलाबलत्वं गौणमुख्यार्थकत्वं च विविच्य सत्सम्प्रदाय तत्त्वविद्भिः विद्वद्भिश्चिन्मयस्यावतारित्वेनावतारत्वेन चैकरूपत्वं, सर्वव्यापकत्वादिगुणविशिष्टत्वेन च सर्वोत्कृष्टत्वं, स्वाश्रितजनदुःखहारित्वेनातिकारुणिकत्वं, चोपपादितम् । तस्य सच्चिदानन्दब्रह्मणोनिःशेषवाचकत्वेन श्रीरामेति मुख्यनामध्येयमस्ति । इत्युपपादयितुं दशरथगृहाविर्भावानन्तरं तस्य 'राम' नाम बभूव, पूर्वन्तु विष्ण्वादिसंज्ञासीदिति तु अन्धपरम्परैव । विचारहीनानां श्रीरा-

अवलोकन न्याय से अनेक वार मुझ से निरूपण किया गया है। तत्त्व ज्ञानी महानुभावों के द्वारा समस्त श्रुति स्मृति वचन कलाप को बलिष्ठता एवं दुर्बलता का अच्छी तरह विचार करके कहां पर प्रधानार्थ बोधकता है एवं कहां पर गौणार्थ बोधकता है इस तथ्य का गुण दोष विवेचन करके प्रशंसनीय साम्प्रदायिक रहस्य तत्त्वज्ञानी विद्वानों के द्वारा भी बलाबल गौण मुख्यार्थ बोधकत्व आदि का विचार करके समझना चाहिये कि चिन्मय सर्वावतारी श्रीरामचन्द्रजी का सर्वावतारी के रूपमें एवं अवतार के स्वरूप में एकरूपता है, भेद नहीं । और सर्व व्यापकत्वादि गुण विशिष्टत्व के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी का सर्वोत्कृष्टत्व सिद्ध होता है। अपने आश्रय में आगत प्राणियों का समस्त दुःख निवारक के स्वरूप से अत्यन्त करुणाशीलता रूप अर्थ प्रकाशित होता है यह प्रतिपादित किया गया। उन श्रीरामचन्द्रजी का सत् चित् एवं आनन्द स्वरूप परिपूर्ण ब्रह्म का वाचक होने के कारण श्रीरामचन्द्रजी इस मुख्य नाम का ही ध्येयत्व सिद्ध होता है। इस अभिप्राय का प्रतिपादन करने के लिये कि महाराज दशरथजी के घर में आविर्भाव के पश्चात् ही उनका 'राम' यह नामकरण हुआ पूर्वकाल में तो उनकी 'विष्णु' यह संज्ञा थी-इस तरह का विचार स्वीकार करना तो अन्ध परम्परा मात्र ही है। जो विवेक रहित हैं एवं श्रीरामचन्द्रजी में जिनकी न्यूनता की भावना है ऐसे लोगों को ही इस प्रकार की मति भ्रान्ति होती है। इसलिये इन न्यूनतावादी दृष्टि वालों के विचार का खण्डन करके 'जिन में योगिजन रमण करते हैं' इत्यादि

मचन्द्रन्यूनदृष्टीनां तादृशमतिभ्रान्तिस्तन्निरस्य 'रमन्ते योगिनः' इत्यादिभिः श्रीरामनामनिर्वचनं च विधाय श्रीरामनाममुख्यत्वं 'रघुकुलेखिलं रातीत्यारभ्य 'परब्रह्माभिधीयते' इत्याद्याः श्रुतयः प्रकाशयामासुः ॥६॥

वचनों के द्वारा श्रीराम नाम का अच्छी तरह निर्वचन करके श्रीराम नाम की प्रमुखता 'रघुकुलेऽखिलं राति' इस वचन से प्रारम्भ कर-'परब्रह्माभिधीयते' पर्यन्त की सभी श्रुतियां श्रीरामजी की प्रधानता का प्रकाशन की ॥६॥

रघुकुलेऽखिलं राति, राजते यो महीस्थितः ।
स राम इति लोकेषु विद्वद्भिः प्रकटीकृतः ॥१॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्रजी रघुकुल में अवतीर्ण होकर अपने समस्त भक्त जनों के सभी कामनाओं की परिपूर्णता प्रदान करते हैं। इस भारत धरा पर विराजमान रहकर समस्त भक्तजनों के लिये सर्वथा सर्वदा सुलभ हैं। वे समस्त योगिजनों के हृदयाभिराम राम है यह तत्त्वज्ञानी विद्वानों के द्वारा अनादि सिद्ध श्रीरामनाम का सभी लोकों में प्रकाशन किया गया ॥१॥

श्रुतिरियं श्रीरामनाम्नः निर्वचनं करोति । तत्र निरुक्तिद्वयमाह-एका तु राति इत्यर्थके रा शब्दे महीस्थित इति मकारे योजिते सति 'राम' इतिनिष्पत्तिः । द्वितीया तु राजते इत्यर्थके रा शब्दे महीस्थित इत्यस्य म कारे योजिते सति 'राम' शब्दो निष्पद्यते । तत्र प्रथमस्यायमर्थोयत् यः चिन्मयः रघुकुले आविर्भूय राति

यह 'रघुकुलेऽखिलम्' इत्यादि श्रुति भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के नाम का व्याकरण शास्त्रादि व्युत्पत्ति निरूपण भावना से निर्वचन करती है। उस निर्वचन में 'राम' नाम का दो तरह से निर्वचन किया गया है। प्रथम निर्वचन तो 'रा दाने' इस अर्थ वाला रा धातु प्रदान करते हैं एतदर्थ बोधक राति का रा एवं महीस्थित का म इन दोनों वर्णों की योजना करने पर 'राम' शब्द निष्पन्न होता है। दूसरी व्युत्पत्ति तो यह है कि राजते अर्थात् सुव्यक्त रूपसे विराजमान है इस अर्थ वाला राजते का रा एवं महीस्थित शब्द के म वर्ण इन दोनों वर्णों की योजना करने पर 'राम' शब्द निष्पन्न होता है। इन दोनों व्युत्पत्ति मूलक शब्दों में प्रथम 'राम' शब्द का यह अर्थ होता है कि-जो दिव्य ज्योतिर्मय महाराज रघु के वंश में आविर्भूत होकर अपने समस्त भक्तजनों के लिये सभी प्रकार के चाहे गये मनोरथों को प्रदान करते हैं वे 'राम' हैं।

स्वभक्तानां कृते सकलमभिमतं ददाति इति 'रामः' । तथा च यो निजभक्तजनाभिमतप्रदोराजते महीस्थितः सन् स 'रामः' इतिसर्वेषु लोकेषु तन्निवासिजनेषु विद्वद्भिस्तत्त्वस्वरूपयाथातथ्यविद्भिः श्रीवशिष्ठपराशरव्यास शुकादिभिः प्रकटीकृतः । तत्त्वविदां विदुषां माध्यमेन ते लोकाः तस्य परब्रह्मणः 'राम' इति संज्ञां ज्ञातवन्तः । चिन्मयमहीस्थितपदाभ्यां सर्वजनसुलभत्वं सुसेव्यत्वञ्च बुध्यते । महीस्थितः सन्नखिलं राति इति तु सुलभत्वे सत्यखिलाभीष्टप्रदत्वं, अखिलाभीष्टप्रदानाय वा सुलभीभूतमिति चाश्रयार्हत्वं
और इसीप्रकार दूसरे का यह अभिप्राय है कि-जो अपने समस्त भक्तगण के अभीष्ट मनोरथ को प्रदान करनेवाले विराजमान हैं वे इस भूमण्डल की पावन भूमि में विराजमान होकर स्थित है वे श्रीरामजी हैं । उक्त मन्त्र में सर्वेषु लोकेषु-इस कथन से सभी लोकों में निवास करनेवाले लोगों में, तथा विद्वद्भिः शब्द के द्वारा तत्त्व के वास्तविक स्वरूप के सत्यता असत्यता को यथार्थ रूपमें जाननेवाले विद्वानों के द्वारा अप्राकशित तत्त्व सुस्पष्ट रूपसे प्रकाशित किया गया । रहस्य तत्त्वों को जानने वाले विद्वानों के माध्यम से वे सभी लोकों में निवास करनेवाले प्राणी उस परब्रह्म परमेश्वर की 'राम' इस संज्ञा को समझ पाये । चिन्मय एवं महीस्थित इन पदों के द्वारा-भगवान् श्रीरामचन्द्रजी आबालबृद्ध एवं आपामर विद्वज्जन सभी लोगों के लिये सुलभ होते हुए, सभी के द्वारा सरलता पूर्वक उपासना करने योग्य हैं यह अर्थ समझा जाता है। पृथिवी पर विराजमान होते हुए सभी भक्तगण के लिये सुलभ होकर सभी लोगों के मनोभिलषित फलको प्रदान करनेवाला अथवा सभी भक्तजनों को अभिमत फल प्रदान करने के लिये दुर्लभ होते हुये भी अनुकम्पावश सुलभ हो गये हैं, इसलिये आश्रय ग्रहण करने योग्य हैं यह तात्पर्य विशेष रूपसे ज्ञात होता है । 'महीस्थित' इस पद के द्वारा उन भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के समान अथवा उनसे वढकर कोई अन्य देवता नहीं है इसतरह का अभिप्राय समझ में आता है । तत्त्वज्ञानी महापुरुषों के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी का नाम तीनों लोकों में प्रकाशित किया गया इस कथन के द्वारा यह अभिप्राय प्रकाशित होता है कि-भगवान् श्रीरामचन्द्रजी में अपने आश्रित भक्तगण के मनोभिलषित समस्त कामनाओं को प्रदानशीलता है । एवं श्रीरामचन्द्र भगवान् में इस भूमण्डल में उपलब्ध होने से पृथिवी पर प्रकाश शीलता है अर्थात् इस पृथिवी पर ही स्थित हैं, उनकी प्राप्ति के लिये लोक लोकान्तर में भटकने की जरुरत नहीं है ।

चेति विज्ञायते । 'महीस्थितः' इतिपदाभ्यां तत् समाऽभ्यधिकश्च नान्यकश्चिदिति बोध्यते । 'विद्वद्भिः प्रकटीकृतः' इत्यनेन च निजभक्तजनाभीष्टप्रदत्वं मह्यां प्रकाशमानत्वञ्च 'रामे' त्यभिधानस्य हेतुरुच्यते । इत्थमत आरभ्य 'रामाख्याभुवि स्यादित्यन्तं तस्य गौणश्रीरामस्य तस्य गुणादयश्च बोध्याः । वक्ष्यमाणस्य चानादिसिद्धस्य श्रीरामस्य चिन्मयपरत्वे आविर्भूते सति अप्रधानस्य श्रीरामस्य प्रवृत्तिहेतवः तत् सम्बन्धिनोगुणाः प्रदर्शिताः 'रघुकुलेराती'त्यादिना, चिन्मयस्य तत्त्वस्याविर्भावानन्तरं तदीयगुणकर्मादीनां प्रकाशनमभिलक्ष्य विद्वद्भिस्तस्य 'रामे'तिनाम्नः प्रकटीकरणात् गौणश्रीरामनाम्नः सुसिद्धिर्भवति । यद्यपि वेदार्थोपबृंहणस्वरूपेष्वितिहासपुराणादिषु श्रीरामावतारोक्तिः न संगच्छते, तथाऽपि भूयोभूयः अवताराणामाविर्भावतिरोभावश्रवणेनानादित्वे न हानिः । तद् गुणाविष्करणस्याप्यनादित्वं सिध्यत्येव ।

यही 'रामचन्द्र' इस नामकरण का कारण कहा जाता है। अर्थात् 'राम' इस नामकरण से ही यह आशय प्रकाशित होता है कि सर्वजगत् कारण श्रीरामजी इस धरा पर अपने भक्तों के लिये सुलभ हैं। इसप्रकार इस 'रघुकुलेऽखिलं राति' इस मन्त्र से आरम्भकर 'रामाख्या भुवि स्यात्' इस मन्त्र पर्यन्त अप्रधानीभूत श्रीरामचन्द्रजी का एवं श्रीरामचन्द्र भगवान् के गुण क्रिया आदि विशेष धर्म आदि को समझना चाहिये। जिनके तात्विक स्वरूप गुण क्रिया आदि वैशिष्ट्य का आगे निरूपण किया जाना है इसप्रकार के अनादि काल से सिद्ध भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का चिन्मय स्वरूपार्थबोधन परक परम तत्त्व सर्वकारण महाराज दशरथजी के घर रघुकुल में आविर्भूत होने पर अप्रधान राम के व्यवहार के कारण बने हुए श्रीरामचन्द्रजी से सम्बन्धित वात्सल्य औदार्य कारुणिकत्व आदि गुण प्रदर्शित किये गये हैं। रघुकुले राति इत्यादि मन्त्र के माध्यम से, उन परम दिव्य तेज स्वरूप चिन्मय तत्त्व का आविर्भाव होने के पश्चात् उनसे सम्बन्धित गुण क्रिया आदि का समस्त लोकों में प्रचार-प्रसार आदि के द्वारा सभी प्राणियों की कल्याण भावना लक्षित कर तत्त्व विज्ञानी विद्वानों के द्वारा उन चिन्मय तत्त्व का श्रीरामचन्द्रजी इस अनादि सिद्ध नाम का प्रकटीकरण के कारण अप्रधान रामनाम की भी सरलतापूर्वक सिद्धि हो जाती है। यद्यपि श्रुति वचनों के तात्पर्यार्थ का उदाहरण प्रत्युदाहरण आदि के द्वारा सम्बर्धन स्वरूप इतिहास पुराण आदि ग्रन्थों में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के अवतारत्व का निरूपण संगत नहीं होता है। ऐसी

अथ द्विविधश्रीरामनामनिर्वचनेन तस्य द्वैविध्यं सूचयित्वा, स्वपूर्ववाक्यैः श्रीरामनाम्नोऽप्रधानत्वम् 'रमन्ते योगिनः' इत्याद्युतरवाक्येन च तस्य मुख्यत्वं सूचयित्वा तद्वाच्यस्वरूपपरत्वेन तस्य तादात्म्येन मुख्यवाचकत्वञ्च प्रकाश्य-'चिन्मयेऽस्मिन्' 'रामाख्या' इतिवाक्याभ्यामवतारिण अपि चिन्मयस्य श्रीरामस्य सच्चिदानन्दार्थकप्रधानश्रीरामनामवाच्यत्वेनावतारित्वं गौणश्रीरामनामवाच्यत्वेन च गुणादिप्रकटनं, तस्य भुव्यवतरणादवतारत्वम् । इत्थं तस्यावतारिणः सतः स्वयमेव भुव्यवतारः । अयमेवार्थः 'उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणोरूपकल्प-ने'त्यादिभिः श्रुतिभिः प्रकाश्यते ॥७॥

साधारण रूप असंगति दृष्टि गोचर होने पर भी वार-वार अवतारों का होना एवं उसे उद्देश्य हो जाना स्वरूप आविर्भाव तिरोभाव ग्रन्थों में सुने जाने के कारण श्रीरामचन्द्रजी के अनादित्व में किसी तरह की क्षति नहीं होती है। उन श्रीरामचन्द्रजी के गुणों का प्रकटीकरण की भी अनादित्व की साधकता ही होती है।

इसके वाद यह निरूपण किया जाता है कि दो तरह से भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के नाम का निर्वचन किये जाने से श्रीरामचन्द्रजी की द्विविधता को प्रकाशित करके उपनिषद् ने अपने पूर्व प्रतिपादित वाक्यों के द्वारा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के नाम की अप्रधानता बताया। पुनः रमन्ते योगिनः इत्यादि वचनों के द्वारा उत्तर कालिक वाक्यों से श्रीरामचन्द्रजी की प्रधानता को सूचित करके उस राम नाम के वाच्यार्थ स्वरूप बोधन परक होने से उस वाच्यार्थ के परस्पर तादात्म्य सम्बन्ध होने के कारण प्रधानार्थ वाचकता रूपका प्रकाशन करके चिन्मयेऽस्मिन्.., रामाख्या भुवि...इत्यादि वाक्यों के द्वारा अवतारी अनादि सिद्ध चिन्मय श्रीरामचन्द्रजी का भी सत् चित् आनन्द स्वरूप अर्थ है प्रधान जिसका ऐसे श्रीराम नाम का वाच्य अर्थ होने से अवतारित्व एवं अप्रधान श्रीराम नाम के द्वारा उनके गुण क्रिया आदि का आविष्कार किया जाना, उन श्रीरामचन्द्रजी के मुख्य अवतारत्व को प्रकाशित करता है। इसप्रकार उन अवतारी श्रीरामचन्द्रजी के होते हुए भी स्वयमेव मुख्य अवतारत्व प्रतिपादित होता है। और इसी तात्पर्यभूत अर्थ को 'उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणोरूपकल्पना' इत्यादि श्रुति वचनों के द्वारा निरूपित किया गया है ॥७॥

अथ पुनः तस्य भगवतो रामस्य नाम्नः प्रकारान्तरेण निर्वचनम् 'राक्षसायेन' इत्यादिना मन्त्रेणाह-

राक्षसायेन मरणं यान्ति स्वोद्रेकतोऽथवा ।
रामनाम भुवि ख्यातमभिरामेण वा पुनः ॥२॥

इसके वाद पुनः उन सर्वलोक विख्यात भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के नाम का फिर से अन्य प्रकार से निर्वचन 'राक्षसायेन' इत्यादि मन्त्र के द्वारा करते हैं कि-जिन कारणभूत श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा राक्षसगण मृत्यु को प्राप्त करते हैं। अथवा अपने में 'राम' की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होने की शङ्का से अधिक सामर्थ्यवान् श्रीरामजी के हाथों से मृत्यु को प्राप्त करते हैं। अथवा पुनः सर्वतोभावेन सौन्दर्य सम्पन्नता के कारण प्राणी मात्र के मन को आनन्दित करने से 'राम' यह नाम इस भूमण्डल में विख्यात हुआ ॥२॥

येन हेतुभूतेन श्रीरामचन्द्रेण स्वस्य आत्मनः सामर्थ्याद्यतिक्रमणवशाद् स्वापेक्षश्रीरामनिष्ठाधिक्यतः राक्षसा मृत्युं प्राप्नुवन्ति, श्रीरामेणमारिता इति भावः। तेन श्रीरामनामभूमौ विख्यातम्। अत्र राक्षसार्थके 'रा' शब्दे मरणं यान्तीत्यर्थेन म कारेण सह योजनायां 'राम' शब्दस्य निर्वचनं भवति। एतेन श्रीरामः स्वभक्तानामनिष्टकारिणः कामक्रोधलोभमोहादीन् विनाशयतीति बोध्यते। तस्य नाम्नोऽन्यन्निर्वचनमाह श्रुतिः→अभिरामेणेति-सुन्दरेण कमनीयेन वपुषा वा श्रीरामनामभुवि प्रसिद्धम्। वपुषा 'रामः' सुन्दरः' इतिश्रीराम-शब्दार्थः। तथा च कालिदासः-

"राम इत्यभिरामेण वपुषा तस्य नोदितः। नामधेयं गुरुश्चक्रे जगत्प्रथममङ्गलम्"

जिन कारणभूत श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा जिन राक्षसों में श्रीरामजी को जीतने का सामर्थ्य नहीं है किन्तु अज्ञानवश अपने सामर्थ्य आदि का अतिक्रमण करने के कारण अपनी अपेक्षाकृत श्रीरामजी की अधिकतावश राक्षसगण श्रीरामजी के हाथों से मृत्यु को प्राप्त करते हैं। अर्थात् श्रीरामजी के द्वारा राक्षसगण मार दिये गये। इस कारण से श्रीरामचन्द्रजी का नाम इस भूमण्डल में विख्यात हुआ। इस मन्त्र के राक्षस अर्थ वाला रा शब्द में मरणं यान्ति इस अर्थ वाला म अक्षर को जोड़ देने पर 'राम' शब्द का निर्वचन होता है। इस निर्वचन के आधार पर यह अभिप्राय प्रकाशित होता

एतेन भगवन्नामान्तराणां सौन्दर्यप्रकाशकत्वाश्रवणात् अस्य तु सौन्दर्य परत्वश्रुतेः सर्वेश्वरश्रीरामवाच्ये सर्वोत्तमश्रृङ्गारसम्पत्तिः श्रूयते । इममेवाभिप्रायं श्रीमद्रामायणे 'रूपबृंहयामास' 'सदैव प्रियदर्शनः' 'सर्वलोकप्रियः साधुः' इत्यादिरूपेण निरूपितम् । तथा च-

"चन्द्रकान्ताननं राममतीवप्रियदर्शनम् ।
रूपौदार्यगुणौ पुंसां दृष्टिचित्तापहारकम् ॥
रूपसंहननं लक्ष्मीं सौकुमार्यं सुवेषताम् ।
ददृशुः विस्मिताकारा रामस्य वनवासिनः ॥

है कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने भक्तजनों के अमङ्गल करने वाले अन्तःकरण में स्थित काम क्रोध लोभ मोह आदि आन्तरिक शत्रुओं का संहार करते हैं। यह तात्पर्य समझा जाता है। श्रुति उस 'राम' नाम का दूसरा निर्वचन अन्य प्रकार से कहती है। 'अभिरामेण' इस शब्द से अर्थात् सुन्दर सर्वतोभावेन कमनीयता (चाहने योग्य) होने से अर्थात् अनुपम सुन्दरता सम्पन्न शरीर होने से 'राम' नाम पृथिवी पर प्रसिद्ध हुआ। शरीर से 'राम' सुन्दर है यह श्रीराम शब्द का दूसरा अर्थ हुआ। इसीप्रकार महाकवि श्रीकालिदासजी कहते हैं कि-सर्वतोभावेन सुन्दरता युक्त शरीर होने के कारण उनके शरीर सौन्दर्य से प्रेरित होकर उनके पिता महाराज दशरथ संसार का सर्वमुख्य मङ्गल बोधक 'राम' यह नामकरण किये। इससे यह सिद्ध होता है कि भगवान् के अन्य नामों के सुन्दरता का प्रकाशक नहीं सुने जाने से, और इस श्रीरामनाम का सौन्दर्य अर्थ बोधन परक होने से श्रीरामचन्द्रजी के नाम के वाच्य (प्रतिपाद्य) अर्थ में सभी लोकों के सर्वोत्तम श्रृङ्गार सम्पत्ति है ऐसा सुना जाता है। इसी अभिप्राय को भगवान् महाकवि श्रीवाल्मीकिजी विस्तार युक्त करके कहते हैं→सभी समयों में प्रिय है दर्शन जिनका ऐसे संसार के सभी चराचर प्राणियों के लिये प्रिय एवं सत् जन। इसीप्रकार और भी चन्द्रमा के समान निरतिशय चराचर कमनीय सुन्दर मुख जिनका है। सर्व लोक प्रिय दर्शन जिनका है रूप एवं उदारता गुणों से सम्पन्न श्रीरामजी का प्राणी मात्र के मन को चुरानेवाले सौन्दर्य युक्त शरीर शोभा सुकुमारता एवं सुन्दर वेषभूषा को देखकर सभी वनमें निवास करनेवाले प्राणी अपने तन मन धन को भूल कर आश्चर्य चकित स्वरूप होकर तन्मयता पूर्वक देखे। पद्मपुराण में भी इसी प्रकार श्रीरामचन्द्रजी के सौन्दर्य के सम्बन्ध में कहा गया है-प्राचीन काल में सभी दण्डकारण्य नामक वनमें

पाद्मेऽपि तथैवोक्तम्-पुरा महर्षयः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः । दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तुमैच्छन् सुविग्रहम् ॥८॥

निवास करने वाले महर्षिगण जन्म जन्मान्तरीय समस्त पाप एवं सन्ताप को हरण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी को दण्डकारण्य में देखकर उन दिव्य रमणीय सुन्दर शरीर शोभा को निर्तिमेष दृष्टि से आत्मसात् कर लेने की इच्छा किये ॥८॥

राक्षसान् मर्त्यरूपेण राहुर्मनसिजं यथा ।
प्रभाहीनांस्तथा कृत्वा राज्यार्हाणां महीभृताम् ॥३॥
धर्ममार्गं चरित्रेण ज्ञानमार्गं च नामतः ।
तथा ध्यानेन वैराग्यमैश्वर्यं यस्य पूजनात् ॥
तथा रामस्य रामाख्या भुवि स्यादथ तत्त्वतः ॥४॥

जिसप्रकार राहु चन्द्रमा को हतप्रभ कर देता है, उसीप्रकार मरण धर्म मनुष्य का स्वरूप धारण कर रावण आदि क्रूरकर्मा राक्षसों को हतप्रभ कर देते हैं। उसीप्रकार राज्य शासन सञ्चालन करने योग्य पृथिवी पालक राजाओं के लिये अपने चरित्र अर्थात् आचार विचार के द्वारा धर्ममार्ग, अपने मङ्गलमय नाम से ज्ञानमार्ग और ध्यान (चिन्तन आदि के) द्वारा वैराग्य, तथा जिनकी पूजा उपासना आदि से सर्वविध ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये उपदेश देते हैं, अतः इस संसार में सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी का 'राम' यह नाम इस तरह तात्विक रूपसे प्रसिद्ध हुआ ॥३/४॥

अत्रश्रुतौ श्रीरामनाम्नोऽन्यन् निर्वचनमाह-यथाराहुः ग्रहणसमयेमनसिजं चन्द्रं प्रभाविहीनं करोति तथैव यः श्रीरामचन्द्रः रावणादीन् राक्षसान् मरणधर्मणो मानवस्याभिनयेन प्रभाहीनान् विधाय, मर्त्यरूपमिवरूपं यस्य तेनेति समासः, सूर्यचन्द्रवंश्यानां राज्ययोग्यानां महीभृतां राज्ञां धर्माचरणेन चरित्रेण धर्ममार्गं ज्ञानमार्गं ध्यानेन वैराग्यं पूजनात् ऐश्वर्यं राति ददाति भगवान्, अस्मात् अनादिसिद्धसच्चिदानन्दार्थकस्य रामाख्या वर्णितगुणगणवशात् रामेति संज्ञा

जिसप्रकार राहु ग्रहण के समय आने पर 'चन्द्रमा मनसो जातः' इस श्रुति के अनुसार मनसिज अर्थात् चन्द्रमा को प्रकाश से विहीन कर देता है उसीप्रकार जो सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी रावण आदि राक्षसगण को मरण धर्मा मनुष्य के अभिनय के द्वारा प्रभाव से विहीन करके, यहां पर मर्त्य के स्वरूप के समान स्वरूप है जिनका

भुवि पृथिव्यामित्युपलक्षणाद्लोकत्रयेऽपि जाता । अत्र चिन्मयस्य रामाख्या इतिश्रुतेः अनादिसच्चिदानन्दार्थकपरब्रह्मवाचकश्रीरामपदवाच्यस्य भुवि श्रीरामाभिधानोक्तेः तस्यैवावतारित्वम् । दशरथगृहेऽवतीर्णस्य तद् गुणकर्मार्थक रामपदवाच्यत्वेनावतारत्वञ्च निरूपितं भवति । अन्यथा विष्णोः हरेः नारायणस्यान्यस्य वा 'रामाख्या' भुवि स्यादित्येवोक्तं स्यात् । रातेः कर्तरि औणादिकम्प्रत्ययेन 'रामः' तस्य चात्र राकारमकारयोश्चत्वारोऽर्थाः, राक्षसान् मर्त्यरूपेण इति एकोऽर्थः, राहुर्मनसिजं यथेति, द्वितीयः । रा प्रभातया हीनान् इतितृतीयः रादीप्ताविति, मकारस्तु लयः स्मृतः इत्युक्तेः । चतुर्थस्तु राज्यार्हाणाम्महीभृतामिति चरित्रादिना कथं राज्ञां धर्मादिसिद्धिरिति जि-ज्ञासायामुच्यते । चरित्रं नामसदाचार उच्यते, स च धर्महेतुः, भगवतः श्रीरामस्य

इस तरह मध्यम पद लोपी समास है । सूर्य तथा चन्द्रवंश में जन्म ग्रहण करनेवाले राज्य शासन व्यवस्था करने योग्य पृथिवी पालक राजाओं का धर्म आचरण द्वारा चरित्र से धर्म मार्ग को, ध्यान के द्वारा ज्ञान मार्ग को, पूजन उपासना से परम वैराग्य को एवं ऐश्वर्य को प्रदान करते हैं । इन कारणों से अनादि काल से सिद्ध सत् चित् आनन्द इस अन्वर्थक 'राम' यह नाम वर्णन किये गये गुण समूह के कारण 'राम' यह नाम इस भूमण्डल पर प्रसिद्ध हुआ, यहां पर भू पद उपलक्षण होने से तीनों ही लोकों में 'राम' यह नाम प्रसिद्ध हुआ । श्रीमद्रामायण में महर्षिजी लिखते हैं 'रामो राम राम इति लोकानामभवद् ध्वनिः' इति । अतः तीन लोक चौदह भुवन में श्रीराम नाम गुँज उठा ऐसा अर्थ है । यहां पर चिन्मय तत्त्व का 'राम' नाम है इस श्रुति वचन से अनादि सत् चित् आनन्दार्थक परब्रह्म वाचक 'राम' शब्द प्रतिपाद्य इस पृथिवी पर हुआ, इस कथन से उसी श्रीरामचन्द्रजी का अवतारित्व है अन्य का नहीं यह व्यक्त होता है । अयोध्याधिपति महाराज श्रीदशरथजी के भवन में आविर्भूत श्रीरामजी का 'राम' में होने वाले गुणों एवं कर्म अर्थ वाले 'राम' पदका वाच्यार्थ होने के कारण अवतारत्व भी प्रतिपादित होता है । यदि ऐसा नहीं होता तो विष्णु हरि नारायण अथवा किसी अन्य दूसरे का पृथिवी पर 'राम' नाम प्रसिद्ध हुआ ऐसा कहा जाता ? ऐसा नहीं कहा गया है इसलिये 'राम' का ही अवतारित्व एवं अवतारत्व स्वतः सिद्ध है । रा धातु से कर्ता अर्थ में उणादिगण निरूपित म प्रत्यय करने पर 'राम' यह शब्द निष्पन्न होता है । उस 'राम' शब्द का यहां पर रा कार एवं म कार का चार तरह के अर्थ होते

सदाचारमवलोक्याकर्ण्य च राजानः अपि तथैवाचरन्ति, तेन धर्मो जायते। अर्थपञ्चकज्ञानपूर्वकम् परमात्मनः श्रीरामनाम्नो निरन्तरमर्थानुसन्धानसहितजपेन तेषां नृपाणां स्वरूपपरस्वरूपोणायस्वरूपोपेयस्वरूपसम्बन्धस्वरूपाणां ज्ञानेन तत्तद् विरोधिस्वरूपयाथातथ्यज्ञानं जायते, सर्ववेदहेतुप्रणवहेतुभूतस्य श्रीराम-नाम्नो निखिलवेदमूलकत्वात्, वेदानाञ्च स्फुटमर्थपञ्चकबोधकत्वात्। कारणवि ज्ञानेन तत्कार्यभूतसकलवेदार्थज्ञानं भवतीतिबोध्यम्। क्रियाकर्मेज्यकर्तॄणामर्थं वेदोवदति, मन्त्रार्थबोधनकालेऽभियुक्तवाक्यादर्थपञ्चकमवगम्यते।

प्राप्यस्य ब्रह्मणोरूपं प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः।
प्राप्त्युपायं फलं प्राप्तेः तथा प्राप्ति विरोधिनः॥
वदन्ति सकला वेदाः सेतिहासपुराणकाः।
मुनयश्च महात्मानोवेदवेदांगवेदिनः॥ इति॥

तथा नामात्मकस्य मन्त्रस्याप्यर्थपञ्चकपरत्वं बुध्यते। तानि च ज्ञेयानि। अतिसुन्दरश्रीरामचन्द्रश्रीविग्रहध्यानेन परमानन्दानुभूतेर्विषयेभ्यो वैराग्यम्। सविधिश्रीरामपूजनात् ऐश्वर्यलाभः। ये राजानः श्रीरामचरितश्रवणानुष्ठा-नादिपराः त एव धर्मादिसम्पन्नाः, तच्चरित्ररत्याद्यभावेन धर्माद्यनुत्पत्तेः। किञ्चास्यां श्रीरामतापनीयोपनिषदि 'राज्यार्हाणाम्महीभृतामित्युक्तेः श्रीरामरति-

हैं। राक्षसों को मर्त्य के स्वरूप में यह एक अर्थ है, राहु जैसे चन्द्रमा को यह दूसरा अर्थ हुआ अर्थात् इन पदों में रा एवं म होने से दो अर्थ हुए, तीसरा-रा का अर्थ है प्रभा उस प्रभा से हीनो को यह अर्थ है। चौथा अर्थ तो 'राज्यार्हाणां महीभृताम्' इन पदों में वर्तमान रा और म से होता है। रा धातु प्रकाश अर्थ में तथा म कार लय अर्थ में प्रयोग किया गया है। चरित्र आदि के द्वारा किस तरह राजाओं की धर्म आदि की सिद्धि होती है ऐसी जिज्ञासा होने पर कहा जाता है। चरित्र सदाचार को कहा जाता है। वह सदाचार का आचरण धर्म का कारण स्वरूप कहा गया है। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के सदाचार को देख सुनकर राजाओं का समुदाय भी धर्मजनक होने के कारण जैसे भगवान् श्रीराम आचरण किये उसी तरह ये भी आचरण करते हैं। और भगवान् श्रीरामजी जैसे आचरण करने के कारण राजाओं के धर्म की अभिबृद्धि होती है। अर्थपञ्चकों का तात्विक ज्ञान पूर्वक परब्रह्म परमेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के नाम का अविरत अर्थ का अनुशीलन पूर्वक जप (मानस

विहीनानां राज्यानर्हत्वम् । तेन श्रीरामचरित्रश्रवणमर्थानुसन्धानपूर्वकं जपः तद्ध्यानं चावश्यकं कर्तव्यम् प्रजानाञ्च राजानुसारित्वात् सर्वैरपि प्राणिभिस्तद् योग्यतामनुसृत्य श्रीराम एवोपास्यः इतिश्रुतेरस्याभिप्रायः । तदुक्तम्-

'सुरोऽसुरोवाप्यथवानरोनरः सर्वात्मनायः सुकृतज्ञमुत्तमम्
भजेतरामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तराननयत् कोशलान् दिवम्' इति ।

किञ्च राक्षसायेन मरणमिति श्रीरामस्य स्वभक्तद्रोहिविनाशे आग्रहातिशयो दर्शितः । तथा च रघुवंशे दशरथगृहे आविर्भावानन्तरं स्वभक्ताभीष्टप्रदत्वं प्रदर्शितम् । तथा च श्रीरामस्य वपुषो निरतिशयाभिरामत्वात् राक्षसादीनां मारणत्वादिभिर्भुवि विद्वद्भिर्गुणकर्मनिमित्ता 'रामाख्या' प्रकटीकृतेति प्रकाशयित्वा अवाधितस्वरूपं सच्चिदानन्दात्मकं सर्वेश्वरपरब्रह्मतत्त्वं बोधयितुं गौणनाम-निरूपणानन्तरं 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' 'आनन्दं ब्रह्मे'त्यादिश्रुतिभ्यो निरूपितं तत्त्वं प्रकाशनाय 'ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्' इत्यादिभिः चरममन्त्राच्च उच्चारण) के द्वारा उन भगवत् सदाचारानुयायी स्वरूप उपाय स्वरूप एवं उपाय द्वारा प्राप्त करने योग्य उपेय स्वरूप एवं इन सभी का परस्पर सम्बन्ध स्वरूप के ज्ञान के द्वारा, एवं इस प्राप्य प्रापक आदि के उन-उन विरोधि स्वरूपों के वास्तविकता का पूर्ण रूपसे ज्ञान होता है । इसलिये अर्थपञ्चक तत्वज्ञ होना परम आवश्यक है । समस्त वेदों के कारण एवं प्रणव का कारण स्वरूप सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के नाम का समस्त वेदों का मूलकारण होने से कारण का विशेष रूपसे तात्त्विक ज्ञान होने से कार्य का तात्त्विक विशिष्ट ज्ञान होता है ऐसा नियम सुना जाता है । इससे यह सिद्ध होता है कि-श्रीरामजी का अर्थ विषयक विशिष्ट ज्ञान हो जाने पर श्रीराम नाम का कार्यभूत ॐकार एवं उसका कार्यभूत समस्त चराचर जगत् का ज्ञान होने से श्रीराम नामार्थ ज्ञान से समस्त वेदों के अर्थ का ज्ञान हो जाता है यह समझना चाहिये । क्रिया कर्म एवं यज्ञ के द्वारा उपासना करने तथा अधिकारी आदि अर्थों को वेद कहता है । श्रीराम मन्त्र का अर्थ बोध के समय परम प्रामाणिक'वचनों के द्वारा उनके वाक्य से अर्थ पञ्चक समझे जाते हैं ।

प्राप्त करने योग्य परब्रह्म का स्वरूप और प्राप्त करने वाला कर्ता का प्रत्यगात्म चैतन्य स्वरूप, उन परमात्मा को प्राप्त करने का उपाय, और परमात्मा को प्राप्त कर लेने का परिणाम, तथा उन परमात्मा की प्राप्ति में प्रतिबन्धक (विरोधी तत्त्व) क्या

प्रतिपादयन्नाह तथा स्मृतिः→'तत्त्वस्वरूपं पुरुषं पुराणं स्वतेजसा पूरित विश्वमेकमिति' श्रीरामचन्द्रस्य मुख्यं स्वरूपतत्त्वमाह । पूर्वं गुणकर्माधारेण श्रीरामस्य 'रामाख्या' प्रकटीकृता, अथ सच्चिदानन्दात्मकं तत् स्वरूपमधिकृत्य तद् वाचकेन तादात्म्यभावेन यथा अनादिसिद्धा 'रामाख्यान्वार्थिका च श्रुता तथैव' 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' 'यः सच्चिदानन्दात्मेति सच्चिदानन्दाख्या इत्युपासितव्यम् ।'चिद् वाचको रकारः स्यात् सद् वाच्याकार उच्यते । मकारानन्द वाची स्यात् सच्चिदानन्दमव्ययम् ।'

क्या हैं इनके नाम अर्थपञ्चक कहे जाते हैं । इन्हीं अभिप्रायों को समस्त वेदों और सभी इतिहास एवं सभी पुराण ग्रन्थ भी इन्हीं अर्थ पञ्चकों को कहते हैं । और सभी मुनि महात्मागण भी इन्हीं अर्थपञ्चक को कहते हैं । जो समस्त वेद एवं सभी वेदों के अर्थ तत्त्व को जानते हैं । उसीप्रकार नाम स्वरूप वाला मन्त्र का भी अर्थपञ्चक निरूपण परकत्व समझा जाता है । उन-उन अर्थपञ्चक स्वरूपों को अवश्य जानना चाहिये । समस्त ब्रह्माण्ड के सभी प्राणी एवं वस्तुओं की सुन्दरता से अत्यन्त उत्कृष्ट भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की सुन्दरता युक्त शरीर का भूयोभूयः अनुशीलन के द्वारा परमानन्द की अनुभूति होने से संसार के समस्त वस्तुओं को उसकी तुलना में अत्यन्त तुच्छ होने के कारण सांसारिक विषय वस्तुओं से वैराग्य होता है । पाञ्चरात्र आदि साम्प्रदायिक परम्परागत पूजा विधान के अनुसार पूजा करने पर अनन्त ऐश्वर्य का लाभ होता है। जो राजागण सर्वेश्वर श्रीरामजी के सुन्दर चरित्र को सुनते हैं, श्रीरामचन्द्रजी के समान अपना अपना आचरण करते हैं, एवं उन आचरणों में तत्पर रहते हैं । वे ही राजा राजागण धर्म आदि से परिपूर्ण हैं । अन्य नहीं, भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के चरित्र आदि में अनुराग का अभाव होने से उनमें धर्म आदि की उत्पत्ति नहीं होती है । और भी इस प्रतिपाद्य श्रीरामतापनीय उपनिषद् में राज्य के योग्य राजाओं के इसप्रकार का कथन होने से, भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के प्रति अनुराग से विहीन राजाओं की राज्य प्राप्ति की योग्यता नहीं है । सर्वेश्वर श्रीरामजी के प्रति अनुराग होना ही इसमें शुभ लक्षण है । इससे यह सिद्ध होता है कि श्रीरामचन्द्रजी के चरित्र का श्रवण तथा श्रीराम नाम के अर्थ का अनुशीलन पूर्वक जप करना, श्रीरामचन्द्रजी के स्वरूप का ध्यान समस्त राजाओं एवं प्रजाओं का अति आवश्यक कर्तव्य है । क्योंकि प्रजाओं का राजा के आचरण का अनुसरण करना स्वभाव होता है । अतः सभी प्राणियों के द्वारा उस

इतिश्रुतिस्मृतिषु श्रीरामशब्दस्य सच्चिदानन्दब्रह्मात्मकत्वं श्रूयते । अतएव श्रीरामतापनीयोपनिषत् स्फुटं निरूपयामास→

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि ।

इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते ॥ इति ॥

स्वरूप योग्यता का अनुसरण करके भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ही उपासना करने योग्य हैं यही इस श्रुति वचन का अभिप्राय है→यही कहा भी गया है । देवता हो अथवा दैत्य राक्षस आदि अथवा मनुष्य या तिर्यग् योनि प्रसूत वानर भालु ही क्यों न हो अर्थात् किसी भी जाति या योनि में क्यों न हो किन्तु जो प्राणी सर्वतोभावेन प्राणियों के शुभ कर्मों को जानने वालों में सर्वश्रेष्ठ पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी को जो मानव की आकृति में हैं तो भी जन्म जन्मान्तर सञ्चित समस्त पाप ताप का हरण करने वाले हैं, उनके शरणागत होकर भजन करे, जो उत्तर कोशल अयोध्या निवासी आकीट पतङ्ग समस्त प्रजाओं को अपने नित्यधाम में साथ ले गये, अर्थात् श्रीरामजी के सेवक का उद्धार तो अवश्य ही होगा क्योंकि उनसे वढ़कर दूसरा दयालु कोई नहीं है । और भी 'राक्षसायेन मरणम्' इस श्रुति वचन से प्रमाणित होता है कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने अपने भक्तों के शत्रुओं का विनाश करने में सीमातीत आग्रह दिखाया है । और इसीप्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का महाराज दशरथजी के घरमें आविर्भाव के पश्चात् यह बोध होता है कि श्रीरामचन्द्रजी का स्वभाव है कि वे अपने भक्तों के अभिमत फल को अवश्य प्रदान करते हैं यह प्रदर्शित किया गया है । और इसीप्रकार श्रीरामचन्द्रजी के शरीर की सीमातीत रमणीयता के कारण एवं सभी तरह से आनन्द प्रदायक होने से और राक्षस आदि का वध करने से एवं अन्य विलक्षण कार्यों समस्त त्रैलोक्य में तत्त्व ज्ञानी विद्वानों के द्वारा गुणों एवं क्रियाओं के हेतु 'राम' यह नाम प्रकट किया गया इस आशय को प्रकाशित कर निर्बाध युक्त स्वरूपता एवं सत् चित् आनन्द स्वरूपता युक्त परब्रह्म तत्त्व को बोध कराने के लिये गुण क्रिया पर आधारित श्रीरामजी का नाम निरूपण करने के पश्चात् सत्य ज्ञान एवं परमानन्द स्वरूप ब्रह्म है, आनन्द ही ब्रह्म है, इत्यादि श्रुति वचनों के द्वारा प्रतिपादन किया गया तत्त्व स्वरूप को प्रकाशित करने के लिये 'ॐ जो श्रीरामचन्द्रजी हैं वे भगवान् षड् विध ऐश्वर्य सम्पन्न हैं' इत्यादि श्रीरामतापनीय श्रुति वचनों के द्वारा तथा चरम मन्त्रों से प्रतिपादन करते हुए कहते हैं । तथा स्मृति भी कहती है-संसारादि के मूल तत्त्व स्वरूप पुराण

यत्र सत्यानन्दे चिदात्मनि साक्षात्कृदात्मतत्त्वपरतत्त्वा योगिनो रमन्ते, स सत्यानन्दचिदात्मा श्रीरामः मुमुक्ष्ववस्थायां मुक्तावस्थायाञ्च योगिजनरतिस्थानत्वेन तदुपेयोपायभूतं सत्यानन्दचिदात्मकं बृहद्गुणयोनिपरतत्त्वं श्रीरामशब्दमुख्यवाच्यमिति निर्गलितार्थः । यदि तूपक्रमवाक्यश्रुतयोः महाविष्णु हरिशब्दयोः अन्यतरस्य वा चिन्मयपरतत्त्वमुख्यवाचकत्वं स्यात् श्रुत्यभितम् तदा 'इति हरिपदेनासौ महाविष्णुपदेनासौ वा परब्रह्माभिधीयते' इत्येव वदेत् । तस्मा

पुरुषोत्तम जो अपने अनुपम प्रभाव से समस्त विश्व अर्थात् त्रैलोक्य को भर दिये हैं ऐसे परम पुरुष अद्वितीय सर्वकारण स्वरूप को प्रणाम करता हूँ। इत्यादि वचनों द्वारा द्वारा श्रीरामचन्द्रजी का प्रधान स्वरूप प्रतिपादन किया। पहले तो गुण और क्रिया के आधार से श्रीरामचन्द्रजी की तीनों लोकों में 'राम' यह आख्या तत्त्व विज्ञानी विद्वानों के द्वारा प्रकट की गयी। इसके पश्चात् सत् चित् आनन्द स्वरूप उन परब्रह्म परमेश्वर का स्वरूप को विषय बनाकर उसके वाचक शब्द और पारमार्थिक अर्थ का तादात्म्य सम्बन्ध के द्वारा जिस तरह अनादि काल से सिद्ध अर्थात् किसी के की गयी नहीं श्रीरामचन्द्रजी की 'राम' यह आख्या हुई। यह जैसा नाम तदनुरूप अर्थ वाली यह अन्वर्थक संज्ञा हुई और इसीतरह सुनी भी गयी। उसीप्रकार ही सत्य ज्ञान एवं आनन्द स्वरूप जो परब्रह्म सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी हैं वे ही सत् चित् आनन्द स्वरूप हैं। इसलिये उनका सच्चिदानन्द यह नाम है। उस सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी की उपासना करनी चाहिये। 'राम' शब्द का सच्चिदानन्दार्थ प्रतिपादकता है इसका निरूपण करते हुए कहते हैं कि-चित् तत्त्व का प्रतिपादक र कार है एवं सत् अर्थ का प्रतिपादक आ कार को कहा जाता है और म कार आनन्दमय अर्थ का बोधक है इसलिए 'राम' यह शब्द अविनाशी परम नित्य अनादि सर्वकारण सच्चिदानन्द है'। इसप्रकार अन्य सभी श्रुति एवं स्मृतियों में श्रीराम शब्द का सत् चित् आनन्दमय ब्रह्म स्वरूपता सुनी जाती है। इसीलिये श्रीरामतापनीय उपनिषद् में सुस्पष्ट रूपसे इस अभिप्राय को प्रतिपादन किया कि-जिस सत्य आनन्द चित् स्वरूप अनन्त ब्रह्म तत्त्व में योगिजन रमण करते हैं इसलिये वे परब्रह्म 'राम' पद से तत्त्व ज्ञानियों के द्वारा कहे जाते हैं। जिस सत्य आनन्द एवं चिदात्म स्वरूप में जिह्नोंने आत्म तत्त्व एवं परमात्म तत्त्व का साक्षात्कार करलिये हैं ऐसे योगिजन समाधि आदि के द्वारा परम आनन्द की अनुभूति करते हैं वे ही सत् चित् आनन्दमय श्रीरामचन्द्रजी जो मुक्ति प्राप्ति

दिदं गुणनामनिर्वचनं पूर्वतनं तदुत्तरतनं 'रमन्ते' इत्यादि च श्रीरामस्य द्वितीयमूलकारणपरं प्रतिपाद्यान्येषां गौणत्वमुपपादितम् ॥९॥

नच गौणश्रीरामनामभिः केवलं दाशरथित्वं बोध्यते न तु प्रातीतिकमनुष्यत्वबुद्धिः निवर्तते अतो 'रमन्ते' इतिश्रुतिः सच्चिदानन्दार्थनिर्वचनेन तद्वाच्यस्य प्रातीतिकबुद्धिनिवर्तनाय ब्रह्मावतारत्वं ज्ञापयतीति शंक्यम् । 'चिन्मयेऽस्मिन्

करने की इच्छा वाले की अवस्था में हैं। अथवा मोक्ष प्राप्त स्वरूप में हैं ऐसे समस्त योगिजनों के परम अनुराग का आश्रय स्थान के रूपमें उनके उपेय अर्थात् उपाय द्वारा प्राप्त करने योग्य, एवं उपाय परम लक्ष्य को प्राप्त करने का साधन स्वरूप बने हुए सत्य आनन्द एवं चिदात्मक, असाधारण बृहत् गुणगण गरिमा युक्त परम तत्त्व 'राम' शब्द का प्रधान वाच्यार्थ है यह 'रमन्ते योगिनः' इस मन्त्र का सार स्वरूप अभिप्राय है।

यदि तो उपक्रम वाक्यों में सुने गये महाविष्णु तथा हरि शब्दों का अथवा महाविष्णु हरि में से किसी एक शब्द का चिन्मय परतत्त्वरूप अर्थ की प्रधान वाचकता होती तो यह अर्थ श्रुति स्मृति वचनों का अभिमत होता तव 'इति हरि पदेनासौ' अथवा 'इति महाविष्णु पदेनासौ परब्रह्म अभिधीयते' यही श्रुतियां कहती। ऐसा कहीं पर भी नहीं कही है इसलिये गुण पर आधारित 'राम' नाम का निर्वचन पूर्व काल में प्रतिपादन किये वचनों से निरूपण करके उसके परवर्ती वचनों के द्वारा सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के परम तत्त्व भूत अर्थ का प्रतिपादन करने के लिये 'रमन्ते योगिनः' इत्यादि से श्रीरामचन्द्रजी के अद्वितीय मूलकारण बोधन परक परम तत्त्व का प्रतिपादन कर दूसरों का गौणत्व निरूपण किया ॥९॥

यदि ऐसा कहें कि गुण कर्म पर आधारित श्रीरामचन्द्रजी के नामों से केवल दशरथ पुत्र श्रीरामचन्द्र मात्र अर्थ का बोध होता है। महाराज दशरथ के पुत्र श्रीरामजी का तो ज्ञान होता है लेकिन सामान्य प्रतीति से उत्पन्न मनुष्यत्व की भावना की निवृत्ति नहीं होती है। इसलिये 'रमन्ते योगिनः' इत्यादि श्रुति वचन सत् चित् आनन्दमय स्वरूप अर्थ का निर्वचन के द्वारा उस श्रीराम शब्द से प्रतिपाद्य अर्थ का प्रतीति जनित सामान्य रूप से ज्ञात मनुष्यत्व बुद्धि का निवारण करने के लिये श्रीरामचन्द्रजी सामान्य मनुष्य नहीं अपितु सर्व जगत् कारण परब्रह्म के अवतार हैं इस अभिप्राय को प्रकाशित करता है ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिये, क्योंकि 'चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते

महाविष्णौ जाते दशरथे हरा' वित्यादिना परब्रह्मावतारत्वज्ञापनेनम-नुष्यत्वबुद्धिनिराकरणात् । तस्मात् "रमन्ते" इतितन्निष्ठावतारित्वज्ञापनेनैव सार्थकता । यद्यप्युपनिषत्सु ब्रह्मादिशब्दानां प्रणवस्याकारमकारादीनाञ्च बहुमाहात्म्यं श्रूयते, सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म नारायणः परंब्रह्मनृसिंहोब्रह्मेत्यादिभिः परतत्त्वमवगम्यते । तथाऽपि ब्रह्मपरब्रह्मादिशब्दानामनेकदेवताविशेषणत्वदर्शनात् गायत्र्याश्च पूर्वशुद्धानां ब्राह्मणादीनामेव संशोधकत्वात्, अस्य तु तेषां संशोध-नेन सह गायत्र्याद्यनधिकारिणां मलिनशूद्राद्यनधिकारिणामपि विग्रहविशेषस्या

दशरथे, भुवि' इन मन्त्रादि द्वारा श्रीरामचन्द्रजी का महाराज दशरथ के भवन में साक्षात् परब्रह्म का आविर्भाव होना ज्ञापित करके ही श्रीरामचन्द्रजी में मनुष्यत्व बुद्धि का निराकरण कर दिया जाता है । इसलिये ही 'रमन्ते योगिनः' इत्यादि मन्त्र के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी निष्ठ अवतारित्व बोधन करने से ही इस प्रासङ्गिक मन्त्र की सार्थकता होती है ।

यद्यपि उपनिषदों में ब्रह्म आदि शब्दों का और प्रणव का एवं अकार मकार आदि का अतिशय अधिक माहात्म्य सुना जाता है। जैसे सत्य ज्ञान एवं आनन्द स्वरूप तथा अनन्त स्वरूप ब्रह्म है । भगवान् श्रीनारायणजी ही परब्रह्म हैं, नृसिंह ही ब्रह्म है, इत्यादि श्रुति वचनों के द्वारा पर तत्त्व वास्तविक रूपसे समझा जाता है । तथाऽपि ब्रह्म परब्रह्म आदि शब्दों का विष्णु नारायण नृसिंह कृष्ण आदि अनेक देवताओं का विशेषण के स्वरूप में प्रयोग किये जाने के कारण ऐसा देखे जाने से और गायत्री मन्त्र का, पहले जन्म परम्परा से जो शुद्ध और संस्कार सम्पन्न है, ऐसे ब्राह्मण आदि द्विज का ही संशोधक होने से इसके साथ ही उत्तम वर्णों का ब्राह्मण आदि का श्रीराम के द्वारा संशोधन के साथ साथ जो गायत्री मन्त्र के अधिकारी नहीं है ऐसे मलिन वर्ण शूद्र आदि अनधिकारियों का भी सामान्य रूपसे संशोधक होने से, और ब्रह्म आदि शब्दों का उच्चारण समकाल में किसी प्रकार के विग्रह विशेष का स्फुरण नहीं होने के कारण एवं इन वातों से प्रतीत होता है कि ब्रह्म आदि शब्दों का सामान्यत्व है। और सामान्य वाचक शब्द का पशुना यजेत के छागो वा मन्त्र वर्णात् इस पशु छाग न्याय से विशेष अर्थ का निश्चायकत्व ही प्रतीत होता है । कारणार्थ बोधन परक जो सामान्य वाचक शब्द हैं वे कारणार्थ बोधपरक विशेष शब्दों में श्रीरामचन्द्रार्थ बोधपरक 'राम' शब्द की ही सभी के अपेक्षा उत्कृष्टता है। यह श्रुति द्वारा निरूपित है । और

स्फुरणाच्च तेषां ब्रह्मादीनां सामान्यत्वं सिद्ध्यति, सामान्यस्य च छागन्यायेन विशेषनिश्चायकत्वमेव, कारणपरसामान्यशब्दाः कारणपरविशेषशब्देषु श्रीरामशब्दस्यैव सर्वोत्कृष्टत्वश्रुतेः, स्मृतेश्च, तदुच्चारणसमकाले च द्विभुज धनुर्धरादिविग्रहविशेषानुभवकत्वाच्च श्रीरामशब्दस्यैव प्रणवकारणत्वश्रुतेः, जलादिकारणीभूतेषु ककारलकारादिषु रेफमकाराद्यवयवत्वदृष्टेश्च तेषां रेफापकृष्टत्वम् । रेफस्य च श्रीरामपरत्वं ब्रह्मादिशब्दानां च श्रीरामशब्दद्वारैव नित्यविग्रहनिश्चायकत्वं श्रीरामशब्दस्यैव तन्मुख्यवाचकत्वम्, प्रणवाद्यपकृतार्थानां शूद्रादिपापयोनिजातानां कृतार्थीकरणात् सर्वजीवाश्रयार्हत्वं सिद्ध्यति । श्रीकृष्णनारायणादिशब्दा अपि तत्पर्यायवाचकत्वेन श्रीरामसदृशाबोध्याः । श्रूयते चात्र 'सर्ववाच्यस्य वाचकः' इति, स्मर्यते च-

'विश्वरूपस्य ते राम विश्वे शब्दा हि वाचकाः ।
तथाऽपि रामनामेवं सर्वेषां वीजमक्षयमिति ।'

स्मृति के द्वारा भी कहा गया है। और 'राम' शब्द का उच्चारण समकाल में दो भुजाओं आदि से विशिष्ट धनुष वाण को धारण करनेवाला विग्रह विशेष का शब्द के द्वारा अनुभव कराये जाने से श्रीराम शब्द का ही प्रणव का कारणत्व बोधक श्रुति वचन से श्रीरामजी का सर्वकारणत्व निश्चय होता है। जल आदि तत्त्वों का कारण स्वरूप बने हुए ककार लकार आदि वर्णों में रेफ और मकार आदि का अवयवत्व देखे जाने से यह सिद्ध होता है कि उन वर्णों का रेफ के अपेक्षा अपकृष्टत्व (न्यूनता) है। और रेफ का श्रीरामचन्द्रार्थ परकत्व है। और ब्रह्म आदि शब्दों का 'राम' शब्द के द्वारा ही नित्य विग्रह स्वरूपार्थ का निश्चायकत्व है। और उन सभी में 'राम' शब्द का ही मुख्यवाचकत्व है। और प्रणव आदि के द्वारा जो वेदानधिकारी कृतार्थ नहीं किये जाते हैं ऐसे शूद्र आदि पाप योनियों में पैदा हुए प्राणियों को कृतार्थ करने के कारण श्रीरामचन्द्रजी में समस्त प्राणि के द्वारा आश्रय ग्रहण योग्यता सिद्ध होती है कृष्ण नारायण आदि शब्द भी श्रीरामजी का पर्याय वाचक होने से 'राम' के ही समान हैं यह अभिप्राय समझना चाहिये। और इस विषय में सुना भी जाता है कि सभी प्रतिपाद्य अर्थों का बोधक 'राम' शब्द है । और स्मृति द्वारा भी कहा जाता है कि-समस्त चराचर है रूप जिनका ऐसे हे श्रीराम आपके सभी शब्द वाचक हैं, इसलिये समस्त शब्द के रामार्थ वाचकत्व होने पर यह 'राम' नाम सभी का जिसका कभी भी क्षय नहीं हो ऐसा अविनाशी मूलकारण है।

ननु एकविग्रहवाचकेषु शब्देषु बहुत्वे कस्य मुख्यत्वं यथा श्रीकृष्णविग्रहं प्रतिकृष्णास्य मुख्यता तथाऽपि समस्तविग्रहेषु तद्वाचकेषु च श्रीरामस्य मुख्यत्वमवगम्यते । अन्यच्चात्रकारणविग्रहं प्रतिमुख्यतोच्यते नतुकार्यविग्रहं प्रति। सर्वेषां भगवदवताराणां तत्त्व ऐक्यात् तेषां सर्वविग्रहबोधकत्वेऽपि येन येन तादात्म्यं तद्विग्रहं प्रतिमुख्यत्वम् । तदन्तरंप्रति च गौणत्वं यथा श्रीकृष्ण विग्रहस्य कृष्णं प्रतिमुख्यत्वं विष्णवादिशब्दस्य व्यापकत्वादिगुणगौणत्वम् । तेन कृष्णावाचकत्वम् रामवाचकत्वञ्च, तथाऽपि गौणस्यापि श्रीरामशब्दस्य सहस्त्रगुणाधिकफलश्रवणात् । 'वैष्णवेष्वपि मन्त्रेषु राममन्त्रः फलाधिकः' इतिस्मृतेश्च श्रीरामनिष्ठं गुणकर्माधिक्यमवगम्यते । 'अनन्ताभगवन्मन्त्रा नानेन तु समाः कृताः । श्रियोरमणसामर्थ्यात् सौन्दर्यगुणसागरात्' इत्यत्रानन्त-भगवन्मन्त्रेभ्यः श्रियोरमणसामर्थ्यादिगुणकर्मकृतकार्यविग्रहं प्रति कारणविग्रहं

यदि ऐसा प्रश्न करें कि एक स्वरूप विशेष का वाचक शब्दों में बहुत में से एक शब्द की प्रधानता होती है। जैसे कृष्ण आदि विग्रह के प्रति श्रीकृष्ण शब्द की प्रधानता होती है। ऐसा होने पर भी सभी देवता स्वरूपों में और उन-उन स्वरूप विशेष के वाचक शब्दों में 'राम' शब्द की प्रधानता है ऐसा समझा जाता है। और दूसरी वात यह है कि यहां पर कारण बोधक विग्रह के प्रति प्रधानता कही जाती है न कि कार्यबोधक स्वरूप के प्रति प्रधानता कही जाती है। भगवान् की सभी अवतारों में वास्तविक रूप में एक रूपता होने से उन सभी शब्दों के समस्त भगवत् स्वरूपार्थ बोधकत्व होने पर भी जिस जिस शब्द के साथ तादात्म्य सम्बन्ध होता है उसी भगवत् स्वरूप के प्रति उस शब्द की प्रधानता होती है। और उस शब्द का अन्य शब्द के प्रति तो अप्रधानता होती है। जैसे कृष्ण भगवान् के शरीर का 'कृष्ण' शब्द द्वारा बोध होता है इसलिये उसके प्रति मुख्यता है। लेकिन विष्णु नारायण आदि शब्दों की व्यापकत्व आदि गुण के कारण अप्रधानता ही होती है। इसलिये 'राम' शब्द का सर्ववाचकत्व होने से 'कृष्ण' वाचकत्व एवं 'राम' वाचकत्व है अन्य का नहीं। पर्यायत्वेन सर्ववाचकत्व है। ऐसा होने पर भी अप्रधान 'राम' शब्द का भी अन्य देवता नामों के अपेक्षा हजार गुणा अधिक फल श्रवण के कारण, और समस्त वैष्णव मन्त्रों में भी श्रीराम मन्त्र अधिक फलदायी है। इस स्मृति वचन के कारण श्रीरामचन्द्रजी में रहने वाली गुण क्रिया की अधिकता जानी जाती है। भगवान् के

प्रति च मुख्यवाचकत्त्वम्, सत्यानन्दचिद्घनादिकृतं गौणवाचकत्वं गौणस्येति। कार्यविग्रहस्यापि रामब्दस्य परशुरामापेक्षया दाशरथेः अधिकं माहात्म्यमव गम्यते। कारणविग्रहस्य च ब्रह्मात्मका सच्चिदानन्दाख्या इत्युपासितव्यम् इतिश्रूयते । नन्वत्र वाच्याधिक्यस्य वाचकाधिक्ये हेतुरुच्यते, अन्यत्र च वाचकाधिक्यस्य वाच्याधिक्ये हेतुत्वं स्वीकृतमितिचेन्न, वाच्याधिक्यस्यैव वाचकाधिक्ये हेतुत्वम् । वाचकस्य वाच्याश्रितत्वेन स्ववाच्योत्कृष्टत्वानुपपत्तेः ।

'एकाङ्गसङ्गिनी गङ्गा पावयेदखिलं जगत् ।
अङ्गप्रत्यङ्गसंव्यापि नाम किङ्कर्तुमक्षमम्' इति ॥

यस्य नामसंसर्गवशाद् द्विवर्णौ नष्टस्वरौमूर्ध्निगतौ स्वराणां तद् रामपादौ हृदिनिधाय देही कथं नोर्ध्वंगतिं लभेत । लोकेऽपि वाच्योत्कृष्टमकृष्टत्वमविचार्य वाचकोच्चारणं दृश्यते । तद्यथा-

अगणित मन्त्र समूह हैं लेकिन इस 'राम' शब्द के समान कोई भी नहीं कहे गये हैं। लक्ष्मी का आनन्द प्रदायकत्व सामर्थ्य के कारण और सुन्दरता गुण के महासागर होने से यह अनन्त भगवन् मन्त्रों से गुण क्रिया प्रयुक्त कार्यबोधक स्वरूप के प्रति एवं कारण स्वरूप बोधक के प्रति मुख्य वाचकत्व है। सत्य आनन्द एवं चिद् घनत्व आदि प्रयुक्त अप्रधान वाचकत्व गौण श्रीराम शब्द का है। कार्य विग्रहार्थ बोधक का भी श्रीराम शब्द का परशुराम के अपेक्षा दशरथ तनय श्रीरामजी का अधिक महत्त्व समझा जाता है। और कारण स्वरूपार्थ बोधक शब्द का भी ब्रह्मस्वरूपमय सत् चित् आनन्द नाम है जिनका ऐसे सच्चिदानन्दत्वेन प्रसिद्ध श्रीरामचन्द्रजी की उपासना करनी चाहिये इसप्रकार सुना जाता है ।

यहां यदि प्रश्न करते हैं कि प्रतिपाद्य अर्थ की अधिकता का प्रतिपादक शब्द की अधिकता में कारण आपके द्वारा कहा जाता है। और दूसरे स्थानों पर प्रतिपादक शब्द की अधिकता का प्रतिपादन योग्य अर्थ में कारणता स्वीकार की गयी है। इस तरह निरूपण में दोहरा व्यवहार कैसे होगा ? यदि ऐसा कहें तो नहीं कह सकते हैं। क्योंकि वास्तविक में तो व्यवस्था यही है कि प्रतिपादनीय अर्थ की अधिकता का ही प्रतिपादक शब्द में अधिकता होने की कारणता है । क्योंकि प्रतिपादक शब्द का प्रतिपाद्य अर्थ पर आधारित होने के कारण, अपने प्रतिपाद्य अर्थ के अपेक्षा प्रतिपादक शब्द में उत्कृष्टता का निरूपण किया जाना युक्ति एवं तर्क सम्मत नहीं कहा जा सकता

राम?त्वत्तोऽधिकं नाम यदुक्त्यैव पुमांस्तरेत् ।
विनापि सेतुनिर्माणमपारं भवसागरम्' इति ।

वाच्याद् वाच्याधिक्यं स्मर्यते, तस्य सर्वजनसुलभत्वात् । उच्चारणमात्रेण संसारसन्तारकत्वाच्च ।

ननु मूलकारणत्वस्य एकस्मिन्नेव तादात्म्यस्वीकारे नृसिंहाद्युपमिषत्सु तत्तन्मन्त्राणां जगदुत्पत्त्यादिहेतुत्वस्य का गतिस्यादित्यत्रोच्यते । नृसिंहोपनिषद् नारायणोपनिषद् गोपालोपनिषदादिषु तत्तन्नाम्नां ख्यातिस्तु कार्यकारणयोरभेदात् कार्यविग्रहस्यापि जगदुत्पत्यादिहेतुत्वमुक्तम्भवति । श्रीविष्णुनारायणमत्स्यादीनां लेकिन यहां की परिस्थिति तो विलक्षण ही है । जैसे कि एक किसी अङ्ग विशेष का सम्पर्क प्राप्त करनेवाली, अर्थात् भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के चरण मात्र का सङ्ग प्राप्त करनेवाली गङ्गा अथवा उपासक के किसी अङ्ग विशेष का भी जिसका स्पर्श हुआ है ऐसी गङ्गा समस्त भूमण्डल को पावनतम बनाती है । तब जिसका अङ्ग प्रत्यङ्ग से सम्पर्क होता है, उसके लिये क्या नहीं कर सकती है । जिन मर्यादापुरुषोत्तम अखिल जगत् नियामक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के नाम का सम्बन्ध मात्र से ही दो वर्ण जिनके स्वर नष्ट हो गये हैं तो भी मूर्धा स्थान को प्राप्त किये हैं । अर्थात् सभी स्वरों में उच्च स्थान को प्राप्त किया है । ऐसे भगवान् श्रीरामजी के चरणों को हृदय में स्थापित कर संसार के सभी शरीर धारी प्राणी कैसे ऊर्ध्व लोकों में गति को नहीं प्राप्त कर सकेगा । इस सांसारिक व्यवहार में भी ऐसा देखा जाता है कि प्रतिपाद्य अर्थ विशेष की उत्कृष्टता अपकृष्टता आदि विषय का विना विचार किये ही वाचक शब्द का उच्चारण किया जाता है । जैसे कि-हे भगवन् श्रीरामचन्द्र ? आप से कहीं अधिक वढचढ कर आपका शुभ नाम है, क्योंकि समाधि आदि के द्वारा कठिनता से स्वरूप दर्शन कर प्राणी मुक्त होगा, इसकी अपेक्षा केवल नामोच्चारण मात्र से संसार के पुरुष संसार सागर को पार कर जाता है, विना सेतु पुल आदि की संरचना के ही दुष्पार संसाररूपी महासागर को प्राणी श्रीरामनाम उच्चारण करने मात्र से पार हो जाता है। इस स्मृति के द्वारा वाच्यार्थ की अपेक्षा वाचक शब्द की अधिक माहात्म्य प्रतिपादन किया गया है । और श्रीरामजी के नाम का उच्चारण सभी लोगों के लिये सुलभ होने से और केवल उच्चारण करने से ही संसार सागर का सन्तारक होने से वाच्य के अपेक्षा वाचक की अधिक माहात्म्य सुना जाता है ।

श्रीरामरूपत्वेन कार्यत्वं श्रीरामचन्द्रस्य तु सर्वरूपित्वेनकारणत्वमिति उपसंहार मन्त्रनिर्वचनप्रस्तावे विशेषेण वक्ष्यते ॥१०॥

प्रश्न करते हैं कि मूलकारणता का एक में ही तादात्म्य सम्बन्ध स्वीकार करने पर, नृसिंह गोपाल तापनीय आदि उपनिषदों में उन-उन देवताओं के मन्त्रों का संसार के उत्पत्ति स्थिति पालन आदि का कारणत्व प्रतिपादन की गति की क्या स्थिति होगी ? तो इस सम्बन्ध में समाधान कहते हैं। नृसिंहोपनिषद् नारायणोपनिषद् गोपालोपनिषद् आदि में उन-उन नामों की कारण स्वरूप में प्रसिद्धि तो कार्य कारण में अभेद सम्बन्ध होने के कारण है कार्य बोधक भगवद् विग्रह का भी संसार की उत्पत्ति स्थिति एवं प्रलय आदि की कारणता निरूपण की जाती है। विष्णु नारायण मत्स्य आदि का श्रीरामचन्द्र स्वरूप होने से कार्यत्व है और श्रीरामचन्द्रजी का सर्वरूपित्व होने के कारण कारणत्व है। इस विषय का उपसंहार मन्त्रों का निर्वचन करते समय उस प्रसङ्ग में विशेष रूपसे प्रतिपादन किया जायगा ॥१०॥

अथ 'रमन्ते' इत्यादिना सच्चिदानन्दार्थकमुख्यश्रीरामनामनिर्वचनेन श्रीरामशब्दस्य परतत्त्वाभिधायकत्वं प्रकाशयन्नाह-

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि ।
इतिरामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥५॥

इसके वाद 'रमन्ते' इत्यादि मन्त्र के द्वारा सत् चित् और आनन्दमय अर्थ है जिसका ऐसे मुख्य श्रीराम नाम का अर्थ निर्वचन के द्वारा श्रीराम शब्द का परतत्त्व अर्थ बोधकता का निरूपण करते हुए कहते हैं जिस अनन्त सत्य आनन्द एवं चिदात्म स्वरूप में योगिजन आत्म क्रीडानुभूति करते हैं इस कारण से वह परब्रह्म 'राम' शब्द के द्वारा प्रतिपादित किये जाते हैं ॥५॥

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' 'आनन्दो ब्रह्म' 'प्रज्ञानं ब्रह्मेत्यादिश्रुतिभि-रुक्तेऽनन्तसत्यानन्दात्मकेऽपरिच्छिन्नचित् स्वरूपे यस्मिन् योगिनो रमन्ते स सत्यानन्दगुणकोऽनन्तं चिदात्मा रामः। रमुक्रीडायामित्यस्मादधिकरणेऽर्थे हल-

सत्य स्वरूप ज्ञान स्वरूप एवं अनन्त स्वरूप ब्रह्म है। आनन्द स्वरूप ही ब्रह्म है। प्रकृष्ट ज्ञान धन ब्रह्म है, इत्यादि श्रुतियों के द्वारा निरूपित अनन्त सत्य एवं आनन्द स्वरूप जिसे परिच्छेद नहीं किया जा सकता ऐसे जिस चित् स्वरूप में योगिजन आत्म

श्चेति सूत्रेण घञ् प्रत्यये कृते 'राम' इत्यस्यसिद्धिः। तस्य परब्रह्माभिधायकत्वेन तेन तादात्म्यप्राप्तेन तस्य श्रुतावुपासितव्यमित्यभिधानात्, स सर्वव्यापकः सर्वावतारीसर्वनिदानं महाव्यापकत्वादिगुणको रामः सत्यानन्दचिदात्मकः परब्रह्मशब्देनोच्यते, कारणकार्यावस्थास्थितयोरपि द्विविधरामशब्दयोः सारूप्यं बुध्यते । तदुच्चारणसमये विशेषविग्रहस्योपस्थितेः । महाविष्णुपरब्रह्मादि शब्दानामपि तस्मिन्नेव परतत्त्वे पर्यवसानम् । ब्रह्मपरब्रह्मादिशब्दानां वाच्यविशेषा श्रवणेन सामान्यशब्दत्वं तेषां विशेषार्थोपस्थापके विशेषेपर्यवसानं समुचितम् ।

क्रीडा विहार करते हैं, वह सत्य एवं आनन्द है गुण जिनका ऐसे अनन्त चिदात्मा स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी हैं। 'रमु' क्रीडायाम् इस अर्थ वाला धातु से अधिकरण अर्थ में घञ् प्रत्यय करने पर 'राम' शब्द की निष्पत्ति होती है। उस शब्द का ब्रह्म अर्थ वाचक होने के कारण उस ब्रह्म अर्थ के साथ तादात्म्य भाव सम्बन्ध होने से और उस 'राम' का उपनिषदों में उपासना योग्य कहे जाने से यह सिद्ध होता है कि वे श्रीरामचन्द्रजी सर्वव्यापक हैं, सभी अवतारों का मूलकारणभूत अवतारी हैं, सभी का आदि कारण हैं, और महान् व्यापकत्व गुण वाले हैं। और ऐसे गुणगण विशिष्ट सत् चित् आनन्द स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी परब्रह्म शब्द से कहे जाते हैं। कारण अवस्था में अवस्थित 'राम' एवं कार्य अवस्था में अवस्थित 'राम' ये दोनों प्रकार के ही 'राम' शब्दों की समान रूपता समझी जाती है। उन दोनों रूपों में वर्तमान 'राम' शब्द का उच्चारण समकाल में विशेष प्रकार के द्विभुजत्व धनुर्वाण धारकत्व आदि विशिष्ट अर्थ की उपस्थिति होने से, महाविष्णु परब्रह्म आदि शब्दों का भी उन्हीं श्रीरामचन्द्र स्वरूप परम तत्त्व में समावेश होता है। ब्रह्म परब्रह्म आदि शब्दों का प्रतिपाद्य अर्थ विशेष कहीं भी नहीं सुने जाने के कारण इनका सामान्य शब्दत्व है। सामान्य वाचक शब्दों का केवल विशेषार्थोपस्थापकत्व ही होता है इसलिये उनकी विशेष अर्थ में ही पूर्णता होती है ऐसा समुचित है। और उपनिषद् के वचनों में मूलकारणत्व के बोधक ब्रह्म आदि शब्दों से सत् चित् आनन्दमय जिनका स्वरूप है ऐसे श्रीराम शब्द से कहा गया दशरथ के पुत्र श्रीरामजी का ही सभी भगवद् विग्रहों की तुलना में उत्कृष्टता का ज्ञान होता है। अपने अभीष्ट अर्थ के संयोग से उत्पन्न होने वाली जो क्रीडा है उसे रति कहा जाता है। उस रति के कारण रमण करने योग्य श्रीरामचन्द्रजी का समस्त सीमाओं को लाङ्घकर विद्यमान सुन्दरता युक्त की साकारता का निरूपण करके, जैसा स्वरूप

उपनिषद् वचनेषु च मूलकारणत्वबोधकाद् ब्रह्मादिशब्दात् सच्चिदानन्दात्मक रामशब्दोक्तदाशरथेरेव सर्वोत्कृष्टत्वं बोध्यते । अभिमतार्थसंयोगजक्रीडारतिः तया रम्यस्य श्रीरामस्य निरतिशयसौन्दर्यवतः साकारत्वं निरूप्य, स्वरूपसमानाकारगुणत्वात् रममाणानां योगिनां सत्यानन्दयो रममाणत्वात् कोमलमानसत्वं बोध्यते । 'अनन्त' इत्युक्तेः रतेविच्छेदाभावेन समरसत्वं गम्यते सत्यत्वं नाम अबाधित स्वरूपत्वं सर्वदा नामरूपविभागयोग्यत्वञ्च । आनन्दस्य सुखरूपत्वात् ब्रह्मण आनन्दस्वरूपत्वात् च तत्र रममाणानां योगिनामानन्दोपलब्धिरेव पुरषार्थः । अनन्तत्वञ्च स्वरूपगुणाभ्यां त्रिविधपरिच्छेदशून्यत्वम् । तेन सर्वव्यापकत्व सर्वज्ञत्वादिगुणानां सिद्धिः । चिदात्मनीत्यनेन चितः स्वप्रकाशज्योतिरूपस्य विकारित्वाभावात् प्राकृतिकशरीरसम्बन्धाभावेन तद्विग्रहस्यापि चित् स्वरूपत्वं है उसके समान रूपवाले गुणों के होने के कारण रमण करते हुए योगिजनों के सत्य एवं आनन्द स्वरूपों में रममाणत्व के कारण उन योगियों का मानस की कोमलता प्रतीत होती है यह समझना चाहिये । 'राम' में अनन्त यह विशेषण कहे जाने से अनुराग का कभी भी विच्छेद नहीं होने से समरसता प्रतीत होती है । निर्बाध स्वरूपता होना और भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालों में हर समय नाम एवं स्वरूप की विभाजन योग्यता होना सत्यत्व कहा जाता है । आनन्द को सुख स्वरूप होने से और ब्रह्म को आनन्दमय स्वरूप होने के कारण उस आनन्दमय ब्रह्म स्वरूप में आत्म क्रीडाऽनुभव करते हुए योगिजनों के परमानन्द की उपलब्धि करना ही उनका परमपुरुषार्थ है । और अनन्तत्व तो स्वरूप एवं गुण की दृष्टि से तीन प्रकार के परिच्छेदों से रहित होना है। इस तरह त्रिविध परिच्छेद राहित्य के होने से परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी में सर्वव्यापकता एवं सर्वज्ञता आदि गुणों की सिद्धि होती है । प्रकृत मन्त्र में चिदात्मनि कहा है इससे चित् का अर्थात् स्वयं प्रकाश स्वरूप दिव्य ज्योतिर्मय स्वरूप का कि अन्य का परिणाम न होना अर्थात् प्रकृति आदि जनित शरीर नहीं होने से प्रकृतिजनित शरीर सम्बन्ध का अभाव होने से भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के दिव्य तेजोमय शरीर का भी चित् स्वरूपता समझी जाती है । यहां पर सत्य आनन्द एवं अनन्त निरूपण ज्ञान शक्ति एवं बल का और सत्य कामता सत्य सङ्कल्पता आदि गुणों का उपलक्षण है । यदि पूर्वोक्त गुणों का उपलक्षम नहीं स्वीकार किया जाय तो परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी के गुणों का प्रयोजन के अवसर पर उन गुणों के अभाव होने से सम्भावित कार्य की पूर्णता

बुध्यते । अत्र सत्यानन्दानन्तवचनं ज्ञानशक्तिबलानां सत्यकामसत्यसङ्कल्पत्वादि गुणानाञ्चोपलक्षणम् । अन्यथा तद् गुणप्रयोजनकाले तेन विनाकार्यासिद्धेरा नन्दमये ब्रह्मणि दुःखित्वमपि प्रसज्जेत । दुःखित्वेन च संसारित्वस्य प्रसक्तिः स्यात् । रमणस्य क्रीडाविहाररूपतया विग्रहं विना तन्न सम्भवति तेन परब्रह्मणो योगिनाञ्च सविग्रहत्वं सिध्यति । 'आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः' इतिश्रुतेः । 'तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूतः' इतिश्रुतेः 'नीलं नभः' इतिप्रतीतेश्च, आकाशस्यापि जन्यत्वम् रूपवत्वञ्च, दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोः साम्यात् ब्रह्मणः सविग्रहत्वं व्यापकत्वञ्चायाति ।

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्रया बुध्या सूक्ष्मया तत्त्वदर्शिभिः ॥

नहीं होने पर परमानन्दमय ब्रह्म में सुखित्व के स्थान पर दुःखित्व होने का भी प्रसङ्ग हो जायगा तो उन्हें आनन्दमय निरूपण का औचित्य नहीं रहेगा इसलिये उपलक्षण मानना ही चाहिये । और परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी में दुःखित्व होने सांसारिकता स्वीकार करने का प्रसङ्ग हो जायगा । रमण को क्रीडा विहार स्वरूप होने से वह क्रीडा विहार शरीर सम्बन्ध के विना सम्भव नहीं है । इसलिये परब्रह्म परमेश्वर और योगिजनों का भी सशरीरत्व होना सिद्ध होता है । यदि कहें कि शरीर सम्बन्ध मानने पर मृत्यु भी मानना होगा तो पुनः सांसारिकता की आपत्ति होगी तो कहते हैं-योगियों एवं परब्रह्म का देह आकाश के समान होता है । श्रुति भी कहती है आकाश के समान परब्रह्म सर्वगत है एवं उत्पत्ति विनाशादि रहित नित्य है । यदि कहें कि आकाश की कहां उत्पत्ति होती है तो श्रुति वचन है-उस परमात्मा से आकाश उत्पन्न हुआ । नीलाभ (नील रंङ्ग की जिसकी आभा है) आकाश है ऐसी लोक व्यवहारगत भी प्रतीति होती है । इस आधार पर सिद्ध है कि आकाश की भी जन्यता है, प्रादुर्भाव योग्य जन्य कहा जाता है । एवं आकाश का भी रूपत्व है । दृष्टान्त-उदाहरण, दृष्टान्तिक-जिसके लिये उदाहरण दिया जाता है । इन दोनों की समानता होने से ब्रह्म का सशरीरत्व एवं सर्वव्यापकत्व ये दोनों वातें प्रमाणित हैं । यह परब्रह्म परमेश्वर जगत्कारण श्रीरामचन्द्रजी समस्त प्राणी मात्र के अन्तःकरण में विराजमान रहते हुए भी, अत्यन्त गुप्त रूपसे हृदयाकाश में होने से प्रतीत नहीं होते हैं ।

लेकिन प्रणिधानादि सम्पन्न अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा अनुभव विषय होते

'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्य इत्यादिश्रुतेः ब्रह्मणोदृश्यत्वेऽपि न विनाशित्वं सम्भवति । जन्यत्वे सति दृश्यत्वं विनाशित्वे हेतुरस्ति ब्रह्मणोऽजन्यत्वात् । साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वस्योपाधित्वात् जन्यत्वमुपाधिरितिचेत् न, ईश्वरः सावयवोऽपि न विनाशीघटादिषु सावयवत्वे सति जन्यत्वमस्ति ईश्वरेसावयवत्वेऽपि जन्यत्वाभाव एवास्ति । यदि प्राकृतं सावयवत्वं विनाशित्वे हेतुस्तदा ईश्वरस्याप्राकृतावयवात् न विनाशित्वम् । न चैनं कश्चित् चक्षुषा पश्यति, यन् न मनोऽनुमनुते 'यतोवाचोनिवर्तन्ते अप्राप्यमनसा

हैं। वह भी सभी के द्वारा नहीं अनुभूत किये जा सकते हैं। अपितु सूक्ष्म बुद्धिशाली तत्त्व दर्शी योगियों के द्वारा ही अनुभव किये जाते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् में महर्षि याज्ञवल्क्य ने जनक से कहा भी है, अरे इस आत्मा को देखा जाना चाहिये । इस आत्मा को सुनना चाहिये। तथा इस आत्मा के विषय में मनन करना चाहिये । इन श्रुतियों द्वारा प्रतिपादित ब्रह्म की दर्शन योग्यता एवं सविग्रहत्व आदि होने पर भी परमात्मा में दृश्यत्व होने पर भी विनाशित्व नहीं है । यदि कहें कि दृश्यत्व होना विनाशित्व का साधक है तो यह परब्रह्म में सम्भव नहीं है। क्योंकि जन्यत्व गुण युक्त होने पर यदि दृश्यत्व होता है तो विनाशित्व होता है, परमात्मा अनादि अजन्मा अनन्त आदि गुण युक्त है अतः विनाशी नहीं है । ब्रह्म को अजन्य होने से विनाशित्वाभाव है । साध्य में जो हेतु व्यापक रूपसे रहते हुए साधन में व्यापक नहीं रहता है वह सद् हेतु न होकर उपाधि है । ऐसा यदि कहते हैं तो यह कहना उचित नहीं । क्योंकि ईश्वर अवय सम्पन्न होते हुए भी विनाशी नहीं हो सकता है। घट पट आदि सांसारिक पदार्थों में अवयव सहित होने पर जन्यत्व है, इशलिये विनाशित्व भी है। लेकिन ईश्वर में सावयवत्व होने पर भी घट पटादि के समान जन्यत्व नहीं है अपितु जन्यत्व का अभाव है । क्योंकि घटपटादि में प्रकृति जनित सावयवत्व है, यदि प्रकृति जनित सावयवत्व विनाशित्व होने में कारण होता है ऐसा स्वीकार करते हैं तब ईश्वर का अप्राकृत अवयव युक्त होने से ईश्वर में विनाशित्व नहीं होता है । और इन परमेश्वर को कोई भी व्यक्ति सांसारिक चर्मचक्षु के द्वारा परब्रह्म परमेश्वर को नहीं देखता है। जिसे मन भी अनुमान नहीं करता है जहां से मनके सहित वाणी परमात्मा को नहीं पाकर पीछे लौट आती है। अर्थात् परमात्मा साक्षात्कार में वाणी और मनकी भी गति सामर्थ्य नहीं है । इत्यादि श्रुतियां कहती हैं कि-परमेश्वर प्रकृति जनित इन्द्रियों का

सह' इत्याद्याः श्रुतयः प्राकृतेन्द्रियागोचरत्वमेवगमयति, तथाचोक्तं गीतायाम् 'न च मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा । दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरमिति, ईश्वरीयरूपलावण्यातिशयस्यापारतया कात्स्र्न्येन बोद्धुमशक्य त्वात् याथातथ्येन दर्शनाय तत् कृपादृष्ट्यैवावलोकनीयताभवति, अन्यथा 'हृदा मनीषा मनसा भिक्लृप्तः' 'यमेवैष वृणुते स तेन लभ्यः' इतिश्रुतिः व्याकुप्येत । तथा च 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' 'आनन्दो ब्रह्म' इत्यादिश्रुतयो ब्रह्म-सच्चिदानन्दस्वरूपं बोधयन्ति । 'रमन्ते योगिनः' 'ब्रह्मात्मका सच्चिदानन्दाख्या'

गोचर (प्रत्यक्ष) नहीं होता है । इसी तरह कहा भी गया है गीता में श्रीकृष्णजी अर्जुन से कहते हैं-हे अर्जुन तुम मुझे इस प्रकृति जनित चर्मचक्षु के द्वारा मेरे दिव्य ज्योतिर्मय विराट् स्वरूप को नहीं देख सकते हो । इसलिये मेरा वास्तविक रूप को देखने के लिये तुम्हें दिव्य चक्षु प्रदान करता हूँ । तुम मेरे ईश्वर सम्बन्धी योग को देखो । ईश्वर सम्बन्धी स्वरूप सौन्दर्य लावण्य आदि को अतिशयित एवं अपार होने के कारण समग्र रूपसे समझने के लिये अशक्य होने के कारण जैसे परमात्मा है उनके वास्तविक स्वरूप को देखने के लिये उन परमात्मा की कृपा दृष्टि से ही परमात्मा का दर्शन करने की योग्यता साधक में होती है । यदि परमात्मा की अनुकम्पा नहीं हो तो परमात्मा का साक्षात्कार सम्भव नहीं । हृदय के द्वारा, मननशील बुद्धि के द्वारा सभी तरह से निश्चित किया होने पर भी, यह परमात्मा जिस भक्त को अपना कृपा पात्र स्वरूप में स्वीकार करते हैं वे परमात्मा उस भगवदनुकम्पा सम्पन्न उपासक के द्वारा ही प्राप्त करने योग्य हैं । इस श्रुति वचन का विरोध होने लग जायगा । इसीप्रकार और भी-सत्य ज्ञान एवं अनन्त स्वरूप ब्रह्म है । आनन्द स्वरूप ब्रह्म है इत्यादि श्रुतियां ब्रह्म को सत् चित् और आनन्द स्वरूप प्रतिपादन करती हैं । जिनमें योगिजन रमण करते हैं । ब्रह्म स्वरूप सच्चिदानन्द नामक इत्यादि श्रुतियां एवं उन परब्रह्म का वाचक रकार आदि हैं इत्यादि स्मृति वचन भी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के नाम का 'राम' नाम एवं ब्रह्म स्वरूप का समग्र रूपसे साक्षात् वाचकत्व है इस अभिप्राय को प्रकाशित करती हैं । उन श्रुतियों के द्वारा अप्रत्यक्ष रूपसे प्रकाशन एवं इन श्रुतियों के द्वारा प्रत्यक्ष रूपसे प्रकाशन किया जाता है । यह विचार कर अन्य भगवद् विग्रहों के नामों से अपेक्षाकृत श्रीराम नाम की प्रधानता है, अन्य भगवद् विग्रह नाम तो गुण क्रिया आदि की अपेक्षा के कारण गौण (अप्रधान) हैं । सभी नित्यों में नित्य है । सभी चेतनों में चेतन है,

इत्याद्याः श्रुतयः, 'तद्वाचको रकारः' इत्याद्याः स्मृतयश्च श्रीरामनाम्नः ब्रह्मस्वरूपस्य कात्स्न्येन साक्षाद् वाचकत्वं प्रकाशयन्ति इतिकृत्वानामान्तरेभ्यो मुख्यत्वं नामान्तराणि तु गुणापेक्षतया गौणानि । 'नित्यो नित्यानां' 'सदापश्यन्ति सूरयः' 'नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयंसनातनः' इत्यादिश्रुतिस्मृतिभिः जीवानामपि नित्यत्वमाह तेन रम्यगुणाश्रयत्वेन श्रीरामस्य नित्यत्वेऽनादित्वे च न कश्चित् क्षतिः । 'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कुतश्चनेति यथानन्दस्य ब्रह्मसम्बन्धित्वं तथा चिन्मयस्याद्वितीयस्य, चिन्मयः परमेश्वरः, रामचन्द्रश्चिदात्मकः' इत्याद्यास्सामानाधिकरण्येन स्वरूपसमानाकाराधर्माः । तथा च-

चिद् वाचको रकारः स्यात् सद्वाच्याकार उच्यते ।
मकारानन्दवाची स्यात् सच्चिदानन्दमव्ययम् ॥

सदैव तत्त्व विज्ञानी विद्वज्जन देखते हैं । नित्य है सभी में रहने वाला है, स्थायी है अचल है एवं सनातन है, अर्थात् उत्पत्ति विनाश बृद्धि ह्रास आदि जिसका कभी नहीं होता है । इत्यादि श्रुति स्मृति वचनों के द्वारा जीवात्माओं की भी नित्यता को प्रतिपादित करते हैं । इसप्रकार नित्यता आदि गुण जीवात्मा एवं परमात्मा दोनों में ही होने से भी, रमणीय गुणों का आश्रय होने के कारण भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की नित्यता एवं अनादित्व में किसी तरह की हानि नहीं होती है । तत्त्व ज्ञानी पुरुष परब्रह्म के आनन्द स्वरूप को जानकर फिर किसी से भी भयाक्रान्त नहीं होता है । इस कथन के द्वारा जिस तरह आनन्द का ब्रह्म सम्बन्धित्व का रूप से बोध होता है, उसी तरह चिन्मय अद्वितीय का, चिन्मय परमेश्वर हैं, श्रीरामचन्द्र चित् स्वरूप हैं । इत्यादि श्रुति वचन विशेष्य विशेषण बोधक पदों में समान विभक्तित्व होने के कारण जैसा भगवान् का स्वरूप है उन्हीं के समान स्वरूपधारी धर्म भी भगवान् में है । इसीप्रकार और भी कहा है-चित् स्वरूप का प्रतिपादक 'र'कार है एवं सत् स्वरूप प्रतिपादक 'आ'कार कहा जाता है । और 'म'कार आनन्द स्वरूप वाचक है । इसलिये 'राम' अविनाशी सच्चिदानन्द वाचक है, 'राम' में साक्षात् सच्चिदानन्द वाचकता है । इसप्रकार श्रुति स्मृति वचनों के आधार पर श्रीरामचन्द्रजी का सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म का साक्षात् वाचकत्व प्रमाणित होता है ।

यद्यपि कृष् धातु भूमि अर्थ वाचक है तथा ण शब्द पर निवृत्ति रूप अर्थ वाचक है वे दोनों मिलकर भगवान् श्रीकृष्ण शब्द का भी सदानन्द रूप अर्थ का

इत्थं श्रीरामस्य सच्चिदानन्दपरब्रह्मवाचकत्वं श्रुतिस्मृतिभ्यां संभवति। यद्यपि 'कृषिभूवाचकः शब्दः णश्च निर्वृत्तिवाचकः' इत्यतः श्रीकृष्णस्यापि सदानन्दवाचकत्वं नामान्तरेभ्य उत्कृष्टत्वञ्चोक्तम्, तथा सदानन्दयोर्गुणयोरेव तथा बोधः। चित् पदाध्याहारस्तु सच्चिदानन्दाख्या इत्यस्मादेव भवति। यदि तु सद प्रत्याहार उच्यते तदपि न, दकारस्य हलन्तत्वौचित्यात्। श्रीरामनाम्नस्तु कृष्णादि नामप्रकाशकत्वेन मुख्यत्वमुत्कृष्टत्वञ्च, स्पष्टीकृतमिदं सदाशिवेन-

सर्वं वसति वै यस्मिन् सर्वस्मिन् वसते तु यः।
तमाहुर्वासुदेवेति मुनयः शास्त्रकोविदाः॥ इत्यारभ्य-

कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः।
तयोरैक्यं महाविद्ये कृष्ण इत्यभिधीयते॥

वाचक होते हैं। और अन्य नामों की अपेक्षा अधिक उत्कृष्टता भी 'कृष्ण' में है ऐसा कहा गया है। तो श्रीकृष्ण को भी सबसे उत्कृष्ट क्यों नहीं मानें? उसप्रकार उन सत् और आनन्द नामक गुणों का ही वैसा बोध होता है, न कि सच्चिदानन्द रूप अर्थ का। यदि कहें कि चित् पद का अध्याहार करके पुनः सच्चिदानन्द रूप अर्थ का बोध करेंगे। तब तो चित् पद का अध्याहार सच्चिदानन्दाख्या इत्यादि श्रुति से ही होता है। यदि कहें कि सत् का स से लेकर आनन्द का द के साथ आदिरन्त्येन सहेता इस व्याकरण नियम से सद् प्रत्याहार मानकर सच्चिदानन्दार्थ बोध होता है। तो यह भी नहीं कह सकते हैं। सद् प्रत्याहार में दकार को हलन्त होना चाहिये और यहां पर आनन्द का दकार हलन्त नहीं है। और श्रीराम नाम का तो श्रीकृष्ण आदि के नाम का प्रकाशक होने के कारण मुख्यता है तथा सर्वोत्कृष्टता है। यह विषय भगवान् शंकर के द्वारा सुस्पष्ट किया गया है। जैसे कि-

जिसमें सभी निवास करते हैं, और जो समस्त चराचर ब्रह्माण्ड में निवास करता है। उन्हें समस्त वेदादि समस्त शास्त्र पुराणों के तत्त्व ज्ञानी मुनिगण वासुदेव शब्द से कहे हैं। कृष्ण शब्दगत कृष् शब्द भू अर्थ सत्तार्थ को कहनेवाला शब्द है, एवं ण शब्द आनन्द रूप अर्थ का वाचक है। अर्थों की एकता का जो महाज्ञानी है वे 'कृष्ण' इस शब्द से कहे जाते हैं। नारायण नृसिंह विष्णु आदि जो भगवद् विग्रह के नाम समूह हैं जो बहुत अधिक संख्या में कहे गये हैं। उन सभी नामों की आत्मा तो श्रीराम नाम ही है एवं उन सभी नामों का प्रकाशक भी श्रीराम नाम ही है। जो

नारायणादिनामानि कीर्तितानि बहून्यपि ।
आत्मा तेषां तु सर्वेषां रामनामप्रकाशकः ॥
अतति सर्वेषु सच्चिदानन्दादिरूपेणेति आत्मा । उक्तञ्च तत्रैव-
सच्चिदानन्दरूपैस्तु त्रिभिरेभिः पृथक् पृथक् ।
वर्तते रामनामेदं शक्यं द्रष्टुं महेश्वरि ॥

इत्यन्तेन वचनेन श्रीरामनाम्नः सच्चिदानन्दरूपत्वं सर्वनामवाचकत्वम्, तदुपासनया ज्ञानेन च सर्वे उपास्या ज्ञेयाश्च स्युरिति । अतएव च शिवागस्त्यादिभिः सहस्त्रगुणाधिक्यं सर्ववेदपाठफलप्रदत्वम्, जपमात्रेण सर्वाघौघविनाशकत्वादिक मुक्तम् । हारीतेनापि स्मृतिकृतोक्तम्-
श्रीरामाय नमो ह्येतत्तारकं ब्रह्मसंज्ञकम् ।
विष्णोर्नाम्नां सहस्त्रेण तुल्य एष महामनुः ॥
अनन्तांभगवन्मन्त्रा नानेन तु समाकृताः ।
श्रियोरमणसामर्थ्यात् सौन्दर्यगुणसागरात् ॥

समस्त भगवद् विग्रहों के अन्दर सच्चिदानन्द स्वरूप में गतिशील रहता है वह आत्मा है। और वहीं पर कहा भी गया है इन तीनों के साथ अर्थात् अलग-अलग सत् चित् और आनन्द रूपके साथ एवं सच्चिदानन्द इस सम्बलित स्वरूप के साथ यह श्रीराम रामनाम विद्यमान है, हे महेश्वरी इन तत्त्वों को देखा जा सकता है। सर्वं वसति से लेकर यहां तक कथन के द्वारा श्रीराम नाम का सच्चिदान्द स्वरूपत्व और समस्त नाम वाचकत्व उस 'राम' एवं रामनाम की उपासना के द्वारा तथा ज्ञान के द्वारा जितने भी उपासना योग्य एवं जानने योग्य भगवत् तत्त्व हैं, वे सभी उपासित एवं ज्ञात हो जाते हैं। और इन्हीं कारणों से भगवान् शिव एवं अगस्त्य आदि महर्षियों के द्वारा श्रीराम नाम का अन्य विष्णु नामों से हजार गुणा अधिकता एवं रामनामोच्चारण मात्र से सर्व वेद पारायण फल प्रदानशीलता कहा गया है। और जप मात्र से ही समस्त पाप पुञ्ज का विनाशकत्व आदि निरूपण किया गया है। धर्मशास्त्रकार महर्षि हारीत के द्वारा भी कहा गया है-'श्रीरामाय नमः' यह मन्त्र ही ब्रह्म तारक महामन्त्र कहा गया है। क्योंकि यह महामन्त्र भगवान् विष्णु के हजारों नामों के समान है। भगवान् के अगणित संख्या में अनन्त मन्त्र कहे गये हैं लेकिन इस 'रामनाम' के समान एक भी मन्त्र नहीं कहे गये हैं। लक्ष्मी के साथ रमण सामर्थ्य सम्पन्नता के कारण एवं अनुपम

सच्चिदानन्दत्रिकाणां साक्षाद् वाचकत्वम् नामान्तराधिक्ये हेतुः । चिद् वाचको रकार इत्यादिभिरुक्तम् । तत्रैव च गुणक्रियाधिक्यमवलम्ब्य नामान्तरेभ्यः सहस्त्रगुणाधिक्यमुपपद्यते । वाचकाधिक्यसिद्धौ हेतूनां सर्वथा स्वरूपपर्यवसायित्वेन वाच्यसम्बन्धः कारणम् । 'सीतारामौ तन्मयावत्रपूज्याविति रामतापनीयवचनेन नामस्वरूपयोस्तादात्म्यं बुध्यते । तेनैव च वाच्यस्य वाचकरूपत्वम् ॥११॥

सौन्दर्य गुण सागरत्व आदि के कारण, सत् चित् एवं आनन्द इन तीनों अवयवों का श्रीरामनाम में साक्षाद् वाचकत्व है, इसलिये यह अन्य नामों से अधिकता में कारण है। 'चित् तत्त्व का वाचक र कार है' इत्यादि के द्वारा साक्षाद् वाचकत्व कहा गया है। और वहीं पर गुण क्रिया आदि की विशेषता से अधिकता को आधार बनाकर अन्य नामों के अपेक्षा हजार गुणा अधिकता की सिद्धि तर्कसंगत होती है। वाचक शब्द की अधिकता सिद्ध हो जाने के पश्चात् सभी कारणों का सभी प्रकार से अपने स्वरूप में सम्पन्नता शील होने से वाच्यार्थ के साथ सम्बन्ध होने के कारण बनता है। 'सीतारामौ तन्मयावत्रपूज्यौ' इस श्रीरामतापनीय उपनिषद् वचन के द्वारा जो समान स्वरूप वाले हैं उन्हीं का तादात्म्य सम्बन्ध समझा जाता है। असमान स्वरूप वालों का तादात्म्य सम्बन्ध नहीं समझा जाता है। और इसी कारण से प्रतिपाद्य अर्थ का प्रतिपादक शब्द के साथ समान रूपता होती है ॥११॥

श्रीरामचन्द्रस्य परब्रह्मशब्दोक्तस्य सर्वावतारित्वं प्रकाशयन्नाह-चिन्मयस्येति ।

चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः ।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणोरूपकल्पना ॥६॥

ब्रह्म शब्द से प्रिपाद्य श्रीरामचन्द्रजी का सर्वावतारित्व सर्वमूलकारणत्व आदि विषयों को स्फुट रूपसे अभिव्यक्त करते हुए श्रीरामतापनीय उपनिषद् का प्रकृत मन्त्र चिन्मयस्य आदि कहता है। चिन्मय अद्वितीय निष्कल प्राकृत भौतिक शरीर रहित परब्रह्म की उपासक भक्तों के भुक्ति मुक्ति आदि अभिमत प्रयोजन की सिद्धि के लिये भक्त हितार्थ अनेक रूपों की कल्पना की गयी है ॥६॥

चिदात्मकं ब्रह्म 'राम' पदेनोच्यते तस्य चिन्मयस्य परब्रह्मणः उपकल्पना, अत्र प्रकृतिजीवव्यावर्तकत्वेन परमिति विशेषणस्थाने अद्वितीयस्येति विशेषण

प्रदानेन परब्रह्माद्वितीयब्रह्मशब्दयोः अभिन्नार्थकत्वबोधः, तेन 'राम' शब्दाभिहितस्याद्वितीयस्य चिन्मयस्य ब्रह्मणोरूपकल्पनेति समन्वयः । चिन्मयस्येति तद्विग्रहस्य चिद्रूपत्वमुक्तम्भवति । व्याख्याननिरतश्चिन्मयः ब्रह्मानन्दैकविग्रहः यः सच्चिदानन्दात्मेत्यग्रेऽपि वक्ष्यमाणत्वात् श्रीरामस्य सत्यं चिदानन्दमयस्व-

चित् स्वरूप ब्रह्म 'राम' पद से कहा जाता है । उस चिन्मय ब्रह्म की उपकल्पना की गयी है । यहां पर प्रकृति और जीव में यह लक्षण समन्वित नहीं हो इसलिये इन दोनों का निवारण हेतु 'परम्' इस पद विशेषण के स्थान पर 'अद्वितीयस्य' इस विशेषण पद का उपयोग करने पर परब्रह्म एवं अद्वितीय ब्रह्म शब्दों को अभिन्नार्थ बोधक समझा जाता है । इससे ज्ञात होता है कि 'राम' शब्द के द्वारा निरूपण किया गया द्वितीय समाभ्यधिक रहित चिन्मय ब्रह्म के रूप की कल्पना की गयी है । इसप्रकार अर्थ का समन्वय होता है । 'चिन्मयस्य' ऐसा कहकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के शरीर का चिद् रूपत्व प्रतिपादित किया है । 'व्याख्यान में तत्पर चिन्मय ब्रह्मानन्दमय शरीर धारी जो सत् चित् आनन्द स्वरूप' इत्यादि विषय इस उपनिषद् में आगे प्रतिपादित किया जायगा । इसलिये भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की सत् चित् एवं आनन्दमय स्वरूपता सिद्ध होती है । इसीप्रकार कहा गया है-शृङ्ग निर्मित धनुष को धारण करनेवाले एवं चिदानन्दमय स्वरूप को धारण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी को 'निरतिशय तेजस्वी सत् चित् और आनन्दमय शरीर धारी अपनी क्रिया सम्पन्न किये' इत्यादि वचनों के द्वारा तात्विक रूपसे एवं स्वरूप के दृष्टि से और शारीरिक दृष्टि से स्मृतियों में सच्चिदानन्दमयता का प्रतिपादन किये जाने से भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का दिव्य तेजोमय अप्राकृत शरीर सिद्ध होता है । ऐसा यदि नहीं स्वीकार करें तो जीवात्माओं का भी स्वरूप के दृष्टि से चैतन्यमय होने से परब्रह्म में चिन्मयत्व निरूपण की निष्फलता हो जायगी । 'अर्धमात्रा स्वरूप रामचन्द्र सच्चिदानन्दमय दिव्य विग्रहवान् हैं' इत्यादि वचनों के द्वारा श्रीरामजी का दिव्य विग्रह (शरीर) वान् सुने जाने से प्रस्तुत ऋचा में 'अशरीरिणः' इस कथन से हेय (दुःखादि मिश्रित त्याज्य) शरीर से रहित होना समझा जाता है । मन्त्र में 'अद्वितीयस्य' इस कथन से परब्रह्म श्रीरामजी को अन्य किसी सहायक कारण से शून्य होना प्रतिपादित होता है । जैसे कुम्भार जुलाहा आदि का घट पटादि रचना में दण्डचक्र चीवर आदि एवं जुलाहा के तन्तु वेमा आदि सहायक अपेक्षित होता है । अन्यथा विना साधन के वह

रूपत्वम्। तथोक्तम्-'श्रीशार्ङ्गधारिणं रामं चिन्मयानन्दविग्रहम् । विरराम महातेजाः सच्चिदानन्दविग्रहः' इति । तत्त्वतः स्वरूपतः विग्रहतश्च सच्चिदानन्दमयत्वस्मरणात् । अन्यथा जीवानामपि स्वरूपतो चिन्मयत्वेन चिन्मयत्वोक्तेर्वैयर्थ्यं स्यात् । 'अर्धमात्रात्मको रामः सच्चिदानन्दविग्रहः' इतितस्य दिव्यविग्रहश्रुतेः 'अशरीरिण' इतिहेयशरीरराहित्यं बुध्यते । अद्वितीयस्येति सहायान्तरशून्यत्वम्, कुलालादीनां दण्डचक्रादीनां सहायत्वम् । 'न तत् समश्चाभ्यधिकश्च श्रूयते' इतिश्रुतेः, तत् समाभ्यधिकशून्यस्य वेति ज्ञेयम् । 'नैतद्यशो रघुपतेः सुरयाञ्चयात्त लीलातनोर्ह्यधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः' इतिस्मृतेश्च । निष्कलस्येति निर्गताः कलाः प्राकृतावयवा यस्मात् । अथवा निःसृताः कलाः मूर्तयो यस्मात् इतिसर्वावतारनिदानस्येत्यर्थः । अथवा-निष्कलस्य माया संश्लेषरहितस्येति । 'अशरीरिणः' इतिकर्मनिमित्तं हेयशरीरं निषिध्यते । 'पृथिवी कार्य सम्पादन नहीं कर सकता है। लेकिन परब्रह्म इच्छा मात्र से अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड की रचना करते हैं। परमेश्वर के समान अथवा उनसे वढकर कोई भी नहीं सुना जाता है' इस श्रुति वचन से अद्वितीयस्य का तात्पर्य परमात्मा के समान अथवा परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी से वढकर दूसरा कोई भी नहीं है यह समझना चाहिये। 'रघुकुल नायक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने से समान या अधिक प्रभाव से रहित लीला हेतु देह धारण किये हैं, उनका इतना ही यश नहीं है' इस स्मृति वचनानुसार भी अपने समान या अधिकता से रहित श्रीरामजी हैं। निष्कलस्य इस शब्द का तात्पर्य है कि-जिनसे प्राकृत अवयव रूप कलायें निकल चुकी हैं अथवा जिन श्रीरामजी से कला अर्थात् मूर्तियां विरचित हुई है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार समस्त अवतारियों के मूलकारण स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी का यह तात्पर्य है। अथवा निष्कलस्य का अर्थ माया सम्पर्क से शून्य श्रीरामजी का है। अशरीरिणः इस विशेषण कथन से कर्म मूलक हेय शरीर की शून्यता का निरूपण किया जाता है। अर्थात् कर्म हेतुक शरीर का निषेध किया जाता है। 'जिनका समग्र पृथिवी शरीर है। आत्मा जिनका शरीर है, संसार के समस्त पदार्थ में सर्वेश्वर के शरीरत्व है' इत्यादि श्रुति वचनों के आधार पर परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी का दिव्य शरीरत्व सिद्ध होता है। तथा अर्धमात्रा स्वरूप श्रीराचन्द्रजी केवल दिव्य आनन्दमय विग्रहवान् हैं। इसस्मृति के अनुसार भी भगवान् का दिव्य विग्रह है। इन वातों से प्रमाणित है कि परमात्मा के शरीर होने में किसी प्रकार का विवाद नहीं है।

यस्य शरीरम्' 'आत्म शरीरं' 'जगत् सर्वं शरीरन्ते' इत्यादिश्रुतेः परब्रह्मणो दिव्य शरीरं सिद्ध्यति । 'अर्धमात्रात्मको रामोदिव्यानन्दैकविग्रहः' इतिस्मृतेश्च परमात्मनः शरीरत्वे न मतभेदः । यथा 'अग्निषोमीयं पशुमालभेत' इत्यत्रेव 'न हिंस्यात् सर्वाणिभूतानि इत्यस्यां श्रुतेरेकदेशत्वेन संकोचः, तेनाग्निषोमीयपशु व्यतिरिक्तसिंहानिषेधवत् विरुद्धश्रुतीनामपि दिव्यशरीरव्यतिरिक्तभगवच्छरीरनिषेधपरत्वेनबोध्यः श्रीमद्रामायणकोशनिरुक्तादिशास्त्रसामञ्जस्ये त्वालम्भनशब्दः संश्लेशालिङ्गनस्पर्शादिपरो न तु सिंहादिपर इत्यन्यत्रप्रपञ्चयिष्ये । कल्पितस्य शरीरस्येति वचनेन तस्य निराकारत्वं न भवति । किं च-

सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः ।
हानोपादानरहिताः नैव प्रकृतिजाः क्वचित् ॥
परमानन्दसन्दोहाः ज्ञानमात्राश्च सर्वतः ।
सर्वे सर्वगुणाः पूर्णाः सर्वदोषविवर्जिताः ॥

जिस तरह अग्नि सोम देवता सम्बन्धी पशु का आलम्भन करना चाहिये, इस विधिवाक्य के साथ में ही-किसी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिये, यह विरोधी श्रुति होने से हिंसा निषेध करनेवाली श्रुति के एकांश रूपमें संकोच किया जाता है कि-अग्नि सोम देवता सम्बन्धित पशु से भिन्न पशु का आलम्भन नहीं करना चाहिये । उसीतरह परस्पर विरुद्ध अर्थों का बोध कराने वाली श्रुतियों का भी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का दिव्य शरीर से भिन्न प्राकृतिक शरीर नहीं है एतदर्थ बोधक जानना चाहिये वेदार्थ प्रतिपादक निरुक्त श्रीमद्रामायण एवं कोशादि वचनों के परिप्रेक्ष में आलम्भन शब्द का अर्थ संश्लेश स्पर्श आदि होता है सिंहा नहीं इस विषय पर अन्य स्थल में शास्त्र सामञ्जस्यानुकूल विस्तृत विचार किया जायगा । ऋचा में-'कल्पितस्य शरीरस्य' इस कथन द्वारा परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी का निराकार होना सिद्ध नहीं होता है । किन्तु इससे तो उस परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी का सभी प्रकार के शरीर नित्य त्रिकाल व्यापक, एवं शाश्वत है । उनका शरीर ह्रास और बृद्धि से सर्वथा शून्य है । और कहीं पर भी सर्वेश्वर श्रीरामजी का शरीर प्रकृति जनित नहीं है अर्थात् सभी अलौकिक हैं । सर्वोत्कृष्ट आनन्दों का पुञ्ज रूप और सर्वतोभावेन केवल ज्ञानमय शरीर है । उनके समस्त शरीर अनिन्द्य समस्त गुणों से परिपूर्ण हैं । अर्थात् सभी प्रशंसनीय गुण हैं, एक भी दोष नहीं है । यह वाराहपुराण का वचन भी परमेश्वर के प्राकृत

इतिवाराहपुराणवचनमपि परमात्मनः प्राकृतं शरीरं निषेधयति । 'निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनं' 'आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्' इत्यादिश्रुतिभिः अविद्याप्रत्यनीकस्य ब्रह्मणः कथमपि प्राकृतं शरीरसम्बन्धकल्पनं न युक्तम् । तस्य च परब्रह्मणोविग्रहो द्विभुजो मानव इवेति गम्यते तच्च सर्वेश्वरश्रीरामस्वरूपमेव तद्यथा-'द्विभुजः कुण्डलीरत्नमालीधीरोधनुर्धरः' इति 'ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् बाहूराजन्यः कृत' इति च 'बाहू' इतिद्विचनोपादानेन द्विभुजत्वं बुध्यते । 'प्रसन्नलावण्यसुभृन्मुखाम्बुलं जगच्छरण्यं शरणं नरोत्तमम् । दयापरं दाशरथिं महोत्सवं स्मरामि रामं सह सीतया सदा ॥ द्विभुजस्यैव रामस्य सर्वशक्तेः प्रियोत्तम ? ध्यानमेवं विधातव्यं सदा रामपरायणैः' इत्यादिरूपेणाचार्यचरण श्रीआनन्दभाष्यकारोक्तेश्च सर्वशरण्यस्य सर्वध्येयस्य परेशश्रीरामस्य द्विभुजत्वं
शरीर का निषेध करता है और दिव्य शरीर को संसाधित करता है । कला से रहित क्रियाओं से शून्य परम शान्त निन्दनीयता से विमुक्त एवं सभी प्रकार के क्लेशों से शून्य सूर्य के समान तेजोमय वर्णवाला, एवं अन्धकार से अत्यन्त दूर' इत्यादि श्रुति वचनों के द्वारा अविद्या के परम विरोधी परब्रह्म का किसी भी प्रकार से प्रकृति जनित शरीर के साथ सम्बन्ध योजना की कल्पना करना समुचित नहीं है। और उस परब्रह्म का शरीर दो भुजाओं वाला मनुष्य के समान है यह तात्पर्य प्रतीत होता है । जो सर्वेश्वरश्रीरामजी के स्वरूप में समुपासनीय है जैसे कि दो भुजाओं वाले कुण्डल धारी मणि माणिव्य आदि रत्नों से विरचित माला को धारण करनेवाले, परम धैर्य परिपूर्ण स्वरूप तथा धनुष वाण को धारण किये हुये इत्यादि स्मृति तथा इस परमेश्वर का ब्राह्मण मुख है। क्षत्रिय भुजायें हैं इत्यादि श्रुति वचन में 'बाहु' शब्द में द्विवचन का निर्देश होने से श्रीरामचन्द्रजी का द्विभुजत्व है यह निश्चित रूपसे समझा जाता है 'जिनका मुख कमल विलक्षण शोभा से सर्वदा युक्त रहता है तथा जो परमात्मा स्वरूप हैं, और शरणागत व्यक्तियों के रक्षण करने के लिये सर्वदा प्रयत्नशील रहते हैं । वे एक दो व्यक्तियों का ही रक्षण करते हैं ऐसा नहीं है किन्तु जगन्मात्र सम्पूर्ण संसार का रक्षक हैं नरोत्तम हैं । दशरथ राजा के पुत्र के रूपमें अवतार लिये हैं । जो स्वयं महोत्सव रूप हैं तथा परम दयालु हैं तथा श्रीसीताजी से सर्वदा युक्त हैं ऐसे सर्वेश श्रीरामजी का मैं सर्वदा स्मरण ध्यान करता हूँ हे प्रियोत्तम सुरसुरानन्द ? सर्वशक्तिमान् द्विभुज श्रीरामजी का ही शुभेच्छु श्रीराम भक्त पुरुष को सदा ध्यान करना चाहिये'

निश्चप्रचं तदेव च ध्येयस्वरूपमिति च । 'रमन्ते योगिनः' इत्यस्यां पूर्वश्रुतौ निरूपितस्य 'राम' शब्दोक्तस्य उपासकानां भक्तानां भुक्तिमुक्तिप्रभृत्यभिमत प्रयोजनसिद्ध्यर्थं रूपकल्पनेति सम्बन्धः । जीवादिव्यावर्तनाय पूर्वं ब्रह्मशब्दः परशब्देन विशेषितोऽत्राद्वितीयशब्देनेति तयोस्तादात्म्यावगतेः 'रामाख्यस्य चिन्मयास्याद्वितीयब्रह्मणोरूपकल्पनेति । अत्र शब्दानामनुशासनमाचार्येणा-चार्यस्य वा, इत्यत्रेव ब्रह्मशब्दस्य विभाषामिच्छन्ति विद्वांसः, तेन 'ब्रह्मणः' इत्यत्र कर्तरि रूपाणामित्यत्र च कर्मणि षष्ठीसमासः । कल्पितस्य शरीरस्येत्युक्तेः रूपपदं

इसप्रकार श्रीआनन्दभाष्यकारजी ने दो हाथ वाले सर्वेश्वर श्रीरामजी का ही ध्यान का विधान किया है अतः द्विभुज श्रीरामजी से अतिरिक्त कोई भी ध्येय तत्त्व नहीं है । 'रमन्ते योगिनः' इत्यादि पूर्व निरूपित श्रुति वचनों में प्रतिपादन किया गया श्रीराम शब्द के कथन का ब्रह्म के स्वरूप कल्पना की जाती है । श्रीरामचन्द्रजी की उपासना करनेवाले भक्तजनों समस्त सांसारिक भोग एवं शरीरान्त में मोक्ष आदि अभीष्ट प्रयोजनों की सफलता के लिये श्रीरामरूप की कल्पना की गयी है ऐसा पदों का सम्बन्ध समझें । जीव आदि के साथ सम्बन्ध का निराकरण करने के लिये पहले ब्रह्म शब्द पद शब्द के द्वारा विशेषण युक्त किया गया, और इस ऋचा में तो ब्रह्म शब्द 'अद्वितीय' इस पद के द्वारा विशेषण युक्त किया गया है । इसलिये 'पर' एवं 'अद्वितीय' शब्दों के अर्थ विषय में परस्पर तादात्म्य सम्बन्ध है ऐसा ज्ञात होता है । 'राम' जिनका नाम है ऐसे दिव्य तेजोमय विग्रहधारी अद्वितीय ब्रह्म के रूप की कल्पना की गयी है । यहां पर महाभाष्य में 'अथशब्दानुशासनम्' इस वार्तिक का शब्दों का अनुशासन आचार्य के द्वारा अथवा आचार्य का यह व्याख्या जैसी की गयी है उसीतरह यहां पर भी ब्रह्म शब्द का विकल्प से सम्बन्ध चाहते हैं ऐसा विद्वानों का अभिमत है । इसलिये 'ब्रह्मणः' इस शब्द में कर्ता अर्थ में षष्ठी है । एवं रूपों की कल्पना यहां पर कर्म अर्थ में षष्ठी समास किया गया है । क्योंकि आगे कहा गया है-कल्पना किया गया शरीर का, इसमें रूप पद शरीर अर्थ बोध कराने हेतु है । इससे 'राम' नाम से विख्यात दो भुजा वाले ब्रह्म के साथ अपने नित्य रूपमें मत्स्य कूर्म वराह नृसिंह वासुदेव आदि का चार भुजाओं वाले आदि शरीरों के साथ कल्पना की जाती है अर्थात् चतुर्भुजादि रूप आविष्कृत किये जाते हैं । मणि के समान रूपों का आविष्कार होता है । जिसतरह वैदुर्य नामक मणि अपने स्वभाव से शुक्लवर्ण के

शरीरार्थकम्, तेन 'रामाख्येन ब्रह्मणा स्वनित्यरूपे मत्स्यकूर्मवराहनृसिंह वासुदेवादीनां चतुर्भुजादिशरीरैः कल्प्यन्ते आविष्क्रियन्ते मणिवत् । यथा वैदुर्यमणिः स्वभावतः शुक्लरूपोऽपि नीलपीतरक्तहरितपुष्पादिसान्निध्यात् तत्तद् रूपमाविष्करोति तथैव रूपाण्याविष्करोति । उक्तञ्च पाञ्चरात्रे →

मणिर्यथाऽविभागेन नीलपीतादिभिर्युतः ।
रूपभेदमवाप्नोति ध्यानभेदात्तथाच्युतः ॥

नन्वत्ररूपशब्दस्य सामान्यवाचकत्वेन वाहनशक्तिसेनाजीवादीनामपि संग्रहः स्यादिति चेत् न किं द्विभुजादिसहस्रभुजान्ताः सर्वेऽवताराः तदङ्गनाः तदस्त्रादीनि च संगृहीतानि स्युः ? सर्वेषामविशेषेण वा ब्रह्मणि कल्पना उपास कानामित्युक्तेरुपासकत्वेन ब्रह्मादिजीवानां तदुपासकतया तच्छेषत्वं बुध्यते, कार्यार्थमित्युक्तेश्च कार्यनिष्पादक्षमस्य ब्रह्मणः सर्वज्ञत्वसर्वशक्तिमत्वादिना उपास्यत्वसर्वेश्वरत्वादिज्ञायते । अवतारस्य च तत् पृथक्त्वासिद्धेः अवताराणां ब्रह्मणि कल्पना । वर्णवाहनसेनास्त्रशस्त्रादीनाञ्च तत् सम्बन्धित्वमेव ब्रह्मण्येव हि

स्वरूप वाला होने पर भी नील पीत हरा लाल पुष्प आदि के साहचर्य से उन-उन रङ्गों से अपने स्वरूप को प्रकट करता है, उसी तरह सर्वावतारी श्रीरामजी भी भक्तों पर अनुग्रहार्थ भक्तेच्छा परिस्थिति आदि के अनुसार अनन्त रूपों को आविष्कृत करते हैं। पाञ्चरात्र स्मृति में कहा भी है-जैसे वैदुर्य मणि अपने से अभिन्न रूपमें नीलपीतादि रूपों को आविष्कृत करता है उसी तरह अच्युत सर्वेश्वर श्रीरामजी ध्यान भेद से अनन्त रूपों को प्रकट करते हैं। यदि यह कहें कि यहां रूप शब्द सामान्य वाचक है इसलिये वाहन शक्ति सेना जीव आदि का भी संग्रह होने लगेगा ऐसा नहीं है। क्योंकि द्विभुज से आरम्भ कर सहस्र भुजान्त भगवान् के सभी अवतार उन अवतारों की पत्नियां उनके अस्त्र शस्त्र आदि भी रूप शब्द से संगृहीत होंगे। अथवा सभी का सामान्य रूपसे बोध होने लगेगा। क्योंकि ब्रह्म में कल्पना उपासकों के हितार्थ होती है यह कहे जाने से। उपासकों का उपासकत्व ही ब्रह्मा से लेकर जीव पर्यन्त का श्रीरामजी का उपासक होने के कारण उनका (ब्रह्म का) शेषत्व समझा जाता है। 'कार्यार्थम्' यह शब्द कहे जाने से कार्य को परिपूर्ण करने में समर्थ व्यक्ति स्वरूप ब्रह्म की सर्वज्ञता सर्वशक्तिमत्ता आदि के द्वारा उपास्यत्व सर्वेश्वरत्व सर्व मूलकारणत्व आदि ज्ञात होता है। और ब्रह्म के अवतारों का ब्रह्म से अलग होना सिद्ध नहीं होने से अर्थात् श्रीरामाभिन्न होने से

पञ्चधेति उपसंहारवचनस्य अजहत् स्वार्थया लक्षणया ब्रह्मणि तत् प्रधानेषु मुख्य वृत्यावाहनादिषु च गौणवृत्याबोधः, प्रधानत्वाद् ब्रह्मणोनिर्देश उपपद्यते ॥१२॥

यथा यस्य यत्र प्रधानता भवति तस्यैव प्रधानेन हि व्यपदेशा भवन्ति इतिन्यायेन व्यवहारोजायते, यथेन्द्रियाणां पार्थक्येनापि तेषां प्राणस्य प्रधानतोपनिषत्सु श्रूयते । यथा च पञ्चीकृतेषु महाभूतेषु सर्वेषु सत्स्वपि पृथिव्याः पृथिवीत्वव्यवहारः जलस्य च जलत्वेन, तथैव ब्रह्मणः प्रेरकतया वाहनसेनादिषु ब्रह्मत्वेपि ब्रह्मणः प्राधान्यम् । यथा च वाहनसेनादिसहिते राजनि गच्छति राजासौगच्छतीति, तेन वाहनसेनादिसहितस्य राज्ञोबोधः, तथैव ब्रह्मणः प्राधान्यात् ब्रह्मशब्देन समेषां बोधः । तेन च 'ब्रह्मणोरूपकल्पनेति वचनस्य तैः सहितस्य बोधात् । 'रामाख्येन ब्रह्मणा स्वनित्यरूपे विष्ण्वादिकल्पनाकृता,
अवतारों की ब्रह्म में कल्पना होती है यह ज्ञात होता है । ब्रह्म के वर्ण वाहन सेना अस्त्र शस्त्र आदि का भी ब्रह्म से सम्बन्धित्व ही है । 'ब्रह्म में पांच प्रकार से' इस उपसंहार वचन का अजहस्त्वार्था लक्षणा वृत्ति के द्वारा ब्रह्म में अथवा ब्रह्म की जिन में प्रधानता है उनमें मुख्य अभिधा शक्ति के द्वारा और वाहन आदि में अप्रधानता वृत्ति लक्षणा शक्ति के द्वारा बोध होता है । प्रधान होने के कारण 'ब्रह्मणः' यह निर्देश करना युक्ति-तर्कसंगत होता है ॥१२॥

जिसकी जहां पर प्रधानता होती है, उसी के नाम से समूह होने पर भी मुख्य रूपसे व्यवहार होता है । क्योंकि प्रधान के द्वारा ही अमुख्य से मुख्य व्यवहार स्वरूप व्यपदेश होता है यह नियम है । ऐसा ही लोक व्यवहार देखा जाता है । जैसे आँख कान नाक आदि इन्द्रियों के पृथक् पृथक् स्वरूप एवं कार्य होने पर भी प्राण के होने पर ही ये इन्द्रियां कार्य शील होती हैं और समस्त इन्द्रियों में प्राण की प्रधानता है ऐसा उपनिषदों में सुना एवं देखा जाता है । और जिस तरह पञ्चीकृत महाभूतों में, सभी महाभूतों में सभी महाभूतों के होने पर भी 'यदर्धं तस्य नाम तत्' इस आचार्य श्री के निर्णयानुसार पृथिवी की प्रधानता है एवं अन्य गौण हैं तो पृथिवीत्व व्यवहार होता है । और जल की प्रधानता होने पर जलत्व का व्यवहार होता है । उसी तरह समस्त साधन एवं शक्ति आदि का प्रेरक ब्रह्म के होने से उनके वाहन शक्ति सेना आदि में ब्रह्मत्व होने पर भी ब्रह्म की प्रधानता के कारण ब्रह्मत्व का व्यवहार होता है । जैसे कि वाहन सेना आदि के सहित राजा को जाते हुए देख कर लोक कहते

विष्णुत्वेचतुर्भजत्वादिना सह तदनुरूपवाहनसेनादीनाञ्च बोधः । यथा च वाहनसेनादिसहितेऽपि राजनि गच्छतीति तत्र राज्ञः प्राधान्यात् असौ राजा गच्छतीति प्रयोगः । तथा च 'ब्रह्मणोरूपकल्पना' इतिवचनस्य वाहन सेनादिसहितस्य ब्रह्मणः तद्रूपाविष्करणार्थकत्वं सिद्ध्यति । तेषामुपासकानां कार्यार्थं श्रीरामाख्येन ब्रह्मणा स्वनित्यरूपेविष्ण्वादिचतुर्भुजादिकल्पनाकृता । तेषु

हैं 'यह राजा जा रहा है' इस कथन के द्वारा वाहन सेना आदि के सहित पदार्थ में 'राजन्' पदार्थ का ज्ञान होता है । उसी तरह ब्रह्म की प्रधानता होने से ब्रह्म शब्द के द्वारा तत् सम्बन्धित सभी का बोध होता है । और इस तरह की युक्ति के द्वारा ब्रह्म के रूप की कल्पना की गयी-इस श्रुति वचन का उन वाहन शक्ति सेना आदि के सहित का ज्ञान होने के कारण, श्रीरामचन्द्र नाम से प्रसिद्ध ब्रह्म के द्वारा अपने त्रिकाल सत्य रूप में श्रीविष्णु नृसिंह कृष्ण नारायण वामनादि रूपों की कल्पना की गयी । और जब भगवान् श्रीराम विष्णु आदि स्वरूप में प्रतीत होते हैं तब चतुर्भुजत्व शंख चक्र गदादि धारकत्व के साथ-साथ तत् सम्बद्ध वाहन सेना आदि की कल्पना की गयी इस अर्थ का बोध होता है । और जिस प्रकार वाहन सेना आदि के सहित राज के जाने पर भी उस समूह में राजा की प्रधानता के कारण यह राजा जाता है इसप्रकार का ज्ञान होता है एवं व्यवहार होता है । और उसी तरह 'ब्रह्म के रूप की कल्पना की गयी' इस श्रुति वचन का वाहन शक्ति सेना आदि सहित ब्रह्म का उन-उन स्वरूपों के आविष्कार करना रूप अर्थ बोधकता सिद्ध होती है । उन उपासकगण के अभिमत प्रयोजन की सिद्धि के लिये श्रीराम नाम से प्रसिद्ध ब्रह्म के द्वारा अपने नित्य स्वरूप में विष्णु आदि चतुर्भुजादि स्वरूपों की कल्पना की गयी । और उन-उन रूपों में शक्ति प्रदान करने के कारण वाहन शक्ति सेना आदि का उन्हीं विष्णु आदि शब्दों से बोध होता है । क्योंकि उन विष्णु आदि अर्थों में विष्णु आदि वाचक शब्दों की प्रधानता है इसलिये उन्हीं शब्दों से बोध होगा । भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की केवल इच्छा से ही श्रीविष्णु आदि स्वरूपों के साथ उन-उन अवतारों के अनुरूप वाहन शक्ति सेना आदि के साथ अपना नित्य स्वरूप प्रकट किये जाते हैं । भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को अवतारों का मूलकारण होने के कारण, श्रीरामजी की पृथकता स्वीकार करने पर, अथवा उन अवतारों को स्वतन्त्र रूपसे नित्यत्व स्वीकार करने पर श्रीरामजी में मूलकारणत्व वचन की विशेष रूपसे हानि होगी । क्योंकि मूलकारणत्व का दो तीन

तेषु रूपेषु शक्तिप्रदानत्वात् वाहनशक्तिसेनादीञ्च तेनैवबोधः, तत्र तद्वाचकशब्दस्य प्रधानत्वात् । श्रीरामचन्द्रस्येच्छयैव विष्णवाद्यनुरूपवाहनशक्त्यादिभिः सह स्वनित्यरूपमाविष्क्रियन्ते । अवताराणां मूलकारणाद् भिन्नत्वाङ्गीकारे नित्यत्व स्वीकारे च मूलकारणत्ववचनव्याघातः । मूलकारणत्वस्य द्वित्र्यादिनिष्ठत्वा-सम्भवात् । तस्य तत्तदुपासकानां कार्यकाले तत्तद् रूपधारित्वस्वीकारे तेषां जन्यत्वेन घटादिवदनित्यत्त्वापत्तिः । अस्माद् मणिरूपन्यायेन ब्रह्मणोरूपकल्प नेति प्रत्यक्षश्रुतिवचनेन 'सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः' इतिवचनेन च व्यवस्था । ब्रह्मणोनित्यविग्रहे विग्रहान्तराणां भानं तु बोध्यस्य नित्यत्वमुपपन्नं भवति । मणिर्यथाऽविभागेनेत्यादियुक्त्यारूपकल्पना । अत्र विषये अनादि-विग्रहस्य युगपत् क्रमेण वा तत्तद्रूपबोधदर्शनात् न दोषस्यावकाशः । यथा जनकपुरे श्रीरामचन्द्रस्य बालबृद्धस्त्रीमित्रशत्रूणां स्वस्वाभिमतस्वरूपस्य भासमानत्वम् । तत्तद्रूपोपासकानां स्वनित्यस्मृतविग्रहप्राप्तियोग्यानां मोक्षदशा

आदि में स्थित होने की सम्भावना हो जायेगी, जो उचित नहीं है। अतः उस 'श्रीराम' नामक परब्रह्म का उन-उन उपासकों के अभिमत प्रयोजन सिद्धि रूप कार्य सम्पादन के समय में उन-उन स्वरूपों का धारण कर्तृत्व स्वीकार करने पर उन-उन अवतारों के उत्पन्न होने से घट पटादि जन्य पदार्थों के समान अनित्य होने का दोष उपस्थित हो जायगा। अवतारों में जन्यता मूलक आपत्ति नहीं हो इसलिये मणि रूप न्याय से अर्थात् मणि सन्निहित पुष्पादि स्वरूपों का बोध जैसे मणि के तादात्म्येन होता है उसके समान 'ब्रह्मणोरूपकल्पना' इस प्रत्यक्ष श्रुति के अनुसार 'उस परमात्मा के समस्त विग्रह नित्य हैं एवं शाश्वत हैं' इस वचन के द्वारा भी नित्यत्व की व्यवस्था होती है। परब्रह्म के नित्य विग्रह में नित्य अन्य विग्रहों की अनुभूति तो बोध करने योग्यता के आधार पर नित्यत्व बोध युक्तिसंगत होता है। मणि जिस तरह अन्य वस्तुओं के स्वरूप का तादात्म्येन बोध कराता है उसी तरह रूपों की कल्पना है इस अनेक स्वरूप बोध के विषय में अनादि भगवत् स्वरूप का एक साथ अथवा क्रमशः, तत्तत् स्वरूपों का अनेक स्थान बोध देखा गया है, जैसे कि जनकपुर में श्रीरामचन्द्रजी का बालक बृद्ध स्त्री मित्र शत्रु आदि का अपने अपने अभीष्ट स्वरूपों का प्रतीत होना लोक प्रसिद्ध है। उन-उन भगवद् विग्रहों की उपासना करनेवालों का अपने नित्य स्मरण किये गये नित्य भगवत् स्वरूपों की प्राप्ति के योग्य भक्तजनों को मोक्ष की अवस्था में भी उन्हीं

यामपि तद्विग्रहस्यैव प्राप्तिः । 'यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् । तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥ इतिवचनेनापि एकस्यैव बहुरूपिणस्तत्तत्कार्यार्थं युगपदनेकरूपेणैकरूपेण च प्राकट्यात्, विलक्षणशक्तिमतोऽपरिच्छिन्नविग्रहस्यानेकस्थाने दृश्यत्वं निरूपितम्भवति । अयमेव श्रुत्यनुकूलः पक्षः ॥१३॥

उपासित स्वरूपों की प्राप्ति होती है । जिन जिन पदार्थों का पुनः पुनः चिन्तन करता हुआ प्राणी अवसान काल में शरीर का त्याग करता है, उस भावना से सुसंस्कृत अन्तःकरण होने से उन-उन वस्तुओं को ही प्राप्त करता है । इस वचन से भी एक का ही अनन्त स्वरूपधारी का भक्तों के तत्तत् प्रयोजनों की सिद्धि के लिये एक साथ या क्रमशः, अनेक रूपमें अथवा एक रूपमें प्रकटता होती है । क्योंकि विलक्षण सामर्थ्य सम्पन्न सीमाओं से अतीत अनन्त विग्रह को धारण कर्ता का अनेक स्थानों पर दृश्यत्व होना प्रतिपादित होता है । और यही वेद के अनुकूल सिद्धान्तपक्ष भी है ।१३।

'ब्रह्मणोरूपकल्पनेति सामान्येन यन्निरूपितम् पूर्वं तदेव विशेषरूपेण दर्शयन्नाह→रूपस्थानमिति-

रूपस्थानां देवतानां पुंस्त्र्यङ्गास्त्रादिप्रकल्पना ।
द्विचत्वारिषडष्टासां दशद्वादशषोडश ॥७॥
अष्टादशामी कथिता हस्ताःशङ्खादिभिर्युता : ।
सहस्रान्तास्तथा तासां वर्णवाहनकल्पना ॥८॥

ब्रह्म के रूपकी कल्पना या ब्रह्म में रूपकी कल्पना यह सामान्य रूपसे जो पूर्व की ऋचा में प्रतिपादन किया जा चुका है, उसी विषय को विशेष रूपसे दिखलाते हुये रूपस्थानाम् इत्यादि ऋचाओं का आरम्भ करते हैं । भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के नित्य रूप में प्रकट किये गये देवताओं के श्रीविष्णु नारायण नृसिंहादि पुरुष बोधक देवताओं तथा श्रीलक्ष्मी आदि स्त्री बोधक देवताओं के अंगों की कल्पना की गयी है । तथा उनके दो चार छ आठ दश वारह सोलह अठारह से लेकर हजार पर्यन्त हाथ पैर मुख नासिका आदि अवयवों की कल्पना विद्वानों के द्वारा कही गयी है । तथा उन हाथों में शङ्ख चक्र गदा पद्म धनुष वाण आदि अस्त्र शस्त्र तथा पार्षद आदि की

कल्पना कही गयी है। तथा शुक्ल पीत कृष्ण आदि वर्णों एवं गरुड़ आदि वाहनों की कल्पना कही गयी है ॥७/८॥

रूपस्थानामिति-स्वनित्येस्वरूपे आविष्कृतानि यानि रूपाणि तत्र तत्तद् रूपेण स्थितानां तद्रूवतामितिभावः। अत्र रूपशब्देन स्वनित्यरूपे दर्शिताः तत्तदवतारविग्रहाः उच्यन्ते। तेऽपि अस्फुटस्त्रीत्वपुंस्त्वबोधक्रलक्षणविशेषाः, तथानभिव्यक्तमत्स्यकूर्मवराहाद्यङ्गविशेषा इतिप्रतीयन्ते। यतोहि पुंस्त्वादि कल्पनापश्चात् श्रूयते। पुंस्त्र्यादिकल्पनेति देवतानामित्यपि भाविनोभूतवन्निर्देशः, तथा च स्वनित्यरूपे पिण्डरूपेण दृश्यमानानां देदीप्यमानानां देवानां पुंस्त्वादि कल्पना उपासकानां कार्यार्थम् ब्रह्मणा कृतेति समन्वयः। तथैव उपासकानां कार्यार्थं वर्णवाहनादिकल्पना ब्रह्मणा कृता। अथवा रामाख्यस्य ब्रह्मणो यद् द्विभु जादिमद् रूपं तस्मिन् रूपे तिष्ठन्तीति रूपस्थाः। सदैव ते श्रीरामरूपे तिष्ठन्ति प्रयो

'रूपस्थानाम्' यह कहने का तात्पर्य यह है कि-परब्रह्म भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने नित्य स्वरूप में जिन रूपों को प्रकट किये हैं उनमें तत्तद् रूपों में विद्यमान उन स्वरूपधारी देवताओं के यह अभिप्राय है। यहां पर रूप शब्द से अपने नित्य रूप में दिखाये गये उन-उन अवतारों के रूपमें देवताओं का शरीर कहा जाता है। उन देवताओं के शरीर भी पहले की अवस्था में अभिव्यक्त नहीं थे अतः पुरुष स्त्री आदि का स्पष्ट रूपसे बोध नहीं होता था। उनके स्त्री पुरुष बोधक लक्षण प्रारम्भिक अवस्था में नहीं थे, इसप्रकार अव्यक्त मत्स्य कूर्म वराहादि अङ्ग विशेष यह अर्थ प्रतीत होता है। क्योंकि श्रुति वचन में पुंस्त्री आदि अङ्गों की कल्पना वाद में सुनी जाती है। पुंस्त्री आदि कल्पना इस कथन से देवताओं का यह भी भविष्यार्थ बोधक शब्द का भूतवत् निर्देश किया गया है। इस तरह अपने नित्य रूपमें अविभक्तांग पिण्ड के समान आकृति में दिखाई देते हुए देदीप्यमान प्रकाश स्वरूप अङ्ग वाले देवताओं की पुरुष स्त्री आदि अङ्गों की उपासकों के अभीष्ट कार्य सिद्धि के लिये ब्रह्म के द्वारा कल्पना की गयी, इसप्रकार पदों का परस्पर अन्वय होता है। उसी तरह उपासक भक्तों के अभीष्ट प्रयोजनों की सफलता के लिये वर्ण तथा वाहन आदि की कल्पना परब्रह्म श्रीरामजी के द्वारा की गयी। अथवा श्रीराम नाम से प्रसिद्ध परब्रह्म का जो नित्य द्विभुजादि स्वरूप है उस रूपमें विद्यमान रहनेवाले, क्योंकि वे सदैव भगवान् के नित्य रूपमें स्थित रहते हैं, और उपासकों के प्रयोजनवश मणिरूप न्याय अर्थात् जैसे शुक्ल

जनवशाद् मणिरूपादिन्यायेनाविर्भवन्ति तेन 'रामः' सर्वरूपी, तत्तत्काले विष्ण्वादिस्वरूपेणब्रह्मादिस्वोपासककार्यार्थमाविर्भवन्ति । तदुक्तम् श्रीमद्रामायणे ब्रह्मणा

'पद्मे दिव्यार्कसंकाशे नाभ्यामुत्पाद्यमानपि ।
प्राजापत्त्यं त्वया कर्ममयि सर्वं निवेशितम् ॥
सोऽहं सन्यस्तभारोहि त्वामुपास्ये जगद्गुरुम् ।
रक्षां विधत्स्वभूतेषु मम तेजस्करो भवान् ॥
ततस्त्वमसि दुर्धषस्तस्माद् भावात् सनातनात् ।
रक्षां विधास्यन् भूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान् ॥'

वर्ण वाला वैदुर्य मणि के सन्निहित नील पीत रक्तादि पुष्प से तादात्म्य बोध होता है, उसी तरह अनन्त रूप भगवद् रूप में आविर्भूत होते हैं । इस कथन से सिद्ध होता है कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सर्वरूपी हैं, और उन-उन समयों पर श्रीविष्णु आदि के स्वरूप में अपने उपासक भक्तों के प्रयोजन की सम्पन्नता के लिये ब्रह्मा से लेकर साधारण भक्त तक की अभीष्ट सिद्धि के लिये आविर्भूत होते हैं यही विषय श्रीवाल्मीकीय श्रीमद्रामायण में कहा गया है ब्रह्माजी के द्वारा जैसे कि-दिव्य सूर्य के समान प्रकाशमय नाभिकमल में मुझ चतुर्मुख ब्रह्मा को भी उत्पन्न करके आपके द्वारा प्रजापति सम्बन्धित कर्म समस्त सृष्टि रचनात्मक क्रिया मुझ चतुरानन में स्थापित किया गया, वह लोक पितामह ब्रह्मा मैं भार मुक्त होकर सर्वलोक श्रेष्ठ सर्वोपासनीय आपकी उपासना करता हूँ, आप समस्त चराचर प्राणियों की रक्षा विधान करें एवं मेरा प्रभाव सम्बर्धक होवें । आप पूर्व सनातन भाव से अपेक्षाकृत दुर्धर्ष हैं । प्राणियों की रक्षा करते हुए विष्णुत्व को प्राप्त किये इत्यादि वचनानुसार रूपस्थ देवताओं का तेजस्करत्व श्रीरामचन्द्रजी में सिद्ध हुआ । जैसे कोई स्त्री पुरुष लक्षण जिसमें अभिव्यक्त नहीं है केवल पिण्ड रूप है वह वाद में बनाया जाता है । उनमें स्त्री पुरुष लक्षण प्रकाशित नहीं हैं जिनमें उन लक्षणों को परवर्ती काल में प्रकट किये जाते हैं । इन वचनों के द्वारा उन-उन अवतारों का और उन भगवदवतारों के पत्नियों का अङ्गों भेद विशेषों का, तथा उनके अस्त्र शस्त्र भेदों का जिनका अन्य शास्त्रों में विधान किया गया है सभी श्रीरामचन्द्रजी सर्वावतारी के द्वारा प्रकट किये जाते हैं । यहां पर पुरुष शब्द से प्रतिपाद्य पुरुष लक्षण युक्त विष्णु नृसिंह कृष्ण आदि अवतार अभिमत है । क्योंकि उपासकों के प्रयोजन सिद्धि के लिये अवतार सुने गये हैं ।

इतिरूपस्थानां देवतानां तेजस्करत्वम् । यथा कश्चित् पिण्डविशेषः पुंस्त्वेन कल्प्यते अन्यः स्त्रीत्वेन तेषु तत्तद्व्यञ्जकलक्षणानि प्रकटीक्रियन्ते तेन तत्तदवताराणां तत्तत् शक्तीनाञ्चाङ्गविशेषाः तत्तदस्त्रविशेषाः शास्त्रविहिताः सर्वे ते प्रकटीक्रियन्ते । अत्र पुम् शब्देनोपास्यविष्णुनृसिंहकृष्णादिपरः । उपासककार्यार्थमवतारश्रुतेः । स्वाविनाभूतश्रीसीतारूपस्थानां स्त्रीत्वादिकल्पना, तेन श्रीरामभार्यायाः विष्ण्वादिभार्याणां कारणत्वं सिद्ध्यति । 'श्रियः श्रीश्च भवेग्र्याः कीर्तेः कीर्तिः क्षितेः क्षमा' 'वसुधाया हि वसुधां श्रियाः श्रीं भर्तृवत्सलाम्' इति च महर्षिणा स्मरणात् । 'ॐ यो वै श्रीरामचन्द्र स भगवान्

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने अपने स्वरूप में अभिन्नरूप से स्थित श्रीसीता रूपमें अनभिव्यक्त स्त्रीत्व की श्रीलक्ष्मी आदि की कल्पना की । इस व्याख्यान के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी की भार्या जगन्माता श्रीसीताजी का विष्णु आदि भगवदवतारों के पत्नियों का मूलकारणत्व सिद्ध होता है । कहा भी है श्रीमद्रामायण में लक्ष्मी का लक्ष्मीत्व तथा कीर्ति का कीर्तित्व और पृथिवी का क्षमात्व धर्म श्रीसीताजी का है इस प्रकार महर्षि श्रीवाल्मीकिजी के द्वारा स्मरण किये जाने से श्रीसीताजी में कारणत्व है यह स्पष्ट होता है । 'ॐ जो ये श्रीरामचन्द्रजी हैं वे समस्त षड् विध ऐश्वर्य सम्पन्न हैं। जो मत्स्य कूर्म वराह आदि अवतारों के कारण हैं' इत्यादि श्रुति के आधार पर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का मत्स्य कूर्म वराहादि रूपधारण कर्तृत्व कहा गया है । इस सन्दर्भ में वर्णनीय श्रीराम नामक परब्रह्म के द्वारा अपने उपासकों के प्रयोजन सिद्धि के लिये अपने नित्य स्वरूप में विष्णु आदि के रूपमें कल्पना की गयी । और अपनी पत्नी श्रीसीताजी के रूपमें से ही श्रीविष्णु आदि भगवदवतारों के पत्नियों की कल्पना की गयी यह तात्पर्य है । अपनी अर्धांगिनी के अवयवों से उनके पत्नियों को अवयवों के रूपमें ही प्रकट किये गये 'जासु अंशते उपजहिं गुनखानी । अगनित उमा रमा ब्रह्माणी' मानसकार का वर्णन इसी प्रकार का अति प्रसिद्ध है । और उनका अस्त्र शस्त्र एवं उनके पत्नियों के अस्त्र शस्त्र के रूपमें प्रकट हुए । अब ब्रह्म की उन सभी का रूप अङ्ग तथा अस्त्रादि का कल्पना कर्ता होने से प्रधानता है । इसलिये 'ब्रह्मणः' में एक वचन का निर्देश किया गया है । आवरण देवताओं का इस अर्थ में ही संग्रह हो इसलिये मूल वचन में आदि शब्द का प्रयोग किया गया है । सामान्य रूपमें कहे गये अवयवों एवं अस्त्रों को विशेष रूपमें अर्थात् भेद करके प्रतिपादन करते हुए कहते

ये मत्स्यकूर्माद्या' इतिश्रुतेः, 'मत्स्यकूर्मवराहादिरूपधारिणमिति स्मृतेश्च, प्रकृतेन श्रीरामाख्येन ब्रह्मणा स्वोपासकानां कार्यार्थम् स्वनित्ये रूपे विष्ण्वादिरूपेण कल्पनाकृता स्वपत्नीरूपे च विष्ण्वादिपत्नीस्वरूपाणां कल्पनाकृता इतिभावः। स्वपत्न्यङ्गानि तत् पत्नीनामङ्गाकारेण अस्त्राणि च तदस्त्राकारेण कल्पिता इत्यर्थः। ब्रह्मणः तत् कल्पकत्वेन प्राधान्यात् एकवचननिर्देशः । आवरणदेवता संग्रहार्थमत्रादिपदं बोध्यम् । सामान्यरूपेणोक्तानि अङ्गान्यस्त्रणि च विशेषेण निरूपयन्नाह-द्विचत्वारीति । शास्त्रान्तरेषु ख्यातिप्रकाशयति आसां देवतानां द्विचत्वारिषडष्टदशद्वादशषोडशाष्टादशारभ्यः सहस्रान्ताः अमीहस्ताः शङ्खादि भिर्युताः प्रेक्षावद्भिः प्रोक्ताः । अत्र हस्तशब्दः शिर आद्यङ्गान्तराण्युपलक्षयति 'सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्त्रपादित्युक्तेः । सहस्त्रबाहूरुभुजानाद्भुतमिति

हैं। 'द्विचत्वारि' इत्यादि-अन्य शास्त्रों में प्रसिद्धि को प्रकाशित करते हुए कहते हैं कि-इन देवताओं के दो चार छ आठ दश वारह सोलह अठारह से आरम्भ कर हजार पर्यन्त संख्या में इनके हाथ कल्पित हुए, तथा उन हाथों में होनेवाले शङ्ख चक्र गदा आदि से युक्तत्व तत्त्व ज्ञानी विद्वानों के द्वारा कहे गये हैं। यहां पर हस्त शब्द शिर आदि अवयवों को उपलक्षित करते हैं, अर्थात् हस्त शब्द अन्य अङ्गों का उपलक्षण है। अनन्त शिर वाला अनन्त नेत्र वाला अनन्त चरणों वाला विराट् पुरुष, इस कथन से, तथा हजार बाहु जंघा भुजा आदि से आश्चर्य जनक इत्यादि वचनों का वेदों में निरूपण होने से अन्य अङ्ग प्रतीत होते हैं। इस से दो से आरम्भ कर हजार पर्यन्त अवयवों की सिद्धि होती है। 'शङ्खादिभिः' यह कहने से गदा खड्ग धनुष वाण आदि का उपलक्षण के स्वरूप में बोध होता है। यहां पर तत्तद् विग्रहों के कथन के पश्चात् तत्तद् अस्त्र शस्त्रादि का कथन अन्यथा सिद्धि द्वारा युक्ति संगत नहीं होने पर वे भगवद् विग्रह भी विद्वानों के द्वारा निरूपित किये गये इस अभिप्राय को प्रकाशित करता है। और यहां पर जो पुरुष स्त्री आदि भेदों से अङ्ग प्रत्यङ्ग आदि उन देवताओं के प्रतिपादित किये गये हैं वे अङ्ग प्रत्यङ्ग और शस्त्र अन्य शास्त्रों में विद्वान् ज्ञानियों के द्वारा प्रकाशित किये गये हैं। और उन भगवद् विग्रहों की उपासना करके उनका साक्षात्कार पर्यन्त उनके उपासकों के द्वारा अन्य शास्त्रों को जानना चाहिये। जैसे कि ऐतरेय उपनिषद् में स्वाध्याय और प्रवचन का अत्यन्त आदर के साथ कथन से ध्यान धारण आदि से उस देवता का साक्षात्कार रूप अर्थ प्रकाशित होता है।

सहस्त्रशीर्षाक्षपादबाहूरूप्रभृतीनां श्रुतिषु निरूपणात् द्वयादिसहस्त्रान्तानामङ्गानां सिद्धिः, शङ्खादिभिरितिगदाखड्गधनुःशरादीनामुपलक्षणत्वेन बोधः । अत्र तत्तद् विग्रहकथनमनन्तराङ्गास्त्रादीनां कथनमन्यथासिद्ध्याऽनुपपद्यमानं तद्विग्रहा अपि विपश्चिद्भिरुक्ता इतिगमयति । येऽत्र पुंस्त्रीदेवानाङ्गादयस्तास्तेसां देवतानामुक्ताः ते विशेषेण शास्त्रान्तरेषु विद्वद्भिः प्रकाशिताः । तानि चोपास्य साक्षाद्दर्शनपर्यन्तं तदुपासकैः शास्त्रान्तराणि ज्ञेयानि । यथा ऐतरेयेस्वाध्यायप्रवचनयोरत्यादरेण ध्यानादिस्ततस्साक्षात्कारो बोध्यते ।

शास्त्रान्तरोक्तस्यानुवादित्वादस्यां श्रुतावप्रामाण्यन्तु नाशङ्कनीयम्, वक्तृ पृच्छकयोः सम्वादेन श्रुतीनां प्रवृत्तिदर्शनात् ।एकोपनिषदिश्रुतस्योपनिषदन्तरे श्रवणात् याज्ञवल्क्यादिवचनत्वेन च पौरुषेयत्वापत्तिः । परस्परानुवादकत्वेनाप्य प्राण्यापत्तिः । प्रमाणान्तराबोध्यस्य सूक्ष्मतत्वस्य बोधनाय संवादावतारः सर्वासांश्रुतीनां समानरूपेण दुर्ज्ञेयस्य ज्ञानाय तथा प्रवृत्तिरवलोकनेननाप्रामाण्य

अन्य शास्त्रों में कहे गये विषयों का यहां पर विवेचन करने से उन कथनों का अनुवाद स्वरूप होने से इस श्रुति वचन में प्रामाणिकता नहीं होगी ऐसी शङ्का तो नहीं करनी चाहिये । उपदेशक एवं प्रश्नकर्ता का सम्वाद रूप के द्वारा श्रुतियों की प्रतिपादन शैली है ऐसी प्रवृत्ति देखे जाने से, एक उपनिषद् में सुना गया विषय का अन्य उपनिषदों में सुने जाने से तथा याज्ञवल्क्य जाबाल आदि ऋषियों का वचन होने से उपनिषदों में पौरुषेयत्व (पुरुष प्रयत्न कृतत्व) का दोष होता है, और एक उपनिषद् के वचन का अन्य उपनिषद् में अनुवादकत्व रूप दोष का भी प्रसङ्ग होता है। इसलिए अप्रामाणिकत्व की आपत्ति होती है । जो प्रत्यक्ष अनुमानादि प्रमाणों से नहीं जानने योग्य विषय हैं, जिसे केवल शुद्ध अन्तःकरण होने पर केवल समाधि या भगवत् कृपा से ही जानने के योग्य विषय हैं ऐसे सूक्ष्म तत्त्वों का ज्ञान कराने के लिये, इस तरह की वेद की प्रवृत्ति देखे जाने से अप्रामाणिकता की शङ्का नहीं करनी चाहिये । जैसे षड्ज आदि स्वरों का शिष्यों के अभ्यास दृढता हेतु पुनः पुनः कथन होता है । उसी तरह अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्व का ज्ञान कराने के लिये एक ही विषय को पुनः पुनः कथन किया जाता है, इसलिये पुनरुक्तत्व आदि दोष सम्भव नहीं है । अपितु पुनरूक्ति आदि गुणोत्कर्ष जनक ही है । अथवा 'कथिता' इस पद में वैदिक होने से 'सुपांसुलुक्' सूत्र के द्वारा अथवा 'छन्दसि दृष्टानुविधिः' इस नियम से भविष्य अर्थ में भूतार्थक

माशङ्कनीयम् । षड्जादिस्वर इव दार्ढ्याय पुनरुक्त्यादयो गुणावहा एव । अथवा 'कथिता' इत्यत्र छान्दसत्वाद् भविष्यदर्थे भूतार्थस्य प्रयोगः । तेन तदुपबृंहकैः कथयिष्यते इतिभावः । वेदे निगूढार्थाः संक्षेपेणोच्यन्ते, तस्य विस्तरेण ज्ञानं विधायोपासकैः उपास्य देवतास्वरूपाङ्गपार्षदादीनां पुराणादिभिर्याथातथ्येन विज्ञाय साक्षात्काररपर्यन्तमुपासना विधेया इति उपबृंहणरूपेण पुराणेषु कथयिष्यन्ते इतिभावः, तदुक्त-

वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थञ्च पार्वति ?।
वेदे यन्निहितं देवि ? पुराणे तत् प्रतिष्ठितम् ॥
पुराणमन्यथा कृत्वा तिर्यग् योनिमवाप्नुयात् ।
सुशान्तेऽपि सुदान्तेऽपि न गतिं प्राप्नुयात् क्वचित् ॥

अत्रान्यथाशब्दो मिथ्यार्थको न तु अर्थान्तरार्थकः शिष्टैर्विपरीतार्थकत्वेना भासमानानां वचनानामर्थान्तरपरत्वेन समन्वयात् । अथ तृतीयकल्पनामाह-तथा शब्द का प्रयोग किया गया है । इस युक्ति के आधार पर वेदार्थ के उपबृंहण करने इतिहास पुराणकारों के द्वारा कहे जायेंगे यह अभिप्राय है । वेद में अत्यन्त गूढ अर्थ अत्यधिक संक्षेप रूपसे कहे जाते हैं । उन अत्यन्त निगूढ (रहस्य) अर्थों को विस्तार पूर्वक उदाहरण प्रत्युदाहरणादि व्याख्यान के साथ ज्ञान करके उपास्य देवता के स्वरूप अङ्ग अस्त्र पार्षद आदि का इतिहास पुराणादि के माध्यम से वास्तविक रूपमें जानकर, तत्त्व साक्षात्कार पर्यन्त उपासना करनी चाहिये । इसलिये 'कथिता' का अर्थ हुआ विस्तार पूर्वक अर्थ सम्बोधन कारी इतिहास पुराण आदि में कहे जायेंगे यह तात्पर्य है ।

यही विषय कहा गया है-हे पार्वति ? मैं वेदों के अर्थ से अति श्रेष्ठ पुराणों का अर्थ मानता हूँ । हे देवि ? जो अर्थ वेद में स्थापित किया गया है, वही अर्थ पुराण में प्रतिष्ठित किया गया है, जो पुराण में प्रतिष्ठापित अर्थ को विरुद्ध स्वरूप में विवेचन करता है वह निन्दनीय पशुपक्षी योनि को प्राप्त करता है । नियमानुसार पूर्ण शान्त चित्त विवेक पूर्वक सभी इन्द्रियों को स्वाधीन रखने वाला होने पर विरुद्धार्थ विवेचक कभी भी सद् गति को नहीं प्राप्त करता है । यहां 'अन्यथा' कृत्वा में अन्यथा शब्द मिथ्या अर्थ बोधक है अन्य अर्थ बोधक नहीं है । शिष्ट प्रामाणिक तत्त्व वेत्ताओं के द्वारा विपरीत अर्थ बोधक के स्वरूप में व्यवहार किये जाने के कारण अन्यार्थ बोधकत्व रूप दोष नहीं होता है, अतः अन्यथा शब्द से मिथ्या अर्थ बोधकत्व माना

तासामिति तेन प्रकारेण तासां देवतानां वर्णवाहनकल्पनाकृता । एवम् शुक्लादि वर्णकल्पना द्वितीया, गरुडादिवाहनकल्पना तृतीया इतिभावः ॥१४॥

जाता है। इसके पश्चात् तृतीय कल्पना कहते हैं, तथा तासां इत्यादि कथन के द्वारा उस प्रकार से उन देवताओं का वर्ण वाहन आदि की कल्पना की गयी है। इस प्रकार शुक्ल कृष्ण आदि युगानुसार वर्णों की कल्पना की गयी है तथा भगवद् विग्रह भेद से गरुड आदि वाहनों की कल्पना की गयी है। यहां पर वर्ण कल्पना द्वितीय कल्पना है, तथा वाहन कल्पना तृतीय कल्पना है ॥१४॥

अथ चतुर्थपञ्चमकल्पनां प्रकटयन्नाह-

शक्तिसेनाकल्पना च ब्रह्मण्येवहि पञ्चधा ।
कल्पितस्य शरीरस्य तस्य सेनादिकल्पना ॥९॥

इसके पश्चात् ब्रह्म के चतुर्थ पञ्चम रूप कल्पना को प्रकट करते हुए ऋचा कहती है । ब्रह्म में ही पांच प्रकार से पुनः शक्ति एवं सेना की कल्पना की गयी है । तत्त्व ज्ञानी विद्वानों के द्वारा ब्रह्म के कल्पित शरीर की और उसके शक्तिसेना आदि की कल्पना है ।

श्रीराम नामक ब्रह्म में ही पांच प्रकारों से देवताओं के पुरुष स्त्री आदि अङ्गों की दो भुजा से लेकर सहस्र पर्यन्त भुजाएं शङ्ख चक्र गदा आदि सहित रूप कल्पना प्रथम हुई । वर्ण आदि की कल्पना दूसरी, गरुड आदि वाहन कल्पना तीसरी, शक्ति कल्पना चौथी, और सेना आदि कल्पना पांचवी इस तरह ब्रह्म में उपासकों के हित के लिये पांच प्रकार से कल्पना हुई । इसप्रकार कल्पित ब्रह्म के देह की उन श्रीरामचन्द्रजी नामक ब्रह्म की सेना आदि कल्पना की गयी यह अभिप्राय है ॥९॥

श्रीरामनामके ब्रह्मणि एव पञ्चभिः प्रकारैः देवतानां पुंस्त्री अङ्गादि द्विभुजादिसहस्त्रान्ता शङ्ख्यादिभिर्युता प्रथमा कल्पना, वर्णादिकल्पना द्वितीया, बाहनादिकल्पना तृतीया, शक्तिकल्पना चतुर्थी सेनादिकल्पना च पञ्चमीति

शास्त्र तत्त्वों के जानकार विद्वानों के द्वारा अथवा ब्रह्म के द्वारा उन देवताओं की शक्ति सेना आदि की कल्पना की गयी है। यहां पर शक्ति शब्द से विमला आदि शक्ति की कल्पना चौथी है। विष्वक्सेन प्रधान है जिस में ऐसी सेना कल्पना पांचमी है। पांचों कल्पना का उपसंहार करते हैं। जिस तरह कोई राजा अपनी पत्नी सेना

पञ्चधाकृता इतिभावः । इत्थं कल्पितस्य ब्रह्मणोदेहस्य तस्य श्रीरामाख्यस्य शक्तिसेनादिकल्पना विहितेतिभावः ।

शास्त्रज्ञैर्ब्रह्मणा वा तासां देवतानां शक्तिसेनादिकल्पनाकृता । अत्र विमलादिशक्तिकल्पना चतुर्थी, विष्वक्सेनप्रधानासेनाकल्पना पञ्चमीकृता । तदुपसंहरति यथा कश्चित् स्त्रीसेनादिसहित अपि राजा गच्छति, तदा तत्र राजा गच्छति इत्येव व्यवहारः । तथा विष्णवादिदेवता, तेषां स्त्रीवाहनशक्तिसेनासहि तेऽपि श्रीरामाख्ये ब्रह्मणि तेषु सत्स्वपि तस्य मुख्यत्वादेकवचननिर्देशः । अत्र रज्जौ सर्पबुद्धिरिव निर्गुणा निराकारा कल्पना नकृता । अवतारिणः अवतारा णाञ्च साकारत्वरूपस्थानामित्युक्तेः । ब्रह्मण्येव हि पञ्चधेत्युपसंहाराच्च, अन्यथा

आदि के सहित जाता है तो भी वहां पर लोक यही व्यवहार करता है कि-यह राजा जा रहा है । उसी तरह श्रीविष्णु आदि देवता, उन देवताओं की पत्नियां वाहन, शक्ति, सेना आदि के सहित भी श्रीराम नामक ब्रह्म में उन सभी भेद प्रभेदों के होने पर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की प्रधानता के कारण एक वचन का निर्देश किया गया है। यहां पर जैसे अन्धकारादि दोषवश रज्जु में सर्प की भावना होती है, वस्तुतः सर्पत्व नहीं होता है, उस तरह निर्गुण और निराकार कल्पना नहीं की गयी है । अपितु सगुण साकार कल्पना है । क्योंकि ऋचा में 'रूपस्थानाम्' यह कहा गया है । और ब्रह्म में ही पांच प्रकारों से कल्पना हुई है इस उपसंहार के द्वारा भी सगुण साकारत्व का बोध होता है । यदि सगुण साकार नहीं होता तो कल्पित शरीर की शक्ति सेना आदि की कल्पना इस पूर्ववर्ती वाक्य का कथन की निष्फलता होती है । श्रीकृष्ण नारायण आदि अवतारों से विलक्षणता रूप अर्थ का ज्ञान कराने के लिये दशरथ तनय श्रीरामचन्द्रजी अर्थ को प्रकाशित करने के लिये अलग पाठ किया गया है यह तात्पर्य विद्वानों को समझना चाहिये तथा उस ओर ध्यान देना चाहिये ।

इस तरह की स्थिति होने पर भी जो लोग ब्रह्म में सवकुछ कल्पित अर्थात् वास्तविक नहीं है ऐसा मानते हैं । विकार का नाम रूप आदि कथन केवल शाब्दिक व्यवहार मात्र है, तथ्य नहीं, मूलकारण मृत्तिका ही सत्य है विकार सत्य नहीं है । इस श्रुति वचन के अनुसार, ब्रह्म में विकारत्व होने का दोष नहीं हो इस डर से ऐसा प्रतिपादन करते हैं कि माया ही ब्रह्म को अपना आश्रय बनाकर संसार स्वरूप में परिवर्तित हो जाती है । ब्रह्म में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता है । इस विवर्तवाद

कल्पितस्य शरीरस्य शक्तिसेनादिकल्पनेति पूर्ववाक्यस्य वैयर्थ्यं स्यात् । कृष्णाद्य वतारविलक्षणतार्थबोधो दाशरथेर्द्योतनाय पृथक्तया पाठ इतिसुधीभिरवधेयम् ।

एवम् सत्यपि ये ब्रह्मणि सर्वं कल्पितम् मन्यन्ते, 'वाचारम्भणं विकारोनामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यमिति' ब्रह्मणि विकारत्वापत्तिभियामायैव ब्रह्म आश्रित्य जगदाकारेण विपरिणमते, अत्र वादे अपि द्वैतापत्तिभिया माया-माश्रित्य, स्वयमेव ब्रह्माज्ञानपरम्परया संसरति, अज्ञानोपादानकान्तःकरणस्य संसारहेतुत्वात् । आत्मज्ञानेन तु अज्ञानकार्योपहितस्वाभासध्वंसे विमुच्यते । अत्रापि सिद्धान्ते निर्गुणे निराकारे ब्रह्मणि अविद्यासम्बन्धहेतुकसंसरणस्य, रज्जौ के मत में भी अद्वैतत्व की हानि अथवा द्वैतत्व की आपत्ति नहीं हो इस भय से माया को आश्रय बनाकर स्वयमेव ब्रह्म से सम्बद्ध अज्ञान परम्परा जन्म मरण परम्परा को प्राप्त करता रहता है। अज्ञान (अविद्या) है उपादानकारण जिसका ऐसा अन्तःकरण संसार का कारण माने जाने से द्वैतापत्ति नहीं होती है। आत्मस्वरूप का ज्ञान हो जाने से तो ज्ञान के द्वारा अज्ञान जनित कार्य से आच्छादित स्वस्वरूपाभास का संहार हो जाने के वाद अहं ब्रह्मास्मि के अनुभूति से मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इस सिद्धान्त में भी गुणों से रहित एवं आकृति से रहित ब्रह्म स्वरूप में अविद्या के सम्बन्ध के कारण होने वाला जन्म मरण स्वरूप संसार का जैसे रज्जु में सर्प की भावना होती है उस तरह समस्त चराचर प्रपञ्च का आश्रय स्वरूप निर्गुण निराकार ब्रह्म में संसार का आभास मात्र होता है। लेकिन ब्रह्म से अतिरिक्त कोई तत्त्व विशेष तो होता नहीं है। जैसे रज्जु से अतिरिक्त सर्व तत्त्व नहीं होता है अज्ञान के कारण केवल सर्प का आभास होता है । उसीप्रकार सभी अधिष्ठान स्वरूप ब्रह्म में जगत् का आभास मात्र होता है। न कि ब्रह्म से विशेष रूपसे भिन्न किसी तत्त्व विशेष की कोई है। जिसके साथ उस ब्रह्म में अज्ञान का किसी तरह का सम्बन्ध, और सम्बन्ध के कारण उत्पन्न होनेवाला जन्म मरण बन्धन रूप संसार का दोष होगा। इस कारण से विना तत्त्व परिवर्तन के अन्यथा बुद्धिरूप विवर्तवाद को स्वीकार करते हैं। इन विवर्तवादियों के सिद्धान्त में वेद स्मृति शास्त्र इतिहास पुराण आदि ग्रन्थ का कोई भी प्रयोजन नहीं रहता है। वर्ण आश्रम के अनुरूप सदाचार और गुरु शिष्य परम्परा आदि सभी व्यवस्थायें निरर्थक हैं। क्योंकि भूत भविष्य तथा वर्तमान तीनों ही कालों में एकमात्र ब्रह्म के अतिरिक्त कोई भी तत्त्व विशेष नहीं है इस तरह का सिद्धान्त उनके द्वारा स्थापित किया गया है।

सर्प इव सर्वाधिष्ठाने ब्रह्मणि जगद्भावमात्रं नतु ब्रह्मभिन्नं किञ्चिदन्यत् । सर्वाधिष्ठाने ब्रह्मणि जगद्भानमात्रं नतु ब्रह्मव्यतिरिक्तं किञ्चिदस्ति, येन तत्राज्ञानसम्बन्धः तत् कृतसंसारादिदोषोभवेत्, अतो विवर्तवादमङ्गीकरोति । एतेषां सिद्धान्ते श्रुतिस्मृतीतिहासप्रबन्धो निष्प्रयोजनः, वर्णाश्रमाचारगुरुशिष्य परम्परादयश्च निरर्थकाः, कालत्रयेऽपि ब्रह्मातिरिक्तं किंचननास्तीति तैः सिद्धान्तितत्वात् ।

स्वभावतो निर्गुणब्रह्मणि अविद्यासम्बन्धोपादानकान्तःकरणोपहित चिदाभासमूलकसंसरणादेरसम्भवत्वम् । दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोर्वैरूप्यात् रज्जु-सर्पसिद्धान्तोऽपि व्यर्थः, ब्रह्मव्यतिरिक्तस्याभावस्वीकारात् । आकाशे पुष्प इव,

स्वभाव से ही गुण रहित ब्रह्म में अविद्या (माया) का सम्बन्ध रूप उपादान कारण से युक्त अन्तःकरण से आच्छादित चिदाभास मूलक जन्म मृत्यु परम्परा स्वरूप संसरण आदि का होना सम्भव नहीं है। क्योंकि उदाहरण एवं जिसकी सिद्धि के लिये उदाहरण दिया जाता है वह दृष्टान्त तथा दार्ष्टान्तिक इन दोनों का परस्पर सारूप्य होना आवश्यक है इनके आपस में विरूपता होने से साध्य की सिद्धि नहीं होती है। वह निरूपता यहां पर है। रस्सी में साँप का भ्रान्ति मूलक दृष्टान्त भी व्यर्थ निष्प्रयोजन है ब्रह्म से विशेष रूपसे भिन्न का अभाव इस सिद्धान्त में स्वीकार किये जाने से, जैसे आकाश में आधार को ही असिद्ध होने पर पुष्प की कल्पना की जा रही हो इसप्रकार, अथवा प्रकाश में अन्धकार की कल्पना की जाय, वह असम्भव है, उस तरह निर्गुण निराकार ब्रह्म में अज्ञान का सम्बन्ध युक्ति संगत नहीं है। इसलिये किस प्रकार जीवात्मा की कल्पना सम्भव हो सकेगी। और भी अरुचि दिखाते हैं कि ब्रह्म एवं अज्ञान का-चित् एवं जड स्वरूप होने से दोनों परस्पर सर्वथा विपरीत धर्म वाले हैं। अतः इनका विरुद्ध स्वभाव होने से किसी भी प्रकार से परस्पर सम्बन्ध होना सम्भव नहीं है। इसप्रकार सत्शास्त्र आधार रहित केवल अपनी परम्परा का आग्रह से ग्रस्त होने वाले विद्वानों के हठी स्वभाव युक्त सिद्धान्त की उपेक्षा करके वेद धर्मशास्त्र पुराण इतिहास तथा पूर्वाचार्यों के दिव्य प्रबन्ध ग्रन्थों की सार्थकता प्रसिद्ध करने के लिये ब्रह्म तत्त्व से अतिरिक्त जिनका जन्म जीवन तथा मृत्यु स्वरूप संसरण स्वभाव ऐसे जीवात्माओं की कल्पना करते हैं। प्रकृत विषयक सर्वशास्त्रों से परिपुष्ट विवेचन ब्रह्मसूत्रानन्दभाष्य प्रकाश गीतानन्दभाष्य तत्त्वदीप श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर

प्रकाशेऽन्धकार इव निर्गुणे निराकारे ब्रह्मणि अज्ञानसम्बन्ध एव नोपपद्यते । तत्कथं जीवात्मकल्पना, किंच ब्रह्माज्ञानयोः चिज्जडत्वेनसर्वथा विपरीतस्व भावयोः कथमपि सम्बन्धः सम्भवति । इत्थं स्वपरम्परागृहग्रस्तानां सिद्धान्त मनादृत्य श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासप्रबन्धानां सार्थक्याय ब्रह्मातिरिक्तान् संसरण शीलान् जीवान् कल्पयति । तेषां जीवानां निःश्रेयसे श्रुत्याद्याः ब्रह्मणोरूपं प्राप्तुः जीवात्मनोरूपं तत्प्राप्त्युपायं, फलं च प्राप्तेः, प्राप्तिविरोधिनः जीवेश्वरसम्बन्ध श्चेति, तदुक्तम्-

प्राप्यस्य ब्रह्मणोरूपं प्राप्तुश्च प्रत्यागात्मनः ।
प्राप्त्युपायं फलं प्राप्तेस्तथा प्राप्तिविरोधिनः ॥

प्रभा-किरण तत्त्वत्रयसिद्धि तत्त्वदीप चिदात्ममीमांसा प्रभृति अनेक दिव्य प्रबन्धों में कर चुका हूँ अतः विशेषार्थी वहीं देखें । उन संसरण स्वभाव युक्त जीवात्माओं का निःश्रेयस लाभ मोक्ष के लिये वेदशास्त्र पुराणेतिहासादि प्रबन्ध ग्रन्थ यह प्रतिपादित करते हैं कि परब्रह्म का स्वरूप क्या है जो समस्त जीवात्माओं का परम कल्याणकारी एवं शास्त्र विहित उपायों द्वारा प्राप्त करने योग्य है । ब्रह्म को साक्षात्कार करने का अभिलाषी प्राप्त कर्ता जीवात्मा का स्वरूप क्या है । उस परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त करने का साधन क्या है । जिस साधनों से ब्रह्म साक्षात्कार हो सके । ब्रह्म साक्षात्कार करने का फल क्या है तथा संसार के कौन कौन पदार्थ ब्रह्म साक्षात्कार होने में प्रतिबन्धक हैं । उन्हें प्राप्ति विरोधी कहा जाता है । तथा जीवात्मा एवं परमात्मा का परस्पर सम्बन्ध क्या है, इन तत्त्वों का निरूपण इन ग्रन्थों में किया गया है-प्राप्त करने योग्य ब्रह्म का स्वरूप, प्राप्तकर्ता जीवात्मा का स्वरूप प्राप्ति का उपाय, प्राप्ति का फल, तथा प्राप्ति का विरोधी इसप्रकार जीवात्मा एवं ईश्वर का परस्पर सम्बन्ध स्वरूप को सम्यक् प्रकार से तात्विक ज्ञान करके परमेश्वर की उपासना करनी चाहिये । परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा अपने उपासकों के अभिमत सिद्धि रूप कार्य के लिये अपना स्वरूप अनेकानेक प्रकार से प्रकटित किया गया है, उपासक के द्वारा अपनी इच्छा अथवा परिस्थिति के अनुसार जिस किसी भगवद् विग्रह रूप ब्रह्म स्वरूप की उपासना पूजा अर्चा आदि करनी चाहिये अपने भक्तों के अभिमत सिद्धि के लिये ही रूप कल्पना किये जाने के कारण ही श्रीरामतापनीय उपनिषद् वचन में वार-वार रूप कल्पना पद का प्रयोग किया जाता है । इस विषय में उदाहरण है वैदुर्य मणि का

इत्थं जीवेश्वरसम्बन्धं सम्यग् विज्ञाय उपासितव्यम् । ब्रह्मणा श्रीरामेण निजोपासकानां कार्यार्थं स्वविग्रहोऽनेकधा आविष्कृतः । यस्मिन् कस्मिन् वा ब्रह्मणोविग्रहे उपासना विधेया । अतएव पौनः पुन्येन कल्पनेत्युच्यते । दृष्टान्तश्चात्र वैदुर्यमणिपुष्पादिसम्बन्धेन बहुरूपबोधः । वस्तुतः श्रीरामाख्यो ब्रह्मस्वय मिन्द्रनीलमणिप्रभः द्विभुजाद्याकृतिः नित्यधनुर्वाणाद्यस्त्रविशिष्ट एव श्रीविष्ण्वा दीन् शक्तिसेनादिसहितान् भासयति । तदुक्तम् पाञ्चरात्रे-

मणिर्यथाऽविभागेन नीलपीतादिभिर्युतः ।
रूपभेदमवाप्नोति ध्यानभेदात्तथाच्युतः ॥

तत्तद्रूपाद्याविष्करणकालेऽपि स्वनित्याकृत्यादितो न च्यवते यः सोऽच्युतः । अत्राच्युतपदोक्तेः, सनत्कुमारेणापि तथैवोक्तम् । 'मत्स्यकूर्मवराहादि रूपधारिणमव्ययमिति' अत्राव्ययपदोपादानेन स्वनित्यविग्रहेरूपान्तराभासमानत्वं बोधयति । ब्रह्मणोद्वितीयशरीरधारित्वे विकारित्वदोषः । रूपान्तरस्याधि कत्वाज्जन्यत्वप्राप्तिः, तेन चानित्यत्वमिति बहुदोषप्रसङ्गः । परमात्मनः सर्वदेहानां विभिन्न रंगों के पुष्प आदि का सम्बन्ध होने से अनन्त स्वरूपों का बोध होता है। वास्तविक में तो श्रीरामचन्द्र नामक ब्रह्म स्वयं इन्द्र नील मणि की कान्ति के समान कान्ति सम्पन्न, द्विभुज आदि आकृतिमान् सदैव धनुष वाण आदि अस्त्र भेदों से सम्पन्न ही हैं। श्रीविष्णु नृसिंह वामन वराहादि विग्रहों को शक्ति सेना आदि से सम्पन्न कर आभासित कराते हैं। यही विषय पाञ्चरात्र ग्रन्थ में कहा गया है। जिस तरह मणि नील पीत आदि वस्तुओं से सम्पर्क पाकर अविभाजित रूपसे नील पीतादि स्वरूप को अनुभव कराता है, उसीतरह भगवान् अच्युत अपने उपासकों के चिन्तन भेद से अनन्त रूपों में अनुभव गोचर होते हुए अनन्त रूपको प्राप्त करते हैं। तत्तत् प्रकार के स्वरूपों के प्रकटीकरण के समय में भी अपनी नित्य आकृति से जो कभी भी परिवर्तित नहीं होते हैं, ऐसे जो परम तत्त्व हैं उन्हें अच्युत कहा जाता है। इस उपर्युक्त वाक्य में भगवान् को अच्युत पद से कहा गया है अतः श्रीराम नामक ब्रह्म का सर्वकाल एवं सर्वावस्था में अपरिवर्तनीय स्वरूप सिद्ध होता है। महर्षि सनत्कुमारजी के द्वारा भी ऐसा ही कहा गया है-मत्स्य, कूर्म, वराह आदि अनन्त रूप को धारण करनेवाले अविनाशी को, यहां पर अव्यय पद का प्रयोग किये जाने के कारण सिद्ध होता है कि अपने नित्य स्वरूप में अन्य रूपों का आभास होना प्रकाशित होता है।

नित्यत्वेमुक्तजीवेषु नोपास्याकृतेर्वैषम्यम् । विनिगमनाविरहेणान्यतमस्य न सर्वकारणत्वम् । 'सदेवसोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयमितिश्रुतेर्व्याघातः । चिन्मयस्याद्वितीयस्येत्युक्तेश्च श्रीरामाख्ये ब्रह्मण्येव मूलकारत्वं घटते ॥१५॥

अतोऽन्येषु पक्षेषु बहुदोषदर्शनेन एकस्यैव नित्याकृतेर्ब्रह्मणो बहुरूपेण दृश्यमानत्वमङ्गीकार्यम् । इममेवार्थं स्फुटयन्ति श्रीरामतापनीयमन्त्राः-ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् अद्वैतपरमानन्दात्मेत्यादयः । श्रीमद्रामायणे महर्षिश्री

ब्रह्म का यदि द्वितीय शरीरधारित्व हो तो ब्रह्म में विकारित्व होने का दोष उपस्थित होगा । अन्य रूप का पूर्व रूप से अधिक होने के कारण ब्रह्म में जन्यत्व दोष की प्राप्ति होगी और इससे ब्रह्म में अनित्यत्व दोष का प्रसङ्ग होगा । परमात्मा के सभी शरीरों का नित्य होने पर मुक्त जीवात्माओं में उपास्य देवता के आकृति की विषमता नहीं होगी । यदि सभी शरीरों की नित्यता हो तो एकतर पक्षपाती सिद्धान्त का अभाव होने से किसी एक का सर्वकारणत्व नहीं हो सकता है । हे सौम्य सृष्टि के आरम्भ काल में सत् स्वरूप एक अद्वितीय ही था, इस श्रुति वचन का सर्व नित्यता पक्ष में व्याघात होगा तथा 'चिन्मय, अद्वितीय' इस श्रुति का भी व्याघात होगा । इसलिये श्रीराम नामक ब्रह्म में ही मूलकारणत्व संघटित होता है ॥१५॥

ब्रह्म का विवर्तरूप जगत् को स्वीकार करने वाले, या मायिक जगत् मानने वाले आदि पक्षों में अनन्त प्रकार के दोषों को देखे जाने से इसलिये अन्य पक्षों में दोष देखकर एक की ही जिसकी परम नित्य आकृति है ऐसे परब्रह्म का अनन्त स्वरूप से दृश्यमानता स्वीकार करनी चाहिये । जिसे पूर्व में मणिरूप न्याय से स्पष्ट किया गया है । इसी विषय वस्तु को स्पष्ट रूपसे प्रकाशित करते हैं श्रीरामतापनीय उपनिषद् के मन्त्र समुदाय → ॐ कार से निर्णीत रूपसे जो श्रीरामचन्द्रजी हैं वे समस्त ऐश्वर्यों से पूर्ण होने से भगवान् हैं अद्वैत परमानन्द आत्मा हैं' इत्यादि मन्त्र तथा श्रीमद्रामायण में महर्षि श्रीवाल्मीकिजी भी इसी आशय को कहे हैं क्योंकि पूर्व काल में सभी लोकों को समेट कर...अन्ततः विष्णुत्व स्वरूप को उपलब्ध किये, इत्यादि वचनों के द्वारा कहते हैं । अलौकिक अनन्त गुणगण मण्डित असाधारण लक्षणों से सम्पन्न श्रीरामचन्द्रजी को कौशल्यादेवी प्रादुर्भूत की । इस वाक्य में महामुनि श्रीवाल्मीकिजी दिव्य शब्द का प्रयोग किये हैं। इसलिये श्रीरामचन्द्रजी की आकृति से एवं अन्य असाधारण धर्मों से अन्य देवताओं के समानता का अभाव स्वरूप अर्थ को दिव्य

वाल्मीकिरपि-संक्षिप्य हि पुरालोकान्...विष्णुत्वमुपजग्मिवानित्यादिना आह । 'कौशल्याजनयद् रामं दिव्यलक्षणसंयुतमिति दिव्यशब्दोक्तेः सर्वेशश्रीरामस्याकृत्या लक्षणान्तरैश्च देवतान्तरसादृश्याभावं प्रकाशयति । 'राम' मजनयदिति नामकरणात् प्राक् नामनिर्देशेनानादित्वं सूचयति । पुराणेऽपि-

'विश्वरूपस्य ते राम विश्वे शब्दा हि वाचकाः ।
तथाऽपि रामनामेदं विश्वेषां वीजमक्षयम् ॥
विष्णोर्नाम्नां सहस्राणां तुल्य एष महामनुः ।
विष्णोरेकैकनामैव सर्ववेदाधिकं मतम् ।
तादृङ्नामसहस्रैस्तु रामनामसमं मतम् ॥'

शब्द प्रकाशित करता है। इसी को अन्यत्र निरस्त साम्यातिशय कहा गया है। और उस वाक्य में कहा है श्रीरामजी को पैदा की यहां जन्म होने से पहले ही 'रामचन्द्र' इसनाम का प्रकाशन के कारण इस नाम निर्देश से 'राम' नाम का अनादित्व रूप अर्थ को सूचित करते हैं। पुराणों में भी कहा गया है कि-हे राम ? समस्त विश्व ही स्वरूप है जिसका ऐसे आपका संसार के सभी शब्द वाचक हैं, सभी शब्दों का अर्थ 'राम' होते हुए भी यह 'राम' नाम संसार के सभी पदार्थों का अविनाशी मूलकारण है। विष्णु के हजारों नामों की तुलना में यह एक ही 'राम' नाम स्वरूप महामन्त्र 'राम' नाम वरावर है। भगवान् विष्णु के एक एक नाम समस्त वेदों के समूह से अधिक महत्वपूर्ण है। ऐसा ऋषि मुनियों के द्वारा माना गया है। समस्त वेदों से अधिक माहात्म्य धारण करनेवाले विष्णु नामों के हजार नामों के समान यह एक ही 'राम' नाम है। इत्यादि वचनों के द्वारा श्रुति स्मृति पुराणेतिहासों से निरूपण किया गया है अतः श्रीराम नाम सर्वकारणत्व रूप अर्थ को प्रकाशित करता है। और भी 'रमन्ते योगिनः' इत्यादि मन्त्रों के द्वारा श्रीराम नाम का अनादित्व एवं सभी देवताओं से उत्कृष्टता एवं अधिकता कहकर 'रघुकुलेऽखिलं राति' इत्यादि के द्वारा उस 'राम' नाम का गौणत्व बोध कराया गया है। और महर्षि श्रीवाल्मीकिजी भी भगवान् श्रीरामजी का नामकरण से पहले 'राम' नाम कहकर पुनः महर्षि वशिष्ठ के द्वारा नामकरण के समय में भी वही 'राम' नाम का कथन किये, इस कथन के द्वारा वाद में नामकरण प्रक्रिया द्वारा किया गया 'राम' नाम का गौणत्व बोध कराये। नाम और नाम वाला

इत्यादिभिः श्रीरामनाम्नः सर्वकारणत्वं गमयति । किञ्च 'रमन्ते योगिनः' इत्यादिना श्रीरामनाम्नोऽनादित्वमुत्कृष्टत्वञ्चाभिधाय पुनः 'रघुकुले राती' त्यादिना तस्य गौणत्वमुक्तम् । महर्षिश्रीवाल्मीकिरपि नामकरणात् पूर्वं 'रामनाम' अभिधाय पुनः नामकरणसमयेऽपि तदेवाभिहितवान् तेन तस्य गौणत्वं नामनामिनोरभेदाङ्गीकारात् । चिन्मयस्येत्याद्युपबृंहणं, रूपस्थानामिति । तेन श्रीरामस्याजहत् स्वाकृतेरवतारः । किञ्च निराकारं ब्रह्म उपाधिवशात् पञ्चधा भाति । इतिपञ्चधा कल्पना, कल्पितस्येत्यादिना इति न युक्तम् । रज्जुः सर्परूपेणाभासते तथा यदिश्रुतेरभिमतं स्यात्तदाराघवशरीरस्यैवोपाधिकत्वेन द्वयादिसहस्रान्तभुजत्वसिद्धेः, ततः पृथक्त्वेन श्रुतं वाक्यं व्यर्थं स्यात् । तस्मात् पञ्चधाकल्पनातोभिन्नं साकारस्यावतारिणो ब्रह्मणः स्वेनैवरूपेणाविर्भावं प्रकाशयति । 'रमन्ते...परंब्रह्माभिधीयते' इतिपूर्वश्रुत्या यदुक्तं तस्यैव 'चिन्मयस्या

इन दोनों का सम्बन्ध विद्वानों के द्वारा अभेद माना गया है, इसलिये परब्रह्म एवं 'राम' इन दोनों में कोई भेद नहीं है। 'चिन्मयस्याद्वितीयस्य' इत्यादि उसी संक्षिप्त कथन का विस्तार पूर्वक निरूपण है। 'रूपस्थानां' रूप कल्पना के द्वारा इस तरह चिन्मयस्य का उपबृंहण रूपस्थानाम् आदि के द्वारा करने से श्रीरामचन्द्रजी का अपने पूर्व स्वरूप का जिन्होंने परित्याग नहीं किया है ऐसे अपनी नित्य आकृति के साथ अवतार हुआ है यह प्रतीत होता है। और अन्य सिद्धान्त वक्ताओं के द्वारा जो कहे हैं कि-निराकार ब्रह्म उपाधिवश पांच प्रकार से प्रतीत होता है, वस्तुतः एक ही है। यह कथन पांच प्रकार से कल्पना, 'कल्पितस्य' इत्यादि के द्वारा प्रतिपादन है यह कहना उचित नहीं है। जैसे रज्जु (रस्सी) में सर्पत्व नहीं होने पर भी वह रज्जु सर्प जैसा प्रतीत होता है, एवं उससे भय आदि कार्य उत्पन्न होते हैं। इस आभास के समान यदि जगत् का आभास होना वेद वचन का अभिप्राय होता तब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के शरीर का ही औपाधिक होने से दो से लेकर हजार पर्यन्त भुजाओं का होना औपाधिक प्रतीति के स्वरूप में सिद्ध हो जाने से उस वाक्य से भिन्न रूप में प्रतिपादित श्रुति वाक्य का अलग से प्रतिपादन करना निरर्थक हो जायेगा। इसलिये पूर्व में प्रतिवादी द्वारा कथित पांच प्रकार के कल्पना से अलग ही आकर सहित दिव्य विग्रहधारी ब्रह्म का अपने वास्तविक रूपसे ही रघुकुल में महाराज दशरथ के घर आविर्भाव को प्रकाशित करता है। 'रमन्ते योगिनः...परं ब्रह्माभिधीयते' इस पूर्व प्रतिपादित श्रुति के

द्वितीयस्य ब्रह्मणोरूपकल्पना' इत्यनेनैकवाक्यतया श्रीरामाख्यब्रह्मणो मूलकारणत्वं सर्वावतारित्वं च निश्चीयते, तत्सारूप्यावतारत्वोक्तेः पृथग् वाक्यसार्थक्यं जायते । तस्मात् पञ्चधाकल्पनातः पृथक् कल्पितस्येतीदं वाक्यमाद्यविग्रहस्य नित्यत्वमवतारित्वं विज्ञाप्य परब्रह्मणो द्विभुजादिमत्वं बोधयति । इत्थं प्राकृतनयनागोचरं यद् वाहनंतत् परमकृपया गोचरीकृतं नराकारं शरीरं तस्य शक्तिसेनादिकल्पना कृतेत्यन्वयः । कल्पनापदमाविष्कारार्थबोधकम् । अत्र पक्षे तु स्मृतमिदं यत् 'यथा ह्यादिप्रदीपेन सर्वदीपप्रबोधनम् । तथा सर्वावताराणामवतारीरघूत्तमः' इत्यादिवचनं वेदार्थोपबृंहकत्वं विज्ञेयम् ॥१६॥

द्वारा जिस ब्रह्म का निरूपण किया गया है, उसी साकार सर्वकारण ब्रह्म का जो चिन्मय अद्वितीय है उसी की रूप कल्पना शास्त्रों या ब्रह्मा के द्वारा अथवा विद्वानों के द्वारा की गयी है। इस तरह दोनों श्रुतिवचनों की एक वाक्यता करने पर 'रामचन्द्र' नाम से प्रसिद्ध ब्रह्म का मूलकारणत्व एवं सर्वावतारित्व रूप अभिप्राय का निश्चय किया जाता है। और उस अनादि सिद्ध नित्य द्विभुज धनुर्वाण धर के समान स्वरूपता वाला ब्रह्म का अवतारत्व निरूपण के कथन से पृथक् वाक्य प्रतिपादन की सार्थकता होती है। इसलिये पूर्व प्रतिपादित युक्ति के आधार होने से प्रतिवादी द्वारा आभास मूलक पञ्चधा पांच प्रकारों से रूप कल्पना से अलग ही, 'कल्पितस्य' शरीरस्य इत्यादि यह वचन भगवान् श्रीरामचन्द्रजी नामक ब्रह्म के आदि भूत नित्य विग्रह का परम नित्यत्व एवं अवतारित्व का विशेष रूपसे निरूपण करके पुनः उस 'राम' नामक परब्रह्म का द्विभुजादि सम्पन्न होना आदि अर्थ का प्रकाशन करता है। इसप्रकार जो प्रकृति जनित चर्म चक्षु द्वारा प्रत्यक्ष नहीं है ऐसा जो परब्रह्म तत्व है, वह परब्रह्म ही अपनी अहैतुकी परम कृपा से अप्रत्यक्ष होते हुए भी अपने भक्त के हेतु मानवीय आकृति में दृष्टि गोचर होते हैं। उनके भक्तजन गोचर मानव शरीर है उसकी शक्तिसेना आदि की कल्पना की गयी है, ऐसा समन्वय होता है। यहां पर व्यवहार किया गया कल्पना पद आविर्भाव रूप अर्थ का बोध कराने वाला है। इस पक्ष निरूपण में विद्वानों के द्वारा कहा गया है कि-जिस तरह आदि प्रदीप के द्वारा उसकी ज्योति से अन्य समस्त दीपों का प्रबोधन अर्थात् प्रज्वलन होता है। उसी तरह ब्रह्माण्ड में जितने भी भगवान् के अवतार हैं उन सभी अवतारों के अवतारी रघुकुल नायक हैं। इत्यादि वचन वेदार्थ का ही सम्बर्धक है यह विद्वानों को समझना चाहिये ॥१६॥

ननु स्वरूपोपासनामात्रेणोपासनासिद्ध्यति किन्तु मन्त्रोपासनायां तु बहुरूपोपासना इव बहुमन्त्रानुष्ठानेन तु समेषामुपास्यत्वापत्तिरिति समस्तोपास्य विज्ञानेनोपासनया च कारणवाचककार्यवाचकयोरैक्येन तज्जपेन तद्विज्ञानेन तदुपासनया च सर्वजपविज्ञानोपासनायाश्च सिद्ध्ये एतदर्थं श्रीराममन्त्रस्य सर्ववाचकत्वं निरूपयन् ब्रह्मादीनां वाचकोऽयमितिमन्त्रं श्रुतिरभिधत्ते ।

ब्रह्मादीनां वाचकोऽयं मन्त्रोऽन्वर्थादिसंज्ञकः ।
जप्तव्यो मन्त्रिणा नैनं विना देवः प्रसीदति ॥१०॥

यह षडक्षर ब्रह्म तारक श्रीराम मन्त्र ब्रह्म आदि समस्त देवताओं का स्वरूप प्रतिपादक है । मन्त्र के अर्थानुसार यह मन्त्र सभी वेदों के अर्थ प्रतिपादक है यह कहा गया है । मन्त्र धारक के द्वारा यह मन्त्र आवश्यक रूपसे जपा जाना चाहिये, इसका हर प्रकार से जप करना चाहिये । इस तारक श्रीराम महामन्त्र का जप किये विना भगवान् श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न नहीं होते हैं ॥१०॥

(अयं षडक्षरः तारकश्रीराममन्त्रः ब्रह्मादीनां देवानां वाचकः मन्त्रानुसारेण सर्वदेवार्थबोधकः उक्तः । मन्त्रधारकेणायं मन्त्रः जप्तव्यः अस्य सर्वथा जपः विधेयः । अस्य तारकश्रीराममन्त्रस्य जपेन विनादेवः श्रीरामो न प्रसीदति)

सर्वान् अर्थान् वाच्यान् अनुगता आदिः सनातनभूता सर्वार्थानुगतत्वेऽपि सर्ववाच्यवाचकत्वेन तन्नामान्तरकारणत्वोपपत्त्या सर्वश्रेष्ठरामेति संज्ञा यस्मिन् स अन्वर्थादिसंज्ञकः अत्र 'शेषाद् विभाषा' इतिबहुव्रीहौ कः । अथवा अनुगताः सर्वे ब्रह्मादयो अर्थाः यस्यां सा अन्वर्था चासौ आदिः संज्ञा च यस्मिन् मन्त्रे स अन्वर्थादिसंज्ञकः, सर्वशब्दवाच्यवाचकत्वश्रुतेः, सर्ववीजत्वस्मृतेश्च । अशेष

यदि प्रश्न करते हैं कि स्वरूप की उपासना मात्र से ही उपासना सफल होती है । लेकिन मन्त्रों की उपासना में तो जैसे बहुत रूपों की उपासना से किसी की उपासना सफल नहीं होती है इसीप्रकार बहुत मन्त्रों के अनुष्ठान से तो सभी देवताओं की उपासनीयता का दोष होगा । तदर्थ सभी उपास्य देवताओं का विशिष्ट ज्ञान करने से और उपासना के द्वारा कारण वाचक तथा कार्य वाचक शब्दों की एकरूपता निरूपण के द्वारा उस एक मात्र उपास्य देव का विज्ञान तथा जप के द्वारा एवं उसकी उपासना से सभी का जप सभी का विशिष्ट ज्ञान एवं सभी की उपासना सफल होती

शब्दकारणत्वबोधात्, मृत् शब्दस्य घटादीनां वाचकत्वमिव, समस्तवेद देवतन्मन्त्रलयोत्पतिस्थानत्वेन रेफस्य विवरणेन 'राम' नाम्नः सहस्त्रनामतुल्यत्वेन अनन्तभगवन्मन्त्राधिक्येन च सर्वमन्त्रकारणत्वोपपत्तेः । श्रीरामाख्यस्य ब्रह्मणः सर्वकारणभूतत्वश्रुतेश्चायंमन्त्रसर्वश्रेष्ठस्तेन सर्वैरुपास्योज्ञेयश्चेति । श्रीराम नाम्नोऽकारणकत्वेनानादित्वं, मन्त्रान्तराप्रकाश्यत्वेन तत् प्रकाशकत्वं सर्वका रणत्वञ्च, 'स्वभूर्ज्योतिर्म' इत्यादिश्रुत्या, 'रेफारूढामूर्तयस्युरित्यादिस्मृत्या च श्रीरामनाम्नो सर्वेषां शब्दानामर्थानां चोत्पतिलयस्थानत्वं ब्रह्मरूपत्वञ्च विलोक्यश्रुतिराह-ब्रह्मात्मकाः सच्चिदानन्दाख्या इत्युपासितव्यम् । तदुक्तम् पुलहसंहितायाम्-

रकाराज्जायते ब्रह्मा रकाराज्जायते हरिः ।
रकाराज्जायते शम्भुः रकारात् सर्वशक्तयः ॥
आदावन्ते च मध्ये च रकारेषु व्यवस्थितम् ।
विश्वं चराचरं सर्वमवकाशेन नित्यशः ॥

है, इस प्रयोजन से श्रीराम षडक्षर मन्त्र का सर्व देव सर्व मन्त्र वाचकत्व का निरूपण करते हुए 'ब्रह्मादीनां वाचकोऽयं' इस मन्त्र का श्रीरामतापनीय श्रुति निरूपण करती है।

सभी प्रतिपाद्य अर्थों को सनातनभूत सभी अर्थों का अनुगामी नहीं होने पर भी सभी के वाच्यार्थ का वाचक होने से उन अन्य देवताओं के नामों का कारण होने की युक्ति के आधार पर सर्वश्रेष्ठ 'राम' यह संज्ञा है जिसमें वह अन्वर्थादि संज्ञक कहा जाता है । यहां पर 'शेषाद् विभाषा' इस सूत्र से बहुव्रीहि समासार्थ में कप् प्रत्यय हुआ है । अथवा अनुगत है ऐसी ब्रह्म आदि अर्थ समूह जिस में वह अन्वर्था कही जाती है वह अन्वर्था संज्ञा प्रथम नाम है जिस मन्त्र में वह अन्वर्थादि संज्ञा वाला मन्त्र है । संसार के लौकिक वैदिक सभी शब्दों का कारणत्व का बोध होने से जैसे-मिट्टी शब्द समस्त घट कुडवा आदि का कारण एवं बोधक होता है उसी तरह समस्त वेद देव एवं मन्त्रों के उत्पत्ति एवं लय स्थान होना यह रेफ का विवरण देखे जाने से श्रीराम नाम का विष्णु के हजार नाम की समानता प्रतिपादन के द्वारा अनन्त भगवान् के मन्त्रों के अपेक्षा अधिकता निरूपण से श्रीराम मन्त्र की सर्व मन्त्र सर्वदेवादि कारणता युक्ति संगत होती है । श्रीराम नामक ब्रह्म का सभी का कारण स्वरूप होना श्रुतियों द्वारा निरूपित होने से यह सिद्ध होता है कि यह श्रीराम मन्त्र सभी मन्त्रों से

यथैव वटवीजस्थः प्राकृतश्च महाद्रुमः ।

तथैव सर्ववेदा हि रकारेषु व्यवस्थिताः ॥

यथाकरण्डे रत्नानि गुप्तान्यज्ञैर्न दृश्यते ।

तद्वन्मन्त्राश्च वेदाश्च रकारेषु व्यवस्थिताः ॥ तथापुराणे-

मुख्यत्वाद्विश्ववीजत्वात् तारकत्वान्महेश्वर ।

त्वदंशैः स्वीकृतं राम चास्माभिर्नाम ते त्रिभिः ॥

श्रेष्ठतम है। और इससे ज्ञात होता है कि सभी के द्वारा उपासना करने योग्य एवं जानने योग्य है।

श्रीराम नाम का कोई भी कारण से युक्त नहीं होने से अनादित्व ज्ञात होता है। और किसी अन्य देवता के मन्त्र द्वारा प्रकाश्य नहीं होने के कारण से भी अन्य देवताओं के मन्त्रों का प्रकाशकत्व और सभी मन्त्रों और देवों का कारणत्व ज्ञात होता है। 'स्वभूर्ज्योतिर्मय' इत्यादि श्रुतियां 'रेफारूढामूर्तयः स्युः' इत्यादि स्मृति वचनों से श्रीराम नाम का सभी अर्थों का उत्पत्ति एवं लय का स्थान होना और परब्रह्म स्वरूपता को देखकर श्रुति भी कहती है। ब्रह्म स्वरूपता सत् चित् आनन्द नाम वाला श्रीरामजी की उपासना करनी चाहिये। यही विषय पुलह संहिता में प्रतिपादन किया गया है। रेफ से ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं। रेफ से प्राणियों के सभी दुःखों का हरण करनेवाले श्री हरि उत्पन्न होते हैं। और रेफ से भगवान् शङ्कर उत्पन्न होते हैं। और रेफ से ही सभी शक्तियां उत्पन्न होती हैं। आदि अन्त और मध्य में सभी रकार में ही सभी व्यवस्थित हैं। और नित्यशः समस्त जडचेतनात्मक जगत् विस्तार के साथ रकार में ही प्रतिष्ठित है। जिस प्राकृत दृष्टिगोचर विशाल वटवृक्ष सूक्ष्म वट बीज में प्रतिष्ठित हैं। उसी प्रकार समस्त वेद रकार में व्यवस्थित हैं। जिस प्रकार मञ्जूषा के अन्दर स्थापित रत्नादिक अज्ञानी व्यक्तियों के द्वारा सुरक्षित या क्षिपा हुआ होने से नहीं देखा जा सकता है, उसी के समान सभी मन्त्र एवं सभी वेद रेफ के अन्दर प्रतिष्ठित होने पर भी साधारण बुद्धि वाले अज्ञानियों के द्वारा नहीं जाने जाते हैं पर सभी रकार में व्यवस्थित हैं। इसी प्रकार पुराण में भी कहा गया है श्रीराम मन्त्र की सभी मन्त्रों में प्रधान होने के कारण और सभी मन्त्रों का मूलकारण होने के कारण, तथा सभी देवादि का उद्धारक होने से हे महेश्वर आप सभी के अंश से एवं हम सभी के अंश से तीनों शक्तियों के रूपमें स्वीकृत किया गया है। प्राचीन काल में भृगु वंशोद्भव परशुराम के रूप

भार्गवोऽयं पुराभूत्वा स्वीचक्रे नाम ते विधिः ।
विष्णुर्दाशरथिर्भूत्वा स्वीकरोत्यधुना विभो ॥
संकर्षणस्तथा चाहं स्वीकरिष्यामि शाश्वतम् ।
एकमेवत्रिधा यातं सृष्टिस्थित्यन्तहेतवे ॥
पुराणान्तरेष्वपि 'विश्वरूपस्य ते रामेत्यादिनोक्तम् ।

षडक्षरस्य सर्वार्थानुगतत्वं स्फुटयतिब्रह्मादीनां वाचकोऽयमिति, अनयोः परस्परं कारणकार्यभावोऽपि बोध्यः । अत्र परब्रह्मपरं ब्रह्मशब्दो नतु चतुर्मुख परः । तच्छ्रेष्ठस्य संग्रहायोग्यत्वात् रामवाचकत्वं न स्यात् । 'इतिरामपदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते' इत्युक्तेः । आदि पदेन द्विचतुर्भुजादिकृष्णनारायणनृसिंहादीनां
में होकर विधाता के रूपमें आप ने श्रीराम नाम को स्वीकार किया । हे विभो व्यापक श्रीरामजी वर्तमान समय में आप दशरथ पुत्र रूपमें अभिव्यक्त होकर इस श्रीराम नाम को स्वीकार कर रहे हैं । और भावी समय में उसी प्रकार संकर्षण बलराम के स्वरूप में शिवांश के रूपमें मैं श्रीराम नाम स्वीकार करुँगा । इसप्रकार एक ही श्रीराम तत्त्व ब्रह्मा विष्णु और शिव तत्त्वों के स्वरूप में तीन प्रकार से हो गये । और अन्य पुराणों में भी 'विश्वरूपस्य ते राम' इत्यादि के द्वारा श्रीरामजी को सर्वावतारी कहा गया है। छ अक्षर हैं जिस में ऐसे तारक मन्त्र का सभी अर्थों से अनुगत होना स्पष्ट रूपसे प्रकाशित करता है 'ब्रह्मादीनां वाचकोऽयं' इत्यादि वचन के द्वारा श्रीराम एवं परब्रह्म का परस्पर कारण कार्य भाव सम्बन्ध है यह भी समझना चाहिये । यहां पर ब्रह्म शब्द परब्रह्म अर्थ का बोधक हैं चतुर्मुख ब्रह्मा अर्थ का बोधक नहीं है । ऐसा परब्रह्म अर्थ बोधकत्व नहीं स्वीकार करें एवं ब्रह्मा अर्थ स्वीकार करें तो ब्रह्मा से श्रेष्ठ श्रीराम अर्थ की संग्रह योग्यता ब्रह्मा में नहीं है अतः श्रीराम नाम वाचकत्व नहीं हो सकेगा । 'इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते' इस तरह वह परब्रह्म 'राम' पद से कहे जाते इस श्रुति वचन से परब्रह्मार्थ बोधकत्व है । यहां पर आदि पद प्रयोग के द्वारा दो चार आदि भुजाओं वाले श्रीकृष्ण नारायण नृसिंह आदि भगवत् स्वरूपों का भी संग्राहकत्व है । क्योंकि लोक व्यवहार में आने वाले एवं वैदिक सभी विष्णु के हजारों नामों से अधिक श्रीराम नाम को कहे जाने से, सभी वेदों का एवं सभी मन्त्रों का हजारों नाम के महत्व से अधिक श्रीराम नाम का महत्व कहे जाने से इन सभी के पाठ से जो पुण्य फल अर्जित होता है, उस से अधिक फल षडक्षर ब्रह्म तारक श्रीराम मन्त्र के

भगवत् स्वरूपाणां संग्रहः । लौकिकवैदिकनामसहस्त्राधिकत्वोक्तेः । सर्वेषां वेदानां मन्त्राणाञ्च पाठेन यत् फलं तत्फलं षडक्षरपाठाद् भवतीत्युक्तेश्च । तदुक्तम्-

जपतः सर्ववेदांश्च सर्वमन्त्रांश्च पार्वति ।

तस्मात् कोटिगुणं पुण्यं रामनाम्नैव लभ्यते ॥

तस्मात् सर्वमन्त्रजपफलप्रदस्यास्य सर्वमन्त्राधिक्योक्त्या सर्वकारणत्वेन सर्ववाच्यवाचकत्वोपपत्तेः षडक्षरस्यैवोपासनया सर्वेऽवताराब्रह्मादयश्चोपासिताः भवेयुः । अतएव मन्त्रराज उपासितव्य इति उत्तरतापनीये वक्ष्यते । श्रीरामस्य सच्चिदानन्दरूपत्वात् सच्चिदानन्दरूपाणां सर्वेषां भगवत्स्वरूपाणामपि वाचकत्वं विज्ञाप्य ब्रह्मादीनाम् इत्युक्तम् छन्दोभंगभयेन ब्रह्मादीनामपि इतिनोक्तम् ।

अत्र मन्त्रराजस्योत्कर्षतां विज्ञाप्य जपं विधत्ते इति जप्तव्यः । तेन मन्त्रिणा दीक्षाविधिना सद्गुरोः सकासाद् मन्त्रं गृहीत्वा जपः विधेयः । जपस्यावश्यकर्त्तव्यत्वेन दृढतां बोधयन् 'विना' इत्याह, एनंमन्त्रराजं विना जपं द्योतनात्मादेवो देवादिसमाराध्यः श्रीरामचन्द्रः न प्रसीदति स्वात्मानं न दर्शयतीतिभावः ।

जप से होता है ऐसा कहे जाने से सिद्ध है । यही विषय वस्तु कहा गया है कि-सभी वेदों के जप करने से तथा सभी मन्त्रों के जप करने से जो पुण्य फल अर्जित होता है हे पार्वति उन सभी के अपेक्षा करोड गुणा अधिक पुण्य फल श्रीराम नाम का उच्चारण करने मात्र से होता है ।

इसलिये सभी देवताओं के मन्त्रों का जप फल को प्रदान करने की क्षमता वाला इस मन्त्र में सभी मन्त्रों से अधिकता कहे जाने से और सभी मन्त्रों एवं देवताओं का कारण होने से और समस्त वाच्यार्थों के वाचकत्व की युक्ति के आधार पर ब्रह्म तारक षडक्षर श्रीराम मन्त्र की ही उपासना के द्वारा समस्त भगवदवतार एवं और ब्रह्म आदि उपासित पूजित हो जायेंगे । इसीलिये कहा गया है कि मन्त्रराज की उपासना करनी चाहिये । यह विषय श्रीरामोत्तरतापनीय उपनिषद् में आगे निरूपण किया जायगा। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के सच्चिदानन्द स्वरूप होने के कारण समस्त भगवत् स्वरूपों का भी सच्चिदानन्द वाचकत्व का प्रतिपादन कर के ब्रह्म आदि का वाचक है यह कहा गया है । 'ब्रह्मादीनां' इस मन्त्र में 'ब्रह्मादीनामपि' इस तरह 'अपि' शब्द का प्रयोग करना अपेक्षित था, लेकिन छन्दोभंग नहीं हो इस भय से अपि शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है ।

अथवा सर्वेषां जीवानां स्व स्व प्रारब्धकर्माण्यनुसृत्यैव सुखदुःखादि भवति । ततः किं मन्त्रजपेन फलमिति जिज्ञासायामुच्यते । कृष्यादिलौकिकानि कर्माणि वैदिकानि च यज्ञाद्यनुष्ठानकर्माणि प्रारब्धमतिक्रम्य फलदानि यथा भवन्ति, तथा पुरुषकारस्यावश्यकतादृढयन्नाहप्रारब्धमतिक्रम्य मन्त्रजपरूप पुरुषार्थस्य श्रीरामप्रसन्नता फलम् । मन्त्रजपेनाहं वः प्रसीदामीति सार्थक्य बोधनमस्य गम्यते ॥१७॥

इस ऋचा में मन्त्रराज षडक्षर तारक मन्त्र की उत्कृष्टता का विशेष रूपसे निरूपण करके जप करते हैं इस से जप करना चाहिये यह विधान किया इस कथन द्वारा यह प्रमाणित होता है कि श्रीराम मन्त्र को धारण करने वाले महाशय के द्वारा सम्प्रदाय परम्परा में जो दीक्षा प्रदान करने की परम्परा है उस विधान के अनुसार सद् गुरु के पास से श्रीराम महामन्त्र को विधान से उपलब्ध करके पुनः श्रीराम महामन्त्र राज का जप नियमानुसार करना चाहिये । श्रीराम महामन्त्र का जप अत्यावश्यक कर्तव्य है इस अभिप्राय की दृढता को अभिव्यक्त करते हुए ऋचा में 'विना' शब्द का व्यवहार किया गया है । इस षडक्षर ब्रह्म तारक श्रीराम महामन्त्रराज को विना जप किये अत्यन्त प्रकाशमय जिनका स्वरूप है ऐसे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न नहीं होते हैं । अर्थात् उपासक को अपने स्वरूप का दर्शन नहीं कराते हैं अतः अवश्य जप करना चाहिये यह भाव है ।

अथवा यह कहें कि संसार के सभी जीव आत्माओं को अपने अपने पूर्व जन्मों में अर्जित प्रारब्ध कर्मों का अनुसरण करके ही सुख दुःख आदि होते हैं । तब भगवान् श्रीरामजी के मन्त्र का जप करने से क्या फल होगा । कर्म के अनुसार ही फल मिलने वाला है । इस स्वरूप की जानने की इच्छा होने पर कहते हैं→जैसे खेती वाडी आदि लौकिक कर्म कलाप और वेद प्रतिपाद्य यज्ञादि अनुष्ठान कर्म कलाप प्रारब्ध कर्मों का अतिक्रमण करके भी व्यक्ति के कर्तव्यानुसार फल प्रदान करते हैं । उसी तरह व्यक्ति के पुरुषार्थ से विशेष फल लाभ होता है इस अभिप्राय को मजवूत करते हुए श्रुति वचन कहता है । प्रारब्ध कर्म फल का भी उलङ्घन करके श्रीराम मन्त्र जप स्वरूप पुरुषार्थ का भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की प्रसन्नता फल है 'मेरे मन्त्र का जप करने वाले पर मैं प्रसन्न होता हूँ' इस रूपमें सार्थक बोधन इस कथन का प्रयोजन है यह प्रतीत होता है ॥१७॥

अथ विहितस्य मन्त्रजपस्य अर्थानुसंधानपूर्वकमेव फलदत्वादर्थ-मुपदिशति-

क्रियाकर्मेज्यकर्तृणामर्थं मन्त्रोवदत्ययम् ।
मननात् त्राणनान्मन्त्रः सर्ववाच्यस्य वाचकः ॥११॥

इसके वाद क्रिया कर्म उपास्य देवता और उपासना कर्ता रूप अर्थों का निरूपण करता हुआ समस्त प्रतिपाद्य विषयों के अर्थ को यह मन्त्र प्रतिपादन करता है। इसके पश्चात् मनन करने के कारण तथा उपासक का संरक्षण के कारण यह मन्त्र कहा जाता है। एवं सर्व शब्द के अर्थ का वाचक होता है ॥११॥

अनन्तरम् क्रिया कर्मोपास्य कर्तृणां प्रतिपाद्यविषयं मन्त्रः प्रतिपादयति । मन्त्रः मननात् त्राणनात् च सर्ववाच्यस्य वाचको भवतीत्यर्थः ॥११॥

मम शरीरी 'श्रीराम' इतिमनोव्यापाररूपाभावना क्रिया उच्यते, अनेन स्वोपास्य प्राप्तेरूपाय उक्तः । स्वप्राप्यस्य भगवतः कैङ्कर्यलक्षणं चतुर्थीवि भक्त्यन्तेन बोध्यस्यानुशीलनं कर्म । ईज्यः पूजनीयः, उक्तक्रियाश्रयः कर्ता, ईज्यत्वप्रतियोगीभूतस्तदाराधकः, भगवदाराधकत्वेन तच्छेषभूतोजीवात्मा मकारवाच्यः । एतेषामभिधेयम् मन्त्रः कथयति । अस्यार्थस्य मननात् यत् त्राणनं

इसके पश्चात् कहते हैं कि शास्त्र द्वारा विहित मन्त्र जप का अर्थानुशीलन पूर्वक अधिक फल प्रदत्व होने से श्रीराम मन्त्र का अर्थोपदेश इस ऋचा के द्वारा करते हैं- मेरे इस भौतिक शरीर का स्वामी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं इस तरह के मानसिक व्यापार को क्रिया कहते हैं। इस मानसिक भावना के द्वारा अपने उपासनीय की प्राप्ति का उपाय सूचित किया गया। अपने जीवनगत सर्वविध प्रयास द्वारा प्राप्त करने योग्य भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का कैङ्कर्य स्वरूप 'रामाय' पद में चतुर्थी विभक्ति की योजना के द्वारा जानने योग्य अभिप्राय का पुनः पुनः अनुशीलन कर्म कहा जाता है। ईज्य का अर्थ पूजन करने योग्य यह अर्थ है। व्यापार का आश्रय को कर्ता कहा जाता है। जिसका अभाव कहा जाता है, उसे प्रतियोगी कहते हैं। पूजनीयता का प्रतियोगी बना हुआ उन उपासनीय श्रीरामचन्द्रजी की आराधना करने वाला, भगवान् का अर्चक के स्वरूप में भगवान् शेष अंशस्वरूप जीवात्मा मकार शब्द से प्रतिपादनीय है। इन सभी तत्त्वों के अर्थ को मन्त्र निरूपण करता है। इस अभिप्राय का मनन (अनुशीलन)

संरक्षणं यस्माद् भवति स मन्त्र उच्यते । स्वात्मतत्वबोधस्योपायभूतश्रीराम एव तस्यैवानुकम्पया भवसागरादुद्धारो भवितेत्यनुशीलनमेव मननम् । तेनैवोपायान्तरत्यागपुरस्सरं श्रीरामे एव दृढा स्थितिः जायते । कर्मणः प्रयोजनस्य च मननात् अर्थकामदेवतान्तरोपासनादिषु प्रवृत्तेः निरासपूर्वकमेकमात्रम् भगवतः श्रीरामस्य कैङ्कर्यं पुरुषार्थत्वभावनोत्पद्यते । ईज्यपदार्थस्य मननात् स्वात्मनि भगवत् शेषबुद्धिदार्ढ्यं भवति, देवतान्तरे च शेषत्वभावनानिरासः । कर्तृपदार्थस्य मननात् आत्मनि स्वातन्त्र्यभावनाहानिपुरस्सरं सार्वदिकभगवदर्चनाबुद्धिरुत्पद्यते । एतेन क्रियाकर्मेज्यकर्तृणां श्रीराम एवोपायः, तत् कैङ्कर्यमेव

करने के कारण तथा इसप्रकार परमेश्वर के विषय में चिन्तन करनेवाले का संरक्षण के कारण जो परिपालन की भावना जिससे होती है वह मन्त्र कहा जाता है। अपनी आत्मा का तात्विक स्वरूप के ज्ञान का उपाय बने हुए सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी ही हैं। उन्हीं की अहैतुकी परमानुकम्पा से इस संसार रूपीसागर से उद्धार होगा इस तरह सतत अनुचिन्तन ही मनन कहा जाता है। इस तरह का सतत चिन्तन के द्वारा ही अन्य सांसारिक उपायों का परित्याग पूर्वक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी में उपासनीयता की दृढतर भावना की स्थिति उत्पन्न होती है। हम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की सेवा के लिये ही हैं। उनकी सेवा से ही संसार सागर से उद्धार होगा इस तरह कर्म एवं प्रयोजन का मनन करने से सांसारिक धन धान्य, भौतिक सुख की अभिलाषा, एवं अन्य देवता की उपासना आदि में प्रवृत्ति का निराकरण पूर्वक एक मात्र भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की सेवा में पुरुषार्थ की भावना पैदा होती है, अर्थात् क्रिया कर्म तथा ईज्य आदि का परिशीलन करने से सांसारिक भावों से एवं अन्य देवताओं से वैराग्य पूर्वक भगवान् श्रीरामजी में सुस्थित पूज्यत्व की भावना होती है। इस संसार में श्रीराम सेवा ही सर्वोत्तम पुरुषार्थ है अन्य कार्य हेय है। ईज्य पदार्थ का अनुशीलन करने से स्वयं उपासक में यह भावना पैदा होती है कि मैं भगवान् का शेषभूत जीव हूँ भगवान् श्रीरामजी मेरे शेषी हैं ऐसी बुद्धिगत दृढता होती है। और अन्य देवताओं में उनका मैं शेष हूं ऐसी भावना का खण्डन हो जाता है। कर्ता पदार्थ का मनन करने से अपनी आत्मा में स्वतन्त्रता की भावना का परित्याग पूर्वक सभी समय में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की पूजा करने के बुद्धि उत्पन्न होती है। पूर्व निरूपित क्रिया कर्म एवं ईज्य कर्ता का श्रीरामचन्द्रजी ही एक मात्र उपाय हैं। उनका निरन्तर अर्चन करना ही

मम कर्त्तव्यम्, अहं तस्य शेषः स च मम शेषी, अहं तदाराधकः, स च ममाराध्य एवमादिचिन्तनेन अनन्योपायताभावनया सर्वथा भगवच्छरणागतं ज्ञानिनं मन्त्रः सर्वथा परिपालयति । सविधिगुरुपदेशान्तरं मन्त्रार्थानुचिन्तकमुपासकं संसार सागरतो मन्त्रः सर्वदा सर्वथा च रक्षणं करोतीतिभावः ।

यद्यपि मन्त्रार्थानुचिन्तनमन्तरापि भगन्नामोच्चारणमात्रेणाजामिलादेः संरक्षणं श्रूयते, तेन त्राणनादित्येव वक्तव्यमित्युच्यते । तथापि मन्त्रानुच्चार कस्यापि त्राणनं न स्यादिति मननादित्युच्यते । उपलक्षणमिदं मन्त्रस्य मननात् त्राणनाद्वेत्यर्थः । अन्यथा-

रामेति द्व्यक्षरो मन्त्रो मरणे यस्तु संस्मरेत् ।
नरो न लिप्यते पापैः पद्मपत्तमिवाम्भसा ॥

मेरे जीवन का परम कर्तव्य है। मैं भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का शेष हूँ। और भगवान् श्रीरामचन्द्रजी मेरे शेषी हैं। मैं उन शेषी भगवान् श्रीरामजी का आराधक हूँ। और वे मेरे सर्वथा सर्वदा आराधनीय हैं। इस प्रकार का सतत चिन्तन के द्वारा भगवान् के शिवाय मेरा इस संसार में दूसरा कोई उपाय नहीं इसप्रकार की भावना के द्वारा सभी प्रकार से भगवत् शरणागत ज्ञानी पुरुष का मन्त्र सभी प्रकार से परिपालन करता है। अपने गुरु के उपदेश के पश्चात् मन्त्रार्थ का अनुशीलन करनेवाले उपासक को संसाररूपीसमुद्र से मन्त्र सभी तरह से सभी प्रकार से सदैव संरक्षण करता है ।

यद्यपि मन्त्र के अर्थ का अनुशीलन नहीं करने पर भी भगवान् के नाम का उच्चारण करने मात्र से ही अजामिल आदि का मन्त्र ने परिरक्षण किया ऐसा कथाओं में सुना जाता है । इसलिये ऋचा में केवल 'त्राणनात्' इतना ही कहना चाहिये 'मननात्' कहने का कोई प्रयोजन नहीं है। केवल 'त्राणनात्' इतना ही कहना चाहिये यदि ऐसा कहें तो-इस विषय में कहा जाता है कि जो मन्त्र का उच्चारण नहीं करता है और मनन करता है तो उसका त्राणन (संरक्षण) नहीं हो सकता है। मननात् त्राणनात् यह उपलक्षण है इसिलिये मन्त्र का मनन करने से अथवा त्राणन-संरक्षण करने से यह अभिप्राय हैं। यदि ऐसा नहीं हो तो जो व्यक्ति मृत्यु के समय में 'राम' यह दो अक्षर वाला मन्त्र का सम्यक् स्मरण करता है वह कमल का पत्ता जिस तरह पानी से लिप्त नहीं होता है उसी तरह पापों से लिप्त नहीं होता है और जो व्यक्ति प्राण निकलने के समय में एक वार भी श्रीरामजी के नाम का स्मरण करता है वह सूर्य

प्राणप्रयाणसमये यस्तु नाम सकृत् स्मरेत् ।
सभित्वा मण्डलं भानोः परम्पदमवाप्नुयात् ॥
द्विजो वा राक्षसोवापि पापी वा धार्मिकोऽपि वा ।
रामरामेति यो वक्ति समुक्तोनात्र संशयः ।

इत्युक्तेर्व्याकोपस्यात् । वीजविवरणयोरैक्यस्मृतेः नाममन्त्रयोर्भेदो न शङ्कनीयः । विधेयवस्तुस्तूयते इतिन्यायेन विधिनिषेधाश्रुतेश्चार्थवादो न शङ्कनीयः । मन्त्रार्थानुसन्धानेन देहात्मबुद्धित्यागपुरस्सरं भगवच्छेषत्वज्ञानेन तत्पारतन्त्र्यनिर्णयात् मच्छेषीरक्षणमवश्यं करिष्यतीति तदितरोपायत्यागेन देहसम्बन्धिषु
मण्डल का भेदन करके परमपद को प्राप्त करेगा, ब्राह्मण हो अथवा राक्षस पापी हो अथवा धार्मिक जो भी 'राम राम' इस शब्द का उच्चारण करता है वह मुक्त ही है इस विषय में कोई सन्देह नहीं, इत्यादि वचन का उपलक्षण नहीं मानने पर विरोध होने लगेगा। मन्त्र का वीज और विवरण दोनों को एक माना गया है इसिलिये नाम और मन्त्रों में किसी प्रकार का भेद की शंका नहीं करना चाहिये। मन्त्र के अर्थ का अनुशीलन करने से शरीर में आत्मत्व बुद्धि का परित्याग पूर्वक अपने आप में भगवान् श्रीरामजी का शेषत्व ज्ञान होने से स्वयं में भगवत् परतन्त्रता का निर्णय के कारण मेरे शेषी श्रीरामजी हैं वे मेरी रक्षा अवश्य करेंगे इस तरह की भावना होने से श्रीरामजी से इतर का त्याग होने के कारण शरीर से सम्बन्ध रखने वाले पुत्र-पत्नी भाई आदि सम्बन्धियों पर बन्धुत्व भावना का अभाव उत्पन्न होता है और परमात्मा के ऊपर बिना किसी हेतु के बन्धुत्व भावना का उदय होता है अपने जीवन के समस्त कार्य कलापों को भगवान् की सेवा भावना से सम्पादन करता है इसीलिए इस भौतिक शरीर के अन्त होने के वाद भगवान् का नित्य कैङ्कर्य स्वरूप सायुज्य मोक्ष प्राप्त करता है। मन्त्रार्थ का मनन के द्वारा आत्मीयत्व आदि बुद्धि का त्याग होने से परम वैराग्य का प्रादुर्भाव के द्वारा मन्त्र का निरन्तर अनुशीलन करने पर भगवान् में दिनानुदिन अभिरूचि उत्पन्न होती है। जो मन्त्रार्थ का अनुशीलन नहीं करता है ऐसे व्यक्ति का तो देह गेह आदि में आसक्ति होने से विषय भोग के प्रति चञ्चलता होती है और उससे मुक्ति होने में सन्देह होता है।

अब अन्य मन्त्रों के अपेक्षा ब्रह्मतारक षडक्षर 'श्रीराम' मन्त्र का उत्कर्ष बताते हुए ऋचा में कहते हैं कि ब्रह्माण्ड के समस्त प्रतिपाद्य अर्थ का यह षडक्षर श्रीराम

बन्धुत्वभावना विरहो जायते, परमात्मनि च निरूपाधिकबन्धुत्वबुद्धिरुदेति । निखिलानि कार्याणि च भगवत् सेवाभावनया सम्पादयति तेन देहावसानोत्तरं नित्यकैङ्कर्यरूपीमुक्तिमवाप्नोति । मन्त्रार्थस्य मननेन आत्मत्वादिबुद्धिहानेः परमवैराग्योदयेन मन्त्रानुस्मरणादिनानुदिनमभिरुचिर्जायते । इतरस्य तु देहाद्यासक्त्या विषयचापल्यं तेन देहावसानसमये न मन्त्रस्मृतिर्भवति तेन मुक्तौ सन्देहः ।

अथ मन्त्रान्तरेभ्यः षडक्षरश्रीराममन्त्रस्योत्कर्षं निरूपयन्नाह 'सर्ववाच्यस्य वाचकः' इति । राजपुत्रवाक्य इव शब्दतोब्रह्मादिवाचीसन्नप्यर्थतः चिन्मयेऽस्मिन्नित्यादिप्रतिपाद्यार्थबोधकत्वेन परब्रह्मणः तादात्म्येन चायं मन्त्रः सर्वश्रेष्ठः । 'सर्ववाच्यस्यवाचकः' इतिश्रुत्या 'विश्वेशब्दा हि वाचका' इतिस्मृत्या च विश्वबीजत्वस्मृतेरक्षयत्वस्मृतेश्च श्रीरामस्य चिच्छरीरित्वेन सर्वावतारित्वेन च सर्वरूपत्वमुपपद्यते सर्वमन्त्रजपफलप्रदत्वोक्तेः । सर्वकारणभूतप्रणवकारणतोक्तेश्चाशेषभगवन्नाम्नां कारणत्वं सिद्ध्यति ।

मन्त्र वाचक हैं। जिस तरह राजकुमार एवं उनके समान अन्य व्यक्ति तथा सेना आदि के चलने पर यह राजपुत्र जाता है प्रयोग होता है उसी नियम के अनुसार 'राम' शब्द सामान्य रूपसे ब्रह्मवाची होने पर भी अर्थवशात् 'चिन्मयेस्मिन्' इत्यादि अर्थ का बोधक होने से परब्रह्म रूप अर्थ के साथ तादात्म्य सम्बन्ध के द्वारा यह श्रीराम मन्त्र अन्य सभी मन्त्रों से श्रेष्ठ है इस तात्पर्य का प्रकाशन के लिए 'सर्ववाच्यस्य वाचकः' इस श्रुति वचन के द्वारा और 'विश्वरूपस्य ते राम विश्वे शब्दा हि वाचकाः' इस स्मृति के द्वारा, और श्रीरामजी में विश्व बीजत्व स्मृति से तथा श्रीरामचन्द्रजी का चित्शरीरी होने के कारण और सर्वावतारी होने से सर्वरूपत्व कथन युक्ति युक्त होता है मन्त्र में सभी मन्त्रों के जप करने का फल प्रदान करने की क्षमता प्रतिपादन कथन से समस्त भगवान् के नामों का कारणत्व श्रीरामजी में सिद्ध होता है क्योंकि सभी देवताओं की कारणता ॐकार में कही गयी है एवं ॐकार का कारणत्व श्रीरामजी में कहा गया है इसीलिए सर्व भगवत् कारणत्व सर्वेश्वर श्रीरामजी में सिद्ध है ।

'सर्ववाच्यस्य वाचकः' इस वाक्य में 'सर्ववाची अस्य वाचकः' इस प्रकार का विच्छेद है अर्थात् समस्त अर्थों का प्रतिपादन करने वाला जो शब्द वह इसका वाचक है राजपुरुष वाक्य के समान ही शब्दतः यह 'राम' शब्द ब्रह्म वाची होने पर भी जिसप्रकार कारणभूत मृत्तिका शब्द घट आदि सभी मृत्तिका निर्मित पदार्थों का वाचक

'सर्ववाच्यस्यवाचकः' इतिसर्ववाची अस्य वाचक इति विच्छेदः । राजपुरुष वाक्यवत् शब्दतोऽयं श्रीरामशब्दो ब्रह्मवाचीसन्नपि, यथामृत्शब्दः सर्वस्य मृन्मयस्य वाचकः तथाऽयं मन्त्रः सर्वश्रेष्ठ इतिभावः । श्रीरामस्य चित् शरीरित्वेन सर्वेषां श्रीरामनामकार्यत्वेन कार्यस्य कारणानुगामितया सर्वशब्द वाच्यस्य श्रीरामस्य वाचकः । सर्वेषां भगवत् स्वरूपाणां चिदचिदन्तर्यामित्वेन ऐक्येऽपि 'सर्ववाच्यस्यवाचकः' इतिविशेषोक्तेः श्रीरामस्य तन्मन्त्रस्य च सर्वश्रेष्ठत्वम् ॥१८॥

होता है तथा समस्त विकारों के अपेक्षा कारण होने से श्रेष्ठ कहा जाता है उसीप्रकार यह श्रीराम शब्द सभी देवताओं का कारण ॐकार का कारण होने से सर्वश्रेष्ठ है यह अभिप्राय 'सर्ववाच्यस्य वाचकः' का है। भगवान् श्रीरामजी का चित्शरीरी होने के कारण संसार के समस्त कार्यों का कारण श्रीराम नाम का कार्य होने से कार्यों का कारणानुगामी होने से अर्थात् समस्त मृद्भाण्डों को टूट जाने पर भी सत्य रूप में मृत्तिका ही अव शेष रहती है अर्थात् कार्य का नाश होने पर भी कार्य का कारण के रूपमें अपने अस्तित्व स्वरूप में रहने से कारणानुगामी होता है इसीलिए सर्वशब्द प्रतिपाद्य श्रीरामजी का वाचक यह मन्त्र है। समस्त भगवत् स्वरूपों का चित् एवं अचित् का अन्तर्यामी के रूपमें नियामक होने से सभी में एकरूपता होने पर भी यह षडक्षर श्रीराम मन्त्र सर्ववाच्य का वाचक है ऐसी विशेषता कहे जाने से भगवान् श्रीरामजी एवं उनके षडक्षर मन्त्र की सर्वश्रेष्ठता है यह सिद्ध होता है ॥१८॥

एवमेकेन मन्त्रेण सामान्यतः मन्त्रार्थं निरूप्य पूजनीयदेवशरीररूपत्वं यन्त्रस्य सूचयन् बाह्यपूजोपयोगीयन्त्रं श्रीरामशरीरत्वेन अवश्यमेवपूजयेत् इतिप्रतिपादयन्नाह-सोभयस्येति ।

सोभयस्यास्यदेवस्यविग्रहो यन्त्रकल्पना ।
विनायन्त्रेण चेत्पूजादेवता न प्रसीदतीति ॥१२॥

आगे निरूपित किया जाने वाले यन्त्र एवं भगवान् श्रीरामजी का शरीर दोनों ही समान स्वरूप का है भगवान् श्रीरामजी का विग्रह एवं ब्रह्म आदि समस्त देवताओं का विग्रह यन्त्र ही है। अतः यन्त्र की कल्पना की जाती है। यदि विना यन्त्र के सर्वेश्वर श्रीरामजी की पूजा की जाती है तो भगवान् श्रीरामजी प्रसन्न नहीं होते हैं। इसीलिये यन्त्र के सहित देवता की पूजा होनी चाहिये। अतएव यन्त्र कल्पना की जाती है ॥१२॥

कल्प्यमानं यन्त्रं प्रतिपाद्यस्य देवस्य सर्वेश्वरश्रीरामस्य विग्रहः देवतादीनां च विग्रहः इतिब्रह्मादिसहितस्य श्रीरामस्य विग्रहः । अतएव यन्त्रकल्पना रचना क्रियते यदि यन्त्रेण विनापूजा क्रियते तदा देवता न प्रसीदति तस्मात् यन्त्रोऽवश्यमेव कल्पनीयः इतिभावः ।

देवस्य सर्वेश्वरश्रीरामचन्द्रस्य विग्रहः शरीरमेव यन्त्रकल्पना, किदृशस्य विग्रहस्येति जिज्ञासायामाह-सोभयस्येति । उभयेन सहितः सोभयः अर्थात् वाच्यभूतेन ब्रह्मादिना मन्त्रराजेन च सहितस्य श्रीरामस्य एव पूजा अस्तु यन्त्रेण किं प्रयोजनमिति जिज्ञासायामुच्यते विना यन्त्रेण इति । यदि यन्त्रेण विना भगवद् विग्रहस्य पूजा विधीयते तदा देवता स्वरूपं न दर्शयति । अत्र 'प्रसीदति' इत्यत्र सम् उपसर्गस्य प्रधानाभावात् देवदेवतयोः प्रयोगाच्च सर्वदेवताशरीराणां यन्त्ररूपत्वं यन्त्रः एव देवता शरीरं अतः यन्त्रपूजनमन्तरा देवताशरीरपूजा न सम्भवति तस्मात् देवता न प्रसीदति इतिसूच्यते । शास्त्रेषु तत्-तत् देवता मन्त्रपुरश्चरणे तेषां यन्त्रसहितस्यैव पूजाविधानदर्शनात् यन्त्रसहितस्य देवतापूजन विधानं ज्ञायते । अत्र 'इति' शब्दप्रयोगः प्रथमोपनिषत् समाप्तिसूचकः ॥१९॥

ॐ इतिप्रथमोपनिषत् ॥१॥ ॐ

इत्यानन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य
श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यप्रणीत श्रीरामताप-
नीयोपनिषदीय प्रथमोपनिषदः

卐 श्रीरामानन्दभाष्यम् 卐

ॐ श्रीरामः शरणं मम ॐ

इसप्रकार एक मन्त्र के द्वारा सामान्य रूपसे मन्त्रार्थ का प्रतिपादन करके पूजनीय देवता का यन्त्र शरीर स्वरूप है इसप्रकार यन्त्र का स्वरूप सूचित करते हुए बाह्य पूजोपयोगि यन्त्र को भगवान् श्रीरामजी का शरीर के स्वरूप में अवश्य ही पूजा करनी चाहिये । इस अभिप्राय का प्रतिपादन करते हुए सोभयस्य इत्यादि ऋचा का निरूपण करते हैं ।

भगवान् श्रीरामजी का शरीर ही यन्त्र है इसीलिये यन्त्र की कल्पना-रचना की जाती है । किसप्रकार के शरीर की ऐसी जिज्ञासा होने पर ऋचा में कहते हैं 'सोभयस्य' इति । उभय के सहित सोभय कहा जाता है । अर्थात् प्रतिपाद्य भूत ब्रह्म आदि के सहित

मन्त्रराज से विशिष्ट यह अर्थ है। यहां आयुध आदि के सहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की ही पूजा हो यन्त्र से क्या प्रयोजन है ऐसी जिज्ञासा में कहा जाता है 'विना यन्त्रेण' इति। यन्त्र के विना यदि भगवद् विग्रह का पूजा विधान करते हैं तव देवता प्रसन्न नहीं होते हैं। भगवान् अपना स्वरूप नहीं दिखाते हैं। यहां पर 'प्रसीदति' इस प्रयोग में सम् उपसर्ग नहीं दिया गया है इसलिये भगवान् श्रीरामजी एवं अन्य देवता रूप अर्थ बोध कराने के लिये देव एवं देवता शब्दों का प्रयोग से सभी देवताओं के शरीर की यन्त्र रूपता है यह आशय प्रकाशित होता है। इसलिये यन्त्र पूजा के विना देवता की पूजा सम्भव नहीं है, इसलिये देवता प्रसन्न नहीं होते हैं यह सूचना दी जाती है। शास्त्रों में उन-उन देवताओं के मन्त्र के पुरश्चरण में उन देवताओं का यन्त्र के सहित मन्त्र का विधान ज्ञात होता है। यहां इति शब्द का प्रयोग प्रथमोपनिषत् समाप्ति सूचक है ॥१९॥

卐 प्रथमोपनिषत् पूर्ण हुआ 卐

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीत ♆ उद्योत

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

